Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25; अंक 373; 16 से 31 जनवरी, 1985

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप संपादक :
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा :
सुनीता

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता
कथाकार विशेषांक-दो

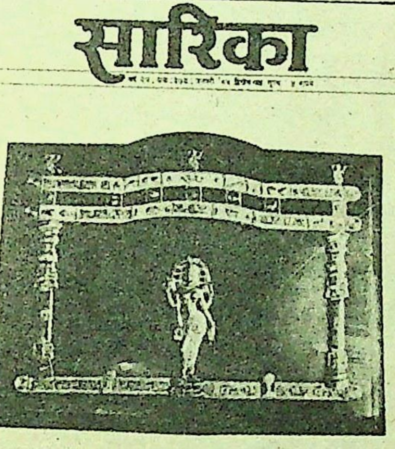

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता
कथाकार विशेषांक-दो

प्रशस्ति पत्र का यह फलक मथुरा के कंकाली टीला के ध्वंसावशेषों से प्राप्त स्तूप के तीन तोरणों की अनुकृति है. इसकी तीन भुजाएं रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र) की प्रतीक हैं. इन भुजाओं पर अंकित है 'णाणं पयासयं' (ज्ञान (वस्तुओं का) प्रकाशरूप है). यह ज्ञानपीठ का प्रतीक चिन्ह भी है. इसके अलंकरण में अष्ट मंगल द्रव्यों को समाविष्ट किया गया है. पुरस्कार विजेता को दिए जाने वाले प्रशस्ति पत्र का अंकन धातु के पट्ट पर होता है. वाग्देवी की अनुकृति के दोनों ओर हिंदी तथा अंग्रेजी में प्रशस्ति का अंकन होता है. इसके रजत स्तंभों को स्वर्ण-जल से भी अलंकृत किया जाता है.

आवरण पारदर्शी : पवन महेंद्रू

साक्षात्कार

12. मैं समझता हूं . . . भारतीय ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी अशोक जैन के साथ एक संक्षिप्त बातचीत.
22. पुरस्कारों का कोई न कोई स्वरूप. . . : अज्ञेय के साथ सुरेंद्र तिवारी की बातचीत.
41. मुझे ज्ञानपीठ पुरस्कार बहुत पहले. . . : अमृता प्रीतम के साथ वीरेंद्र जैन की बातचीत.
42. यदि हम पुराने नियम का ही . . ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रवर परिषद के सदस्य लक्ष्मीचंद्र जैन के साथ वीरेंद्र जैन की बातचीत.
53. मुझे निरंतर आत्मविश्वास की प्रक्रिया... वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य के साथ ए.के. मित्तल की बातचीत.

कथा-रचनाएं

14. चिक्कबीर राजेंद्र : मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार.
26. पुरुष का भाग्य : अज्ञेय
28. ऊंट : एस.के. पोट्टेकाट.
31. बंद दरवाजे के सामने : आशापूर्णा देवी
44. बसेरा : अखिलन.
50. सहारा : वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य
58. वह अज्ञात वीर : कु.वें. पुट्टप्प
63. मेरी चंपा का वर : उमाशंकर जोशी

कविताएं

23. युद्ध विराम : अज्ञेय
56. उर्वशी : दिनकर
68. हीरोशीमा : उमाशंकर जोशी

डायरी/यात्रा

38. पाताल के झरने तक पहुंचने की तसल्ली : अमृता प्रीतम.
54. आदमी अपना जादूगर आप बन सकता है. : रामधारी सिंह दिनकर
61. कोणार्क की मृत्यु : विष्णु दे

विशेष आयोजन

10. वह ईसा जो मुसीबत में किसी के काम आये : अयोध्याप्रसाद गोयलीय.
70. प्रेमचंद की परंपरा को बढ़ाते हुए : बिशन टंडन

परिचर्चा

36. एक सपने के धन का उपयोग : सत्यपाल सक्सेना.

इन दोनों विशेषांकों में आवरण सहयोग : रवि शर्मा

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

वर्ष : २४; अंक : ३६९; १६-३० नवंबर, १९८४

एक तीर, दो शिकार

सारिका (16 से 30 नवंबर, 1984) अंक पढ़ा. बेहद प्रसन्नता हुई. इस अंक की सभी कहानियां राजनीति से संबंधित हैं. इस बार आपने एक तीर से दो निशाने लगाये हैं. इसके लिए बधाई. आप उसमें सफल हो गए हैं. खासकर **'सुहागिन'** (**पृथ्वीराज मोंगा**) और **'मैं वही हूं'** (**वीरेंद्र जैन**) की कहानियां अत्यंत रोचक और मर्मस्पर्शी लगीं. इसके लिए मेरी ओर से लेखकों को बधाई.

वैसे तो सारिका का हर अंक अपना रंग लिये हुए होता है लेकिन इस अंक की बात ही कुछ और है. साहित्यिक क्षेत्र में रहकर भी आपने राजनीतिक क्षेत्र में पाठकों को उतार लिया.

● **वीरेंद्र, शरद, रांची,**

अवांछित घुसपैठ

सारिका का 369 वां अंक पढ़ा. बड़ा पसंद आया. कहानियां, साक्षात्कार, लघु रचनाएं सभी स्तरीय आकर्षक-रोचक लगीं.

कहानियों में **वीरेंद्र जैन** की **'मैं वही हूं'** बहुत अच्छी लगी. बहुत आनंद आया इस कहानी को पढ़कर. **इंदु जैन** की **'सागरगाथा'** भी बहुत अच्छी लगी. बल्कि कुछ मानी में **'सुहागिन'** मुझे सबसे अच्छी लगी. भीतर गहरे में प्रवेश कर गई. एक विचित्र भावों की सचाई और गहराई लिए. **बल्लभ डोभाल** की **'तन का देश, मन का देश'** अच्छी कहानी बनते-बनते रह गई. कथ्य तो इतना सुंदर रहा. कहानी मनोवैज्ञानिक सचाई और सूक्ष्म गहराई भी पकड़ती रही पर बीच-बीच में राजनीतिक घटनाओं या स्थितियों का अनावश्यक (हां, लेखक अपने को उस सम्मोहन से बचा सकता था) आरोपण या अवांछित घुसपैठ कहानी की गहराई और मर्मस्पर्शिता को विघ्नित कर देता—समग्रिक स्वादन में एक गतिरोध, बल्कि कहूं, विसंगति पैदा कर देता है. इस तरह एक अच्छी कहानी बनते-बनते अंततः बिगड़ गई. इसे मैं क्या कहूं—लेखक की विफलता या अपना ही दृष्टिदोष?

● **रवींद्रनाथ ओझा, बेतिया**

बातचीत के बहाने

अंक 369 बहुत अच्छा, मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक एवं शिक्षाप्रद रहा. आद्योपांत पढ़कर मन प्रसन्न हो उठा. ऐसे तो संपूर्ण अंक ही पठनीय है परंतु **'ग्रामोफोन नहीं बजेगा'**, **'तन का देश मन का देश'**, **'झंडा'**, **'सागरगाथा'** कहानियां तथा **'मैं जड़ नहीं होना चाहता'** साक्षात्कार आदि रचनाएं विशेष अच्छी लगीं.

'मैं जड़ नहीं होना चाहता' शीर्षक से सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार एवं आलोचक **डॉ. इंद्रनाथ मदान से फूलचंद मानव** की बातचीत बहुत रोचक एवं हृदयस्पर्शी रही. निस्संदेह निर्भीकता, स्पष्टवादिता, निर्लोभता एवं स्वाभिमान की मूर्ति डॉ. इंद्रनाथ मदान का राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति समर्पित जीवन आज के नये साहित्यकारों के लिए अनुकरणीय एवं प्रेरणादायक है.

● **शकुनचंद गुप्त विशारद, रायबरेली**

विविध आयामों से. . .

सारिका का अंक : 369 अवलोकन कर बड़ी प्रसन्नता हुई. गेटअप जितना ही नयनाभिराम एवं आकर्षक है उतनी ही पाठ्य सामग्री हृदय ग्राही है. यूं तो सारिका का प्रत्येक अंक अपने आप में विशेषांक होता है लेकिन यह अंक व्यक्ति, परिवार और राजनीतिक संदर्भों से जुड़ी हुई जितनी कहानियों को लेकर आया है वे सभी अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं. जीवन के विविध आयामों को एवं अनछुए पहलुओं को रेखांकित करती हुई कहानियों को प्रस्तुत करना कोई 'सारिका' से सीखे. **अश्कजी, गोविंद मिश्र, पृथ्वीराज मोंगा** एवं युवा कथाकार **कामेश्वर** की कहानियां बेहद पसंद आयीं.

● **कैलाश त्रिपाठी देवरिया**

भूल सुधार

पिछले अंक में पृष्ठ 71 पर प्रकाशित उपरोक्त चित्र में दृष्टव्य महानुभावों का परिचय निम्न प्रकार है: पृष्ठभूमि में ज्ञानपीठ के संस्थापक दंपत्ति साहू श्री शांतिप्रसाद जैन एवं श्रीमती रमा जैन के छाया चित्र, (बाएं से दाएं) मंच पर हैं पुरस्कार जयी कृतिकार वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य, ज्ञानपीठ की ट्रस्टी श्रीमती इंदु जैन, श्रीमती इंदिरा गांधी और ज्ञानपीठ के वर्तमान अध्यक्ष साहू श्री श्रेयांस प्रसाद जैन. कृपया इन नामों को इसी क्रम में पढ़ें. वर्तमान अध्यक्ष के नाम में जो गलती हुई है उसका हमें खेद है.

कोई दमखम नहीं. . .

अंक 369 ने बड़ा निराश किया. **अश्कजी** की **'ग्रामोफोन नहीं बजेगा'** तथा **पृथ्वीराज मोंगा** की **'सुहागिन'** को छोड़कर बाकी किसी भी कहानी में कोई दमखम नहीं था.

मामूली-सी स्थिति को लेकर चित्रमय चरित्र चित्रण के जरिये किस खूबी से अश्कजी कहानी का ताना-बाना बुनते हैं, वह उनकी **'एक उदासीन शाम'** के बाद 'ग्रामोफोन नहीं बजेगा' में खुलकर आया है—जो रोचकता के साथ-साथ जिंदगी की एक सही तस्वीर खींचने में सक्षम हुआ है. अश्कजी को मेरी बधाई.

● **सदानंद सहाय, पटना**

रचनाकारों का आलोचकीय दायित्व

'सारिका' के अंक : 368 में **'पीढ़ियां : आमने-सामने'** के अंतर्गत **नमिता सिंह** के इस विचार से मैं सहमत हूं कि आज की कहानी-समीक्षा में सर्वाधिक गिरावट आयी है. उनका यह भी कहना सही है कि इस गिरावट के पीछे आलोचकों की खेमेबाजी है जिससे आलोचक अपने आलोचक धर्म का निर्वाह नहीं कर पाते. समीक्षा में इस गिरावट के कारण ही अच्छी रचनाओं के बजाय फेक रचनायें चर्चा का केंद्र बन जाती हैं. निस्संदेह आज के लेखन के लिये यह एक खतरनाक आत्मघाती स्थिति है. आज यह जरूरी है कि समीक्षक अपनी खेमेबाजी के अपने संकुचित दायरे से ऊपर अपनी बेबाक और वस्तुपरक समीक्षा दें. इसके तहत अब यह जरूरी हो गया है कि आलोचक व्यावहारिक आलोचनायें दें. लेकिन मैं नमितासिंह के इस कथन से सहमत नहीं हूं कि कथाकार को आलोचक नहीं बनना चाहिए. ☐

● **डा. गिरीशचंद्र श्रीवास्तव सुल्तानपुर**

Continental-B.I.C/84

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

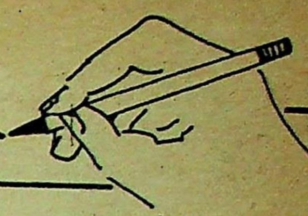

पिछले अंक में हमने ज्ञानपीठ पुरस्कार की शरीर-संरचना से संबद्ध बातें ही ही मुख्यरूप से की थीं कि यह पुरस्कार कैसे शुरू हुआ, इसकी प्रक्रिया क्या है आदि लेकिन इस पुरस्कार-शरीर की एक धड़कन भी है, इसमें एक विशाल और ज्योतिर्मय आत्मा भी है. और वही आत्मा, वही धड़कन सबसे महत्वपूर्ण है. इसे हम राष्ट्रीय धड़कन और राष्ट्रीय आत्मा भी कह सकते हैं. यह पुरस्कार मात्र एक 'व्यक्ति' का ही सम्मान नहीं अपितु उस समूची भाषा का भी सम्मान है और उस अंचल या प्रदेश का भी, जिसके कृतिकार को यह दिया जाता है.

जब भी हम किसी पुरस्कार विजेता की चर्चा करेंगे तो उस भाषा को भी रेखांकित करना पड़ेगा. उस भाषा की समृद्धि, उसकी साहित्यिक परंपरा, उसका इतिहास और उसकी प्रवृतियों पर भी नजर अपने आप चली जायेगी. ये पुरस्कार जयी रचनाएं या रचनाकार देश की नब्ज का भी संकेत देते हैं. राष्ट्रीय चेतना की अंतर्धाराओं, राष्ट्रीय जन मानस और राष्ट्रीय चिंतन के अंतर्संबंधों का अंतर्सूत्र भी कहीं और किसी न किसी सीमा तक हमारी पकड़ में आता है. यही एक सबसे महत्वपूर्ण बात है.

इस अंतर्सूत्र की एक झलक आप इसी अंक में प्रकाशित बिशन टंडन के लेख में पा सकते हैं. उस लेख से तुलनात्मक विश्लेषण की एक दृष्टि, एक दिशा और एक प्रक्रिया का भी संकेत हमें मिल सकता है. उन्होंने भारत की तीन भाषाओं की तीन कालजयी कृतियों के सूक्ष्म अंतर्संबंधों को विश्लेषित किया है—गणदेवता (बंगला), माटी-मटाल (उड़िया) और गोदान (हिंदी). इन उपन्यासों से भारतीय चिंतन को एक दिशा हमें मिलती है. टंडन जी कहते हैं—"गोदान के अंत में होरी गोबर के लिए जिस भविष्य की बात सोचता है वहीं से 'गणदेवता' का वैचारिक धरातल आरंभ होता है. . . वास्तव में 'गणदेवता' ग्राम्य जीवन के अस्त-व्यस्त होने की ही नहीं इस 'बोध' के टूटने की भी कहानी है. . . उपन्यास (माटी-मटाल) में उड़िया ग्राम्य जीवन का संपूर्ण रूप उजागर होकर सामने आता है. . . शोषित वर्ग का विद्रोह केवल किसी अन्य वर्ग से सामाजिक न्याय पाने की प्रक्रिया मात्र न रहकर मनुष्य का नियति की क्रूरता से अपनी रक्षा करने का सावभौमिक प्रयास बन जाता है."

इन तीनों में एक ही मिट्टी की गंध है. वह गंध, जो सारे देश में किसी न किसी सीमा तक महसूस की जाती है. हमारे दुख-दर्द एक से और साझे के हैं, हमारी समस्याएं एक हैं, हमारी आर्थिक और राजनीतिक स्थितियां एक हैं, तब हमारे सोच के अंतर्संबंध एक से क्यों नहीं हो सकते.

इस पुरस्कार से वैचारिक एकता और आंतरिक एकता को तो बल मिलता ही है, हम एक दूसरे के अधिक नजदीक होते हैं, एक दूसरे को अधिक गहराई से समझ पाते हैं और उस समझ का पैदा होना ही काफी अहमियत रखता है. यह नजदीकी जितनी बढ़ेगी, यह समझ जितनी पैदा होगी, हमारी कई समस्याएं अपने आप हल हो जायेंगी क्योंकि अच्छा साहित्य आदमी को आदमी से जोड़ने का काम करता है. आदमियों का यही जुड़ना किसी भी देश को शक्ति और दृढ़ता देता है.

अच्छा साहित्य जहां सामाजिक बदलाव के लिए वैचारिक जमीन तैयार करता है वहीं समाज को एक दिशा और दृष्टि देने में भी सार्थक भूमिका निबाहता है. यही कुछ ऐसी बातें हैं जो हमें इन अंकों के संयोजन की प्रेरणा और प्रोत्साहन देती रहीं. चुनाव की प्रक्रिया जितनी कठिन पुरस्कार के निर्णायकों के लिए होती है, उतनी ही इन अंकों के संयोजन में हमारे लिए भी रही. हमने अधिकांश रचनाओं का चुनाव प्रतिनिधित्व के आधार पर तो किया ही है, इन वैचारिक अंतर्संबंधों के आधार पर भी किया है. अपने इस प्रयास में हम कितने सफल रहे हैं इसका निर्णय तो आप ही लोग करेंगे लेकिन हम आपकी तर्कपूर्ण प्रतिक्रिया का इंतजार अवश्य करेंगे. आपकी प्रतिक्रिया का स्वागत करके हमें खुशी होगी.

मैं अपनी और समस्त सारिका परिवार की ओर से ये दोनों अंक भारत की नयी वैचारिक चेतना को समर्पित करता हूं.

भारतीय जन मानस के अंतर्संबंधों का एक सार्थक आकलन : ज्ञानपीठ पुरस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

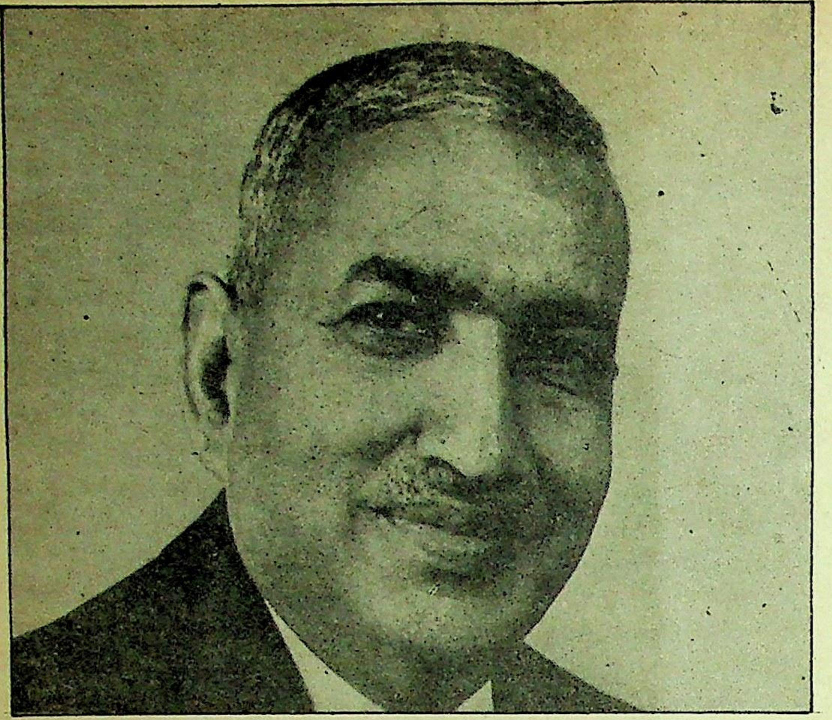

वह इंसा जो मुसीबत में किसी के काम आ जाये !

▣ स्व. अयोध्या प्रसाद गोयलीय

२२ मई, १९६१ का दिन साहू शांतिप्रसाद जैन का जन्मदिन—ज्ञानपीठ पुरस्कार योजना के लिए और संपूर्ण भारतीय साहित्य के लिए एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण दिन. इसी दिन रमाजी ने ज्ञानपीठ पुरस्कार का संकल्प लिया था. इसीलिए हमने साहूजी के ५१ वें जन्मदिन (२२.५.६१) पर लिखे गए इस संस्मरणात्मक लेख को यहां लिया है. यह मात्र साहूजी का संस्मरण ही नहीं है अपितु एक महान संकल्प के दिन का यादगार दस्तावेज भी है—

साहू शांति प्रसाद जैन जन्मजात बड़े आदमी हैं. वे धनकुबेर न हुए होते तो भारत के प्रधानमंत्री, विश्व के महान वैज्ञानिक या अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अर्थ-शास्त्री हुए होते. यह तो संयोग की बात है कि उनके चरण-स्पर्श से बंजर भूमियां गुल-ओ-गुलजार हो उठीं और खुरदरे पत्थरों के पर्वत सोना उगलने लगे.

अब मैं समझा मुराद जन्नत से,
आप जिस राह से गुजर जायें.

सूर्य-चंद्र सैकड़ों वर्ष घूम-घूमकर विश्व का कोना-कोना छान मारते हैं, तब कहीं शांति प्रसाद जैसा मानव-रत्न खोज पाते हैं. . .

हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पर रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा.

ऐसा मानव-रत्न जो आपदाओं की खराद पर दीप्तिमान हो उठे, किंतु दुनिया के लिए द्रवित हो उठे—

कुल्ब गुंचे का, आंख शबनम की,
यह है मेराज इब्ने-आदमी की.

साहू शांति प्रसाद जी ने अपने कालेज-शिक्षा-काल में देखा कि सैकड़ों होनहार विद्यार्थी अर्थाभाव के कारण न पाठ्यक्रम की समूची पुस्तकें ही खरीद पाते हैं न मासिक शुल्क ही व्यवस्थित रूप से दे पाते हैं. यहां तक कि शुल्क समय पर न दिये जाने के कारण कई प्रतिभा-शाली विद्यार्थी परीक्षा-भवन में नहीं बैठ सके. उनकी असहाय स्थिति देख-देखकर साहू साहब का कलेजा मुंह को आता था. परंतु निरुपाय थे. अपने मासिक व्यय में से मितव्ययी रहकर किसी न किसी का मासिक शुल्क देते रहने पर भी उद्विग्न-से रहते थे, क्योंकि यह सहायता तो ऊंट के मुंह में जीरे जैसी थी. अतः जब आप अपने पांवों पर खड़े हुए और सहायता देने के योग्य हुए तो आपने एकमुश्त इतना द्रव्य दिया कि उसके ब्याज से ही 20-25 वर्ष से लगभग पचास हजार वार्षिक छात्रवृत्ति दी जा रही है. और इस छात्र-वृत्ति के परिणामस्वरूप अनेक निःसहाय भारत के प्रत्येक प्रांत में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं स्वाभिमानपूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं.

मसीह-ओ-खिज की उम्रों से उसको इक् नफस बेहतर,
वह इंसा जो मुसीबत में किसी के काम आ जाये.

ऐसे पर-दुःख कातर के लिए वयोवृद्ध 'असर' लखनवी का तो यह दृढ़ विश्वास है. . .

हम उसी को खुदा समझते हैं,
जो मुसीबत में याद आ जाये.

साहू साहब ने उत्तर प्रदेशीय बिजनौर जिले की तहसील नजीबाबाद के संभ्रांत एवं प्रतिष्ठित अग्रवाल जैन वंश में 22 मई, 1911 ई. को जन्म लिया. आपके पितामह सेठ सलेखचंद-जी बहुत प्रभावशाली एवं भव्य व्यक्ति थे. वे सद्चरित्र, धर्मनिष्ठ, परोपकारी, मधुर-स्वभावी और मेहमाननवाज थे. उनका व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था. गोरे-चिट्टे, जिस्म पर चूड़ीदार पायजामा, धवल मखमली अंगरखा दोनों कंधों पर, कीमती शाल और सर पर गोल पगड़ी पहनकर जब वे किसी उत्सव में बैठते थे तो उस 75 वर्ष की आयु में भी बहुत ही सजीले और प्यारे मालूम होते थे. आजीवन दीपक की रोशनी में बगैर चश्मा लगाये जैन धर्म के उच्च ग्रंथों का स्वाध्याय करते थे. अपने जिले में तो वे जन-जन के श्रद्धावान थे ही, समूचे जैन-समाज में भी वे आदरणीय थे. भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा ने कानपुर अधिवेशन में उन्हें अध्यक्ष चुनकर अपने स्नेह का परिचय दिया था.

विधि का विचित्र विधान देखिए कि जिस कानपुर में साहू साहब के पितामह के सर पर अध्यक्ष पद का मुकुट रक्खा गया था, उसी कानपुर में आपके उन्नत ललाट पर कलगी और सेहरा बांधे गये. पितामह को वहां कीर्ति मिली तो आपको धर्मशीला 'रमा' जैसी अनुपम पत्नी प्राप्त हुई, जिसकी गौरव-गरिमा के समक्ष संसार की समस्त विभूतियां मंद हैं—

उसके रुख से परतवे-मासूमे-मरियम आश्कार
उसके जल्वों की सबाहत से फरिश्ते शर्मसार
शहद जिसकी गुफ्तगू है, सांस है जिसकी गुलाब
नुत्क से जिसके नुमायां है तखैयुल का शबाब.

फिर उसी कानपुर में 12-13 वर्ष उपरांत भारतवर्षीय दि. जैन परिषद के वार्षिक अधि-वेशन के अध्यक्ष पद पर साहू साहब को प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्ठित किया गया.

शांति प्रसादजी के पिता साहू दीवनचंद्रजी भरी जवानी में ही स्वर्गवासी हो गए थे. अत: आप अपनी सती-साध्वी धर्म-मूर्ति की देख-रेख में परवान चढ़े. उस तपस्विनी ने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण आपके लालन-पालन में लगा दिया. यह सब उसी अन्नपूर्णा ममतामयी मां के तप-त्याग से परिपूर्ण जीवन के संस्कार हैं कि विलासिता की ओर लड़खड़ाने के इतने असीम साधन होते हुए भी साहू साहब के दामन पर कोई दाग-धब्बा नहीं. आपका सदाचारी जीवन इतना स्वच्छ और पवित्र कि. .

दामन निचोड़ दें तो फरिश्ते वज़ू करें.

जहां पाश्चात्य रंगों में रंगे नर-नारी उन्मुक्त होकर पर-स्त्री-पुरुष के साथ नाचते हैं, रंगरेलियां करते हैं, नि:संकोच हास-परिहास करते हैं, वहां साहू साहब अपनी सालियों एवं सलहजों से भी नजर उठाकर बात नहीं कर पाते. इष्ट-मित्रों के साथ सिनेमा चले जाते हैं किंतु न आप किसी हीरो-हीरोइन को पहचान पाते हैं, न कभी कहानी याद रख पाते हैं, केवल मनोरंजन के लिए और वह भी बार-बार के आग्रह पर देखते हैं. और सिनेमा जैसी व्यर्थ की बातें उन्हें स्मरण भी क्यों रहें जबकि उन्हें अपने नेक और लोकोपयोगी कार्य भी विस्मरण हो जाते हैं. 'नेकी कर और कुएं में डाल' जैसा उनका स्वभाव है. कब किसको कितना दिया, कब किस पर कितने एहसान किये, उन्हें कभी स्मरण नहीं रहते. यहां तक कि धूर्तों एवं कृतघ्नों की, की गयी करतूतें भी उन्हें याद नहीं. भुला देना उनका स्वभाव है. एक बार न्यू थियेटर्स का 'जवाब' (सवाक् चलचित्र) देखते हुए कहने लगे, "भई हमें तो यह जीवन पसंद है, कार्य करते जाओ और भूलते जाओ." पहले तो सुनकर आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े व्यक्ति को भुलक्कड़-स्वभाव क्यों पसंद है? लेकिन क्षण भर में ही जब उनकी विशाल सहृदयता का ध्यान आया तो रोम-रोम पुलकित हो उठा कि यही अनुपम गुण तो इन्हें महान् बनाए हुए है. पचासों लाख की हानि हो जाने पर भी कभी इन्हें विचलित नहीं देखा. चेहरे पर सदैव की तरह मुस्कान बिखरी होती है और दैनिक कार्यों में कोई परिवर्तन नहीं होता. समीप से समीप रहनेवाले व्यक्ति को भी आभास नहीं हो पाता. जाननेवाला व्यक्ति जिक्र करे भी तो नपे-तुले शब्दों में फर्माते हैं. "लाभ के साथ हानि तो अनिवार्य है."

कृतघ्न और अपराधी कर्मचारियों को बार-बार क्षमा करते रहने पर जब आपको उनकी धूर्तताओं एवं हानिप्रद करतूतों के प्रति सावधान रहने को कहा गया तो आपने केवल इतना कहकर. . . "अपने-अपने भाग्य का सब खाते हैं, हमारा क्या लेते हैं" उनके अपराधों पर पर्दा डाल दिया है. क्षमा करते ही नहीं, अपनी भूल के लिए स्वयं भी क्षमा मांग लेते हैं. 1942 ई. की एक घटना मैं भूल नहीं सकता. डालमिया नगर के जैन मंदिर में दशलाक्षणी पर्व के पुनीत दिनों में महिला-पुरुष सुबह चार घंटे सामूहिक पूजा करते हैं और रात्रि को प्रवचन सुनते हैं. क्षमा धर्म पर प्रवचन हो ही रहा था कि. . . "पंडित घनीराम जी, आज के असद् व्यवहार के लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूं." कहते हुए साहू साहब का गला रुंद्ध हो गया और आंखें सजल हो आईं. हम सब आश्चर्यचकित कि असद् व्यवहार और वह भी साहू साहब द्वारा, असंभव और अनहोनी-सी बात है. बात केवल इतनी थी कि स्वयंभू स्तोत्र पढ़ते हुए जब हर श्लोक पर तीर्थंकरों को पुष्पांजली चढ़ाते हुए सब मिलकर जय बोलते थे तो पंडित घनीराम, घड़ियाल, जयकार के साथ-साथ न बजाकर आगे-पीछे बजा रहे थे, जिससे बूलफी-सी पैदा हो रही थी. साहू साहब ने उनसे इतना ही कहा था. . . "पंडितजी, जयकारे के साथ-साथ." क्षमा मांगने पर हम सब ने कहा, "साहू साहब, आप यह क्या फर्मा रहे हैं, आपने तो ऐसी कोई भूल आज नहीं की, जिसके लिए क्षमा मांगी जाए." वे बोले, "मुझे इतना भी नहीं कहना चाहिए था. वे अपने यहां काम करते हैं, मनुष्य के कोमल हृदय पर कभी-कभी तनिक-सी बात से ठेस लग जाती है. . . सितारों की चमक से ठेस लगती है रागें-जां को. . . पंडित घनीरामजी अन्यथा न समझें और उनके मन में कोई शल्य न रहे, इसीलिए मैं उनसे क्षमा मांग रहा हूं." और जिससे क्षमा मांगी जा रही थी, वे ऐसे अवधूत कि वहां बैठे हुए भी नहीं समझ पाये कि कब सूर्य ने झुककर पृथ्वी के कण को चूम लिया. जब उनसे कहा गया कि श्रावक शिरोमणि तुमसे क्षमा मांग रहे हैं तो ऊंघते हुए ही फर्माया, "क्षमा! आज क्यों किसी से क्षमा मांगू? क्षमावाणीपर्व पर सबसे क्षमा मांगूंगा." बात हंसी में टल गयी परंतु मैं सोचता रह गया कि यह केवल धनकुबेर हैं या चक्रवर्ती भरत के समान जीवन-मुक्त.

इस विज्ञापन के युग में भी आप आत्म-विज्ञापन से बेहद घबराते हैं. लाखों रुपये प्रति वर्ष लोकोपयोगी कार्यों में देते रहते हैं, परंतु न कहीं उसका उल्लेख होने देते हैं, न स्वयं किसी पर प्रकट होने देते हैं. मुक्त हस्त देते हुए भी शर्माते हैं—लोग भरम मो पै करें याते नीचे नैन. 1941 ई. की राजनैतिक क्रांति में देश के सभी बड़े-बड़े नेता कारागार में डाल दिए गए थे. कुछ प्रांतीय कार्यकर्त्ता इधर-उधर छिपकर कार्य कर रहे थे, उनकी पकड़-धकड़ जारी थी. डालमिया नगर के मजदूर चलती मशीनों को छोड़कर भाग गये थे. बिजली-पानी सब बंद थे. स्टेशन, पोस्ट आफिस फूंक दिए गए थे. 'जापानी अब आये और तब आये' के समाचार आग की तरह फैल रहे थे. सर्वत्र विनाश ही विनाश दृष्टिगोचर हो रहा था. चारों ओर भगदड़ मची हुई थी. तभी एक रोज

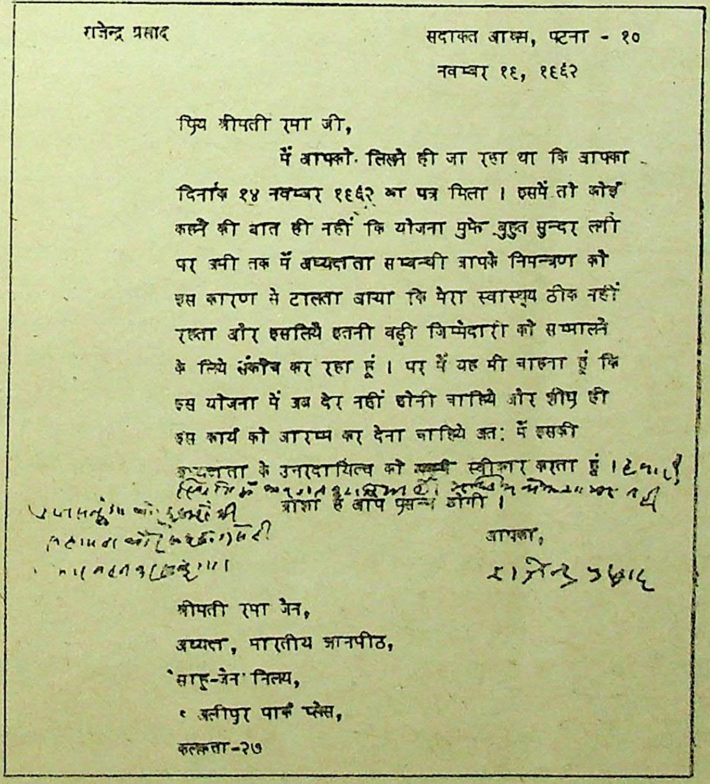
राजेन्द्र प्रसाद

सदाकत आश्रम, पटना - १०
नवम्बर १६, १९६२

प्रिय श्रीमती रमा जी,

मैं आपको लिखने ही जा रहा था कि आपका दिनांक १४ नवम्बर १९६२ का पत्र मिला। इसमें तो कोई कहने की बात ही नहीं कि योजना मुझे बहुत सुन्दर लगी पर अभी तक मैं अध्यक्षता सम्बन्धी आपके निमन्त्रण को इस कारण से टालता आया कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता और इसलिये इतनी बड़ी जिम्मेदारी को सम्भालने के लिये संकोच कर रहा हूं। पर मैं यह भी चाहता हूं कि इस योजना में अब देर नहीं होनी चाहिये और शीघ्र ही इस कार्य को आरम्भ कर देना चाहिये अत: मैं इसकी अध्यक्षता के उत्तरदायित्व को ~~सहर्ष~~ स्वीकार करता हूं। आशा है आप प्रसन्न होंगी।

आपका,
राजेन्द्र प्रसाद

श्रीमती रमा जैन,
अध्यक्ष, भारतीय ज्ञानपीठ,
'साहू-जैन' निलय,
८ अलीपुर पार्क प्लेस,
कलकत्ता-२७

एक ऐतिहासिक दस्तावेज : डॉ. राजेंद्र प्रसाद का पत्र श्रीमती रमा जैन के नाम.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहू साहब ने मुझे बुलाकर कहा, "बसावन सिंह (डालमिया नगर मजदूर संघ के अध्यक्ष) बनारस में छिपे हुए हैं. मैं उनका पता बताये देता हूं. तुम उनसे जाकर चुपचाप मिल आओ और उनसे कह आओ कि जो तुमने कहा है, वह प्रबंध हो जायेगा. कब और कहां मिजवायें?" मेरे बार-बार आग्रह करने पर बतलाया कि "बसावन बाबू कहते हैं कि इस समय बीस लाख रुपये का प्रबंध किया जा सके तो अंग्रेज एक धक्के में समुद्र पार खदेड़े जा सकते हैं." मैं सुनकर अवाक्-सा हो गया. इस विपत्ति काल में बीस लाख रुपये का त्याग और वह भी किसी बड़े नेता के आदेश पर नहीं, केवल एक प्रांतीय कार्यकर्त्ता के संकेत पर. मैंने निवेदन किया कि जब इतनी बड़ी रकम प्रदान करनी है तो देश के प्रमुख नेता से संपर्क स्थापित किया जा सकता है, इतना बड़ा रिस्क यूं ही नहीं उठाना चाहिए. लेकिन आप बड़े नेताओं को इतनी-सी मामूली रकम देने में संकोच अनुभव करते रहे और मैंने बनारस जाकर खतरा लेना उचित नहीं समझा. उन्हीं दिनों आपके पास कुछ इधर-उधर के लोग आते और नोटों की गड्डियां ले जाते. एकाध बार देख लेने पर मैंने कहा भी कि आप इतना रुपया इन लोगों को दे रहे हैं, काश गां[illegible] की झोली में डाला होता. हंसकर बोले, "उनको तो देने वाले बहुत हैं, परंतु ये लोग जो जान पर खेलकर भूखे-प्यासे, गांव-गांव घूम कर जनक्रांति ला रहे हैं, इनको भी तो किसी का सहारा होना चाहिए." मैंने बेहयाई से फिर कहा, "जंगल में नाचते मोर को कौन देखता है." फर्माया, "उसकी आत्मा तो प्रफुल्ल होती है."

राशि भी महत्वपूर्ण है...

सन् 1973 के पुरस्कार से श्री बेंद्रे और श्री महांती को सम्मिलित रूप से पुरस्कृत किया गया. सम्मान समारोह के अवसर पर पधारे दोनों आदरणीय लेखकों के सेवा-सत्कार का दायित्व संभाला ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू दंपत्ति के मझले सुपुत्र श्री आलोक प्रकाश जैन ने. पूरे समय वे उनके आतिथ्य में प्रफुल्ल मन से व्यस्त रहे. मगर जब पुरस्कार राशि (एक लाख रुपया) दोनों लेखकों को बराबर-बराबर दी गयी तो श्री जैन का मन खिन्न हो गया. उन्होंने कहा कि भविष्य में यदि एक से अधिक लेखकों को एक साथ एक ही वर्ष के लिए पुरस्कृत किया जाये तो कृपया राशि को कम न करें. ज्ञानपीठ पुरस्कार की राशि भी महत्वपूर्ण है. ऐसी स्थिति आने पर आप मुझसे एक लाख रुपया ले लें लेकिन सम्मानित लेखक को दें वही पूरे एक लाख रुपये न कि पचास-पचास हजार. प्र. : बीज

1943 ई. में इंदौर में अखिल भारतवर्षीय महोत्सव था. साहू साहब उस समारोह के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किए गए थे. वहां जाने पर आपका राजसी स्वागत किया गया. किसी तरह हमें आभास मिल गया कि आपको 'दानवीर' पदवी से विभूषित किया जायेगा. पूरे दिन विरोध करने और अपनी लघुता प्रकट करने के बाद भी साहू साहब की एक न सुनी गयी और महोत्सव के कार्यकर्त्ता—सर सेठ हुकुमचंद, वाणिज्य भूषण सेठ लालचंद, राय बहादुर हीरालाल, सेठ भागचंद आदि अपने निश्चय पर दृढ़ बने रहे. आपने पदवी दान के उपलक्ष्य में सात लाख रुपये दान का संकल्प कर लिया किंतु न अपनी सहधर्मिणी को तनिक भी आभास दिया और न अन्य साथ जानेवालों को जाहिर किया. मेरी अभिलाषा थी कि पदवी-समारोह के अवसर पर दान की घोषणा की जाये, किंतु आप का फर्मान था, "रुपया आप चाहे जितना निकलवा लें, किंतु किसी पर प्रकट न करें. यह बहुत हल्का आत्म-विज्ञापन होगा." मेरा आग्रह था कि जिस जैन समाज में बात-बात पर दान देने का प्रचलन है, वहां आप अधिक से अधिक देने पर भी प्रकट न करें, इससे धर्म प्रभावना न होकर उल्टी भ्रामक धारणा बनेगी और बावजूद आपके मना करने और बुरा मानने पर भी मैंने यह कहते हुए सात लाख की घोषणा कर दी. कि... यह डालमिया नगर नहीं है, जहां आपका हुक्म माना जायेगा.

इतने बड़े उद्योगपति होते हुए भी न आपने जबरन किसी की एक इंच भूमि हस्तगत की, न कभी किसी को सताया. आपका कोई शत्रु नहीं. बगैर बॉडीगार्ड के आप निराकुल अकेले घूमते हैं. निर्भय और अजातशत्रु ऐसे कि हड़ताली मजदूरों की सभा में बिना किसी को सूचना दिए पहुंच गये. जो मजदूर पेशेवर नेताओं के बहकावे में भयानक हो रहे थे, वही मजदूर आपका स्नेह देखकर गगनभेदी जय-जयकार करने लगे. आप कभी बड़ा बोल नहीं बोलते. बहुत स्नेह और प्यार से व्यवहार करते हैं. जिससे भूल कर भी हाथ छू गया, उसका हाथ भले ही छूट जाये, साथ नहीं छोड़ते, जीवन भर उसे निभाते हैं. अपने यहां कार्य करनेवालों के दुख-सुख में सम्मिलित होते हैं. कभी किसी को यह महसूस नहीं होने देते कि वह आपके यहां वैतनिक कार्यकर्त्ता है. अपितु वह पारिवारिक सदस्य जैसी आत्मीयता का अनुभव करता है. न स्वयं किसी की बुराई करते हैं, न सुन ही सकते हैं. किसी तरह का व्यसन नहीं. धवल, स्वच्छ और ऐसा पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं कि . . .

सूबने जिसकी जबीं को आस्मां आता है
रोज,
और हज करने गिरोहे-क़ुदसियां आता है
रोज. ☐

▣ भारतीय ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री साहू अशोक जैन से पुरस्कार के संदर्भ में एक संक्षिप्त बातचीत—

▣ 1961 में ज्ञानपीठ पुरस्कार योजना के संबंध में अलग-अलग जगहों पर देश के कुछ प्रख्यात लेखकों के साथ विचार-विमर्श हुआ था. इसका मतलब है कि उससे पहले ही आदरणीया रमाजी के मन में इस पुरस्कार की योजना आयी होगी. आपकी दृष्टि से वह कौन से कारण थे जिन्होंने इस योजना को जन्म दिया?

यह सही है कि अम्माजी काफी अरसे से एक ऐसे पुरस्कार के बारे में सोच रही थीं जो भारतीय साहित्य के लिए गौरवशाली और सम्माननीय हो. लेकिन उनके मन में क्या बात थी, इसके पीछे कौन से कारण थे. यह बता पाना मेरे लिए संभव नहीं. उसकी वजह है कि एक तो हम लोग छोटे थे. फिर भी मैं इतना जानता हूं कि ज्ञानपीठ पुरस्कार की योजना एक प्रकार से अम्माजी की ही उपज है. जब उन्होंने उस योजना की चर्चा की थी तब कई क्षेत्रों में संदेह पैदा हो गया था कि शायद यह योजना सफल न हो सके. क्योंकि एक तो साहित्यकारों की कृतियों का चयन करना ही कठिन काम है और वह भी 15 भाषाओं में से.

▣ आपके परिवार का साहित्यिक वातावरण इसके लिए कितना जिम्मेदार था? क्या इसके पीछे भारतीय लेखकों के लिए नोबेल पुरस्कार जैसी भी कोई भावना थी या अब है?

यह तो सभी जानते हैं कि अम्माजी और बाबूजी के मन में साहित्य और साहित्यकारों के प्रति काफी सम्मान था. उन्हें अच्छी साहित्यक कृतियां पढ़ने का बहुत शौक था. वे हमेशा सद्साहित्य की तलाश में . रहते थे और जिन पुस्तकों के बारे में भी चर्चा सुनते थे उन्हें मंगवाकर अवश्य पढ़ते थे. जहां तक मैं समझता हूं उनके मन में नोबेल पुरस्कार के चयन-कर्त्ताओं द्वारा भारतीय साहित्य की उपेक्षा देखकर काफी तकलीफ होती थी. बहुत संभव है कि इसी तकलीफ ने इस योजना को जन्म दिया हो. अम्माजी की एक धारणा थी कि भारत में भले ही अलग-अलग भाषाएं हों लेकिन उन भाषाओं के साहित्य में उठनेवाली मिट्टी की गंध एक ही है. वे उस गंध को तलाश करके उसे सम्मानित करना चाहती थीं.

▣ योजना के जन्म से उसके कार्य रूप में परिणित होने तक करीब 5 या 6 वर्ष का समय लगा. इतना लंबा गैप किस लिए आया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

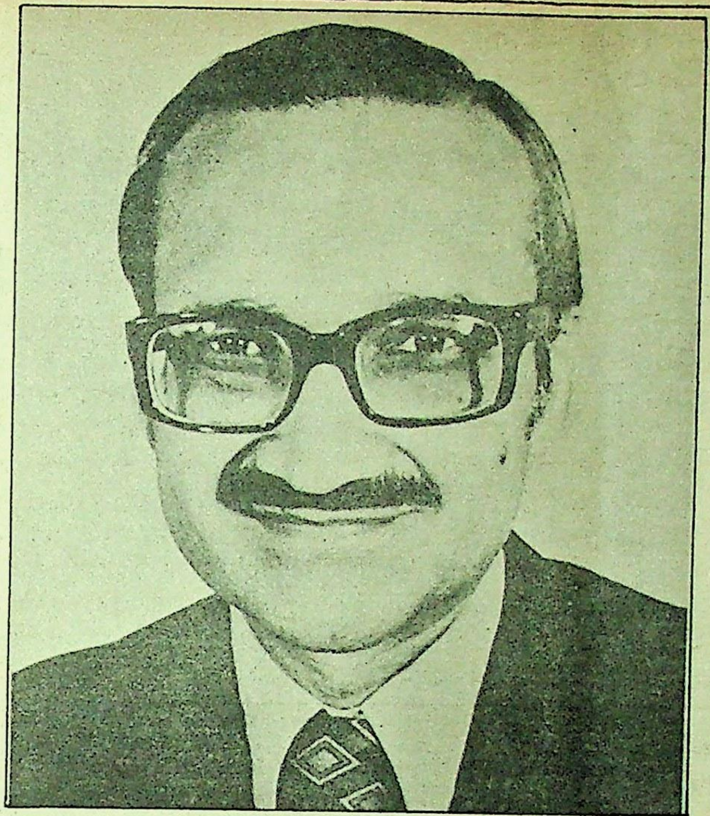

"मैं समझता हूं उनके (अम्माजी और बाबूजी के) मन में नोबेल पुरस्कार के चयनकर्त्ताओं द्वारा भारतीय साहित्य की उपेक्षा देखकर काफी तकलीफ होती थी" --अशोक जैन

ज्ञानपीठ पुरस्कार योजना के क्या कारण थे? योजना पर विचार-विमर्श शुरू होने और उसके अमल में आने तक लंबा गैप क्यों आया? कृतियों और कृतिकारों का अंतर्संबंध और अब कृतिकारों के चुनाव को लेकर कई सवाल पाठकों के मन में उठते हैं. इन्हीं सवालों के जवाब दे रहे हैं भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबंध न्यासी श्री अशोक जैन—

गैप तो आया लेकिन किसी भी बड़े काम को शुरू करने के लिए सलाह मशविरे की जरूरत होती है और जब सलाह मशविरा सभी भाषाओं के लोगों से करना हो तो वक्त भी लगता है. उस समय हिंदी में जो पुरस्कार दिए जा रहे थे वह बहुत बड़ी राशि के नहीं थे. ज्यादा से ज्यादा 5 या 10 हजार की राशि के रहे होंगे. ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए एक बड़ी राशि निश्चित की गई थी. इसलिए यह बात बड़ी सावधानी के साथ सोची और विचारी गई कि पुरस्कार की रूपरेखा क्या हो, नियमावली क्या बनाई जाये, काम किस तरह शुरू किया जाये, अंतिम निर्णय के लिए कौन-सा तरीका अपनाया जाये, काम किन-किन स्टेज में पूरा हो. उनके लिए कौन-कौन-सी समितियां निश्चित की जायें, आदि-आदि. कुछ ऐसी बातें थीं जिनमें इतना समय लग गया. सन् 60 या 61 में सोची गयी योजना 65 में अमल में आ पायी.

■ एक बड़ी पुरस्कार योजना के रहते दूसरी पुरस्कार योजना भारतीय ज्ञानपीठ ने क्यों शुरू की, वह भी साहित्यिक कृति पर हो?

मूर्त्ति देवी पुरस्कार मूलतः श्रमण संस्कृति से संबंधित है. इसमें श्रमण संस्कृति के आधार-भूत मूल्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता है. जैसे अहिंसा, जीवदया, करुणा और क्षमा आदि शाश्वत मूल्य. जो साहित्यिक कृति श्रमण संस्कृति के आधारभूत सिद्धांतों और इन महान जीवन मूल्यों को विश्लेषित करती है उसी को इस पुरस्कार के लिए चुना जाता है. इसके सहारे हम उन्हीं सिद्धांतों और मूल्यों को बढ़ावा देते हैं. समग्र साहित्य को नहीं. हम चाहते हैं कि इन अच्छे और महान मूल्यों का सभी को परिचय हो.

■ इतने वर्षों बाद ज्ञानपीठ पुरस्कार को कृतियों की जगह कृतिकार से जोड़ने की जरूरत क्यों हुई?

दरअसल यह महसूस किया गया कि किसी कृति को पुरस्कृत करने से उसके कृतिकार के साथ कुछ भ्रम जुड़ जाते हैं. साहित्य के प्रति किये गये उसके संपूर्ण योगदान के संदर्भ में रचनाकार को वह न्याय नहीं मिल पाता जो मिलना चाहिए. लोग सिर्फ एक ही कृति को लेकर बैठ जाते हैं जबकि उस कृतिकार की बहुत-सी महत्वपूर्ण कृतियां लगभग नीम अंधेरे में चली जाती हैं. यह सही है कि कृति महत्वपूर्ण होती है लेकिन उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण होता है कि किसी कृतिकार ने अपनी भाषा के साहित्य को कितना योग दिया है. यह तभी संभव है जब लोग उस रचनाकार के पूरे साहित्य को पढ़ें, समझें और विश्लेषित करें. साहित्य की इसी संपूर्णता को ध्यान में रखकर यह महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया है.

■ प्रबंध न्यासी के रूप में पुरस्कार की प्रक्रिया पर आप किन्हीं विवादास्पद क्षणों में अपने प्रभाव का प्रयोग करते हैं या नहीं. यदि करते हैं तो किस सीमा तक, और नहीं करते तो उन विवादों को कौन सुलझाता है?

हम लोग सलैक्शन बोर्ड के काम में किसी तरह का दखल नहीं देते. पुरस्कार देने के मामले में निर्णायक मंडल का निर्णय ही मान्य होता है.

हम लोग वहां बैठते तो हैं लेकिन सिर्फ एक ऑब्जर्वर के रूप में. विचार-विमर्श में हमारा कोई दखल नहीं होता. साहित्यकारों की कृतियों को देखना और उस पर निर्णय देना पुरस्कार समिति का काम है. हम न तो अपना मत देते हैं और न ही अपनी इच्छा-आकांक्षा व्यक्त करते हैं. अगर कोई वाद-विवाद उत्पन्न होता है तो उसे निर्णायक मंडल ही सुलझाता है. पुरस्कार के योग्य समझी गयी कृति पर अंतिम निर्णय निर्णायक मंडल ही करता है और वही निर्णय हम सब के लिए मान्य होता है. अब रचनाकार के साथ उसकी चुनी हुई कुछ कृतियों का नाम संदर्भ के रूप में ही लिया जाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिक्कबीर राजेंद्र

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार

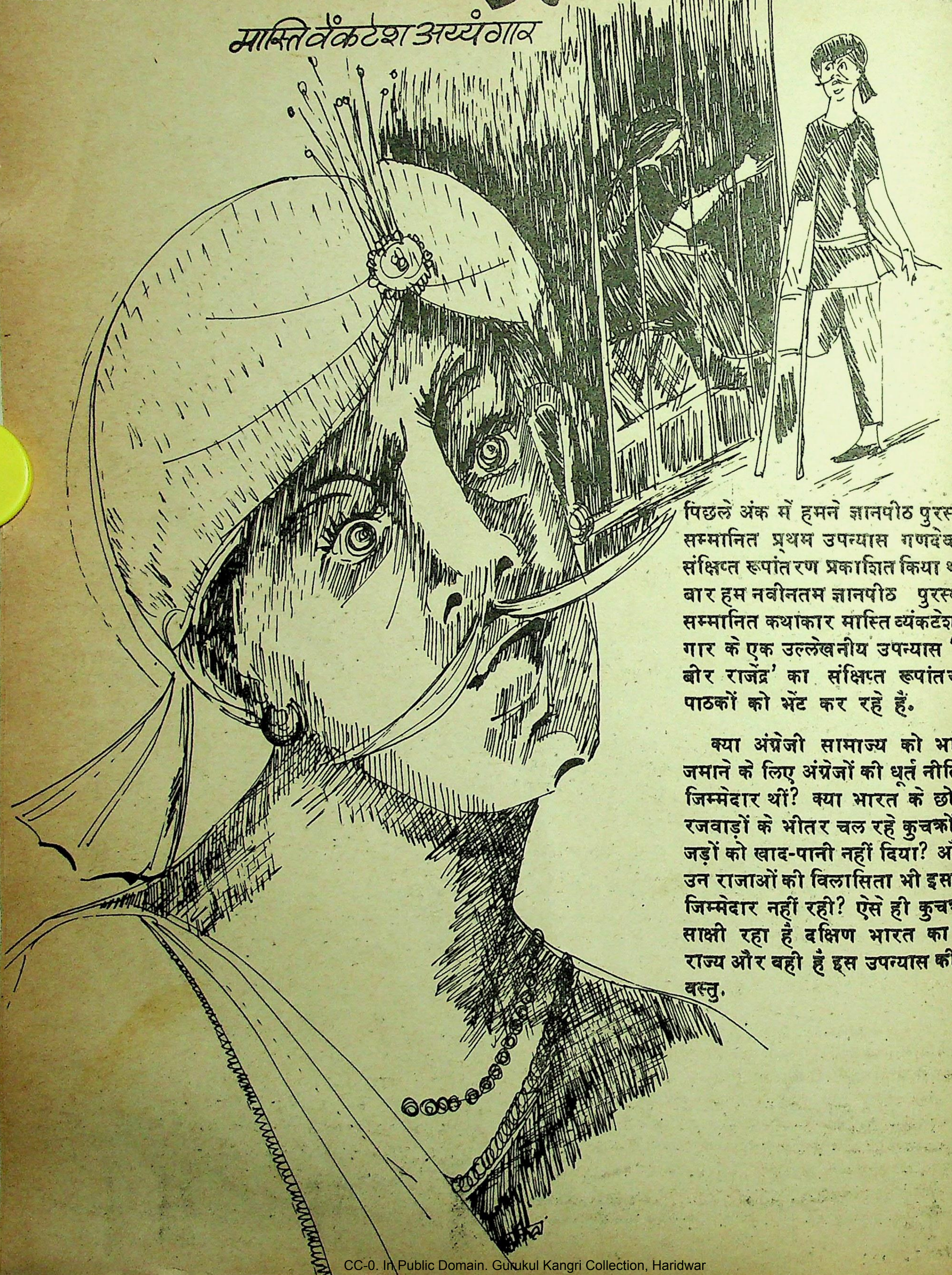

पिछले अंक में हमने ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित प्रथम उपन्यास गणदेवता का संक्षिप्त रूपांतरण प्रकाशित किया था. इस बार हम नवीनतम ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कथाकार मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार के एक उल्लेखनीय उपन्यास 'चिक्कबीर राजेंद्र' का संक्षिप्त रूपांतर अपने पाठकों को भेंट कर रहे हैं.

क्या अंग्रेजी साम्राज्य को भारत में जमाने के लिए अंग्रेजों की धूर्त नीतियां ही जिम्मेदार थीं? क्या भारत के छोटे-छोटे रजवाड़ों के भीतर चल रहे कुचक्रों ने इन जड़ों को खाद-पानी नहीं दिया? और क्या उन राजाओं की विलासिता भी इसके लिए जिम्मेदार नहीं रही? ऐसे ही कुचक्रों का साक्षी रहा है दक्षिण भारत का कोडग राज्य और वही है इस उपन्यास की विषय वस्तु.

Continental-B.I.C./84

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाक संवत 1755 की घटना है. मडकेरी राजभवन के भीतरी भाग के एक कोनेवाले कमरे का दरवाजा बंद था और उस पर ताला लगा था. दोपहर का वक्त था. तभी रसोई से खाने की थाली लिये एक नौकर उस द्वार के पास आकर रुका. ठीक उसी समय एक लंगड़ा भी चाबी का गुच्छा लिये वहां पहुंचा और उसने गुच्छे से एक चाबी निकालकर ताला खोल दिया.

नौकर थाली लेकर भीतर गया. लंगड़े ने तनिक कठोर स्वर में कहा, "खाना आया है मालकिन, लीजिए."

कोने में बैठी हुई युवती बोली, "तू और तेरा खाना, दोनों जायें भाड़ में! दफा हो जा यहां से. तू इधर मत आया कर."

तभी करीब चौदह वर्ष की एक लड़की को दरवाजे के पास आता देख लंगड़ा आश्चयचकित रह गया. यह लड़की राजा की बेटी थी. उसने उस लड़की को राजा का भय दिखाकर वापस जाने को कहा. लड़की डरी नहीं. उसने लंगड़े की ओर घूरकर देखा. लंगड़ा अनमने मन से बाहर की ओर बढ़ा ही था कि उसे एक ओर नारी-मूर्ति दिखाई पड़ी. उसने सिर झुकाकर हाथ जोड़े और कहा, "मालिक का हुक्म है कि यहां किसी को न आने दिया जाये. छोटी मालकिन आ गयीं, यही एक मुसीबत की बात थी और अब आप स्वयं भी अंदर आ गयीं तो न जाने क्या होगा!"

उन्होंने सौम्य मुख से गंभीर स्वर में कहा, "क्यों बसवय्या, महल में हमें कहां जाना चाहिए और कहां नहीं, यह बतानेवाले तुम्हीं हो क्या?"

वह कुर्ग की रानी गौरम्मा थी. गौरम्मा कदम बढ़ाकर कमरे में चली गयी. रानी के भीतर जाते ही कुमारी दौड़ी आयी और उनका हाथ पकड़कर बोली, "अम्माजी, बुआजी कहती है, मुझे खाना नहीं खाना. आप ही समझाइये न!"

युवती सिसकते हुए बोली, "देखो मामी, रात भैया ने कहनी-अनकहनी सब कह दी. कहने लगे यह पेट किसका है? बता, नहीं तो तुझे लंगड़े की गोद में डाल दूंगा. अब मेरे जीने की क्या जरूरत है? . . . बेटी को खा जाना इस घर के लिए कोई नयी बात नहीं. दस बेटियों का यही हाल हो चुका है. मैं ग्यारहवीं हूं." युवती की सिसकियां तेज होती जा रही थीं. इस बीच बसव दौड़कर राजा वीर राज को बुला लाया.

वीर राज अभी युवक ही था. उसने अभी पैंतीस वर्ष भी पूरे नहीं किये थे. पर विलासपूर्ण जीवन के फलस्वरूप उसके मुख पर रुग्णता व कांतिहीनता थी. वह वहां पहुंचा तो क्रोध से थरथरा रहा था. पर रानी गौरम्मा और उसकी बेटी घबरायी नहीं. रानी ने कहा, "ज्योतिषी ने कहा था ग्रह दशा ठीक नहीं, योग में देवकीवाली दशा है. इसीलिए यहां आयी. आप दोनों भाई-बहन हैं, मुझे क्या लेना-देना है?"

राजा का क्रोध उसके तर्क से कम नहीं हुआ. वह अपनी पत्नी को और अपनी बहन को बुरा-भला कह रहा था, इतने में कोने में उसकी बहन देवम्माजी रोती हुई उठकर खड़ी हो गयी और अंगारे बरसाती नजरों से भाई की ओर देखती हुई बोली, "मुझे बुरी कहनेवाली जबान में कीड़े पड़ेंगे. मैं तुम्हारी तरह नहीं हूं."

"ए छिनाल कुतिया, भाई का नाम न ले. किसका गर्भ है बता, नहीं तो भंगियों के पास भिजवा दूंगा."

रानी पति से बोली, "गंदी बातें मत कीजिए. बेटी और बहन की इज्जत अपनी इज्जत होती है. महीनों अकेली रोती रही तो एक दिन हमीं ने ननदोईजी को बुलवा भेजा तो क्या गलती की. इसे बंदीगृह क्यों कहें, यह तो सुहाग का कमरा है. अपनी बेटी जैसी बहन को उनके पति के घर भेज दीजिये."

अपनी आज्ञा का इतनी दूर तक उल्लंघन हुआ देखकर वीर राज सिर से पैर तक क्रोध की मूर्ति बन गया और थरथराती आवाज में बोला, "ओह, हरामजादी! तूने मेरे बिना बताये ही उस उल्लू के पट्ठे को यहां आने दिया. अब मैं तुम्हें ठीक करूंगा." और रानी की ओर हाथ उठाकर मारने को बढ़ा, लेकिन भाग्य से कुमारी उसकी टांगों से लिपट गयी और गोद में मुंह छिपाकर चिल्लायी, "ना-ना, पिताजी, मैंने ही फूफाजी को भीतर आने दिया था."

वीरराज को बड़ा गुस्सा आया पर उसने उसे कुछ न कहा. यों वह बहुत कठोर, क्रूर, बेलिहाज आदमी था पर उसके जीवन का कोमल तंतु थी उसकी बेटी. उसने बेटी को खड़ा किया और बोला, "तू जाकर खेल. इन बातों में क्यों पड़ी है!"

राजकुमारी ने मनुहार भरे स्वर में कहा, "जब तक बुआजी को फूफाजी के पास नहीं भेजोगे, मैं खाना नहीं खाऊंगी."

"बेटी, यह कैसी तेरी बुआ है और वह उल्लू कैसा तेरा फूफा! तेरी बुआ का बस चले तो मुझे मारकर स्वयं रानी बन जाये. तू इस सांपिन को बचाना चाहती है."

कोने में बैठी देवम्माजी बोली, "एक चमार का लड़का भी तुमसे अच्छा राजा बन सकता है. मैं रानी बनूं, इसमें बुरा क्या है."

सुनकर वीर राज बहन को मारने को दौड़ा, पर रानी और राजकुमारी ने उसे पकड़ लिया और हाथ पकड़कर उसे कमरे से बाहर ले गयी.

रानी ने देवम्माजी को समझा-बुझाकर दिलासा दी, पर देवम्मा ने एक लंबी निश्वास ली और कहा, "अब क्या ठीक होना है. पिताजी के चले जाने के साथ ही अच्छे दिनों को भी बनवास मिल गया. चौदह वर्ष में एक भी अच्छी बात सुनने को नहीं मिली. आप तो अच्छी हैं, मामी जी. पर भैया का स्नेह तो सूख चुका है, वे हमें पनपने नहीं देंगे. . 'लंगड़े की गोद में डाल दूंगा. . .' कहें तो भी क्या उसे ठीक मान लेना चाहिए?"

"उठो बहन, भोजन करो. कहीं फिर ठंडा न हो जाये. मैं अभी देखती हूं." कहकर रानी ने लंगड़े को आवाज दी, "बसवय्या, जरा इधर आओ." और बाहर खड़ा लंगड़ा दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया. रानी ने उससे कहा, "कल रात तुम लोगों ने बहनजी को तकलीफ दी. खबरदार, दुबारा ऐसी हरकत की तो."

"मालिक कल आपे में नहीं थे, तिस पर बहनजी का चाल-चलन ठीक नहीं समझते थे. इसी से. . ." लंगड़े ने दबे स्वर में कहा. "यह ठीक है तुमने पी रखी थी पर थे तो तुम होश में. भैया की बात का बहाना लेकर तुम हद से आगे बढ़ रहे थे." देवम्माजी ने कहा और उसे घूरने लगी. फिर रानी के कान में फुसफुसायी. रानी का मुंह लाल हो गया. उन्होंने कहा, "खबरदार, जो फिर ऐसा किया." और देवम्माजी से कहा, "बहन, आज आप अपने घर चली जायेंगी. चिंता मत कीजिये." और अपने निवास की ओर चली गयी. सिर झुकाकर खड़े लंगड़े ने रानी के जाते ही दरवाजा बंद करके एक आदमी को पहरे पर बिठाया और अपने काम पर चला गया.

जब राजमहल में ये घटनाएं घट रही थीं, तब सोमवार पेट से मडकेरी की ओर जानेवाले रास्ते पर दो यात्री धीरे-धीरे मडकेरी जा रहे थे. उनमें से प्रौढ़ व्यक्ति की आयु लगभग साठ की थी और युवक बीस से कुछ अधिक होगा. देखने में कोई भी उन्हें पिता-पुत्र मान सकता था.

युवक ने चढ़ाई चढ़ते हुए कहा, "मडकेरी पास आ गया रहा है. मेरा मन कह रहा है कि आपका वहां जाना ठीक नहीं."

प्रौढ़ ने समर्थन में सिर हिलाया और कहा, "परंतु हमें यह जानना है बेटा कि उस चेन्नवीर का क्या हुआ? यह सब इसलिए कि भूमि हमारी रहे."

इनकी बातों से यह स्पष्ट हो गया कि यह बाप-बेटे कोडग के राजघराने से हैं. इससे दो वर्ष पूर्व अंग्रेजों ने मैसूर के राजा मुम्मडी कृष्ण राज ओडेयर, से राज्याधिकार छीन लिये थे. प्रौढ़ को आशंका थी कि वे वीर राज के साथ भी ऐसा ही न करें. कहीं यह हमें राजा का प्रतिद्वंद्वी न बनायें. उन्होंने खुलासा करते हुए कहा, "अण्णाजी एक बार जब बहुत बीमार हुए तब उन्होंने मुझे और छोटे भाई लिंगप्पाजी को हाथ पर हाथ रखकर शपथ दिलायी थी कि देवम्माजी रानी बनेंगी और हम दो प्रधान होंगे. पर लिंगप्पा शपथ तोड़कर राजा बन गया. यही नहीं, भैया का नाम लेकर मुझे मरवाने का प्रयास भी किया. वंश नाश के डर से मैं देश छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परदेसी हो गया. कितने दिन चला राज. उसी का यह बेटा अब राजा बना है. पूरी तरह से आततायी. वंश का दायित्व हम पर आ पड़ा है. प्रजा दुखी है. गोरे चाल चल रहे हैं. अब हमें चुप नहीं रहना चाहिए."

"हां, पिताजी," उनकी समझ में अब सारा घटनाचक्र आ गया था. मडकेरी के समीप पहुंचकर युवक ने जोगिया वस्त्र पहनकर शिवाचारी स्वामी का वेश धारण कर लिया.

उसी दिन और लगभग उसी समय मडकेरी में मंत्री लक्ष्मी नारायण के घर के सामने एक ब्राह्मण युवक खड़ा था. पाणे गांव के पुरोहित का दूसरा पुत्र सूर्यनारायण, जिसकी पत्नी को राजा ने उठवा लिया था. उधर एक बूढ़ा, जिसका नाम उत्तायातक्क था, दूसरे मंत्री बोपण्णा के घर फरियाद लेकर पहुंचा था. उसे सारा कोडग देश जानता था. जब टीपू सुल्तान की सेना ने भाग मंडल के प्रदेश पर आक्रमण किया तब यह प्रतिदिन एक ब्राह्मण बालक को कंधे पर बिठाकर ले जाता और बिला नागा भागमंडल के देवालय की पूजा कराता था. यह घटना चालीस वर्ष पूर्व की थी, दोड्ड वीर राज के दिनों की. शत्रु के चले जाने पर जब दोड्ड वीर राज को पता चला तब उसने इसको सम्मानित किया और वसीका बांध दिया. लिंगराज ने उसकी पीठ थपथपाकर सम्मानित किया और उससे मित्रता जोड़ी. उत्तय्या ने अपने दिनों में तीन शेर मारे थे. कोडग में शेर मारनेवाले एक खास ढंग से मूछें रखते थे. यही प्रथा थी. लिंगराज उसे शिकार पर भी ले गया था. इसीलिए लिंगराज के बेटे को स्नेह से पुट्टप्पा बुलाता था. बोपण्णा उसका बहुत आदर करता था. इसी उत्तय्या का वसीका वीर राज ने बंद कर दिया था. उस पर यह आरोप था कि वह राजा का विरोध करता था. यही जानने वह आया था कि एक राजा ने दिया दूसरे ने रोका, इसका कारण क्या है?

यह सब कुछ हो रहा था. उसी दिन शाम को ओंकारेश्वर देवालय के समीपवाले अग्रहार के बीच एक बहुत बड़े घर के बाहरी बरामदे में गृह स्वामी दीक्षित ताड़पत्रों पर लिखी पोथी को उलट-पलटकर देख रहा था. वह राज-ज्योतिषी भी था. इसी ने रानी को भाई-बहन के योग में विरोध की बात बतायी थी. वह सोच-विचार में मग्न था कि मलयाली ढंग की सफेद साड़ी पहने एक स्त्री उसके सामने आ खड़ी हुई. वह क्षण भर को ठिठका, फिर पहचान गया. यह उसकी 'पापा' थी, जो पूरे तीस वर्ष बाद दिखाई दी. उसने साश्चर्य पूछा, "कब आयी?" "गांव में आये छह महीने हो गये. गांव में लोग मुझे भगवती की उपासिका के रूप में जानते हैं." "ओह तब भगवती तुम्हीं हो? कई बार सुना, रानी साहिबा ने शांति पाठ कराया था. क्या चाहिए बेटी."

"मेरे बेटे की रक्षा की बात है."

"तुम्हारा बेटा जीवित है क्या?"

"हां, मैं फिर आऊंगी."

दीक्षित पापा को वापस जाते देखता रहा. उसे पचास साल पहले की घटना याद आ गयी. उसके भाई और गायिका के प्रेम का फूल थी यह भगवती, जिसे उसका भाई प्यार से पापा कहता था. सर्वगुणरूप संपन्न इस रूपवती कन्या को लिंगराज ने अपने प्रेमपाश में तो बांधा पर पत्नी नहीं बनाया. दबाव डाले जाने पर भी उप-पत्नी के रूप में भी नहीं स्वीकार किया उसने. दीक्षित का छोटा भाई भी चल बसा. एक साल भी नहीं बीता, जाने क्या बात हुई, यह लड़की, उसकी मां राजभवन से एकाएक गायब हो गयी. घटनाचक्र तेजी से परिवर्तित हुआ. दोड्डराज चल बसा. उसकी लड़की को गद्दी से हटा लिंगराज राजा बना. वह भी चल बसा. अब उसका यह लड़का राजा बना. यों कोडग के इतिहास के चालीस वर्ष बीत गये.

आज वही प्रौढ़ा होकर अपने बेटे की रक्षा की बात को लेकर आयी है. दीक्षित चिंता में डूब गया.

उसी दिन दोपहर में वीरराज को मंगलूर से सार्वभौम सत्तावाली ईस्ट इंडिया कंपनी के कलक्टर का पत्र मिला. उसमें कोडग के महाराज श्री चिक्कवीर राजेंद्र को सादर प्रणाम के बाद पाणे ग्राम की बहू को उठाकर ले जाने के बारे में शिकायत की गयी थी और सत्यासत्य की खोज करने का निवेदन किया गया था.

जिस प्रकार संध्या समय चारों ओर अंधकार घिरता जाता है, उसी प्रकार विपतियां चिक्कवीर राजेंद्र को घेरे थीं. वीर राज जन्म से दुष्ट न था. यह उसका दुर्भाग्य ही था कि वह छोटे भाई के घर पैदा हुआ. एक तो पारिवारिक विद्वेष का वातावरण, दूसरा घुड़साल में रहनेवाले लड़के बसंत का साथ. मां की अस्वस्थता के कारण धाय के हाथों लालन-पालन, पिता लिंगराज की उपेक्षा, दोड्डराज के स्वर्गवास के बाद रानी बनी देवम्माजी को हटाकर लिंगराज का गद्दी पर बैठना और वीर राज का युवराज बनना—सबने मिलकर उस पर अच्छा प्रभाव नहीं डाला. अंततः परिणाम यही हुआ कि पिता के बाद जब वीर राज राजा बनने लगा, तब वह दुष्टों में से एक ही था.

इन सब बातों से उसे बचानेवाली थी उसकी रानी गौरम्मा. विवाह के तीन वर्ष बाद उसके एक लड़की हुई. लड़की के कारण वह अनजाने ही गौरम्मा का लिहाज करने लगा. वीर राज ने बोपण्णा, लक्ष्मी नारायण, पोन्नप्पा के अतिरिक्त लंगड़े बसवय्या को भी लोगों की इच्छा के विरुद्ध मंत्री बना लिया था. वीर राज के लिए मद्य, मांस और स्त्रियां जुटाना ही उसका काम रह गया था. राजा इन्हीं में डूबा रहता था. राज्य में व्याप्त अव्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट करनेवालों में भागमंडल का चेन्नावीरय्या प्रमुख था. राजा ने उसे मौत के घाट उतार दिया था. पर इससे विद्रोह दबा नहीं.

मडकेरी वर्तक पेटे के यजमान चिकण्णा शेट्टी राजमहल के अन्न-भारक ही नहीं, धन आभूषण भी पहुंचाते थे. राजा की बुरी आदतों के कारण जो बेहिसाब खर्चा होता था, उससे राजा शेट्टी का कर्जदार भी हो गया था. पैसा वापस आता नहीं दीखता था, उस पर एक नयी मुसीबत और कि राजा उसकी पुत्रवधू पर असक्त हो गया था. शेट्टू विचलित हो गया था. इस घटना से लोगों में असंतोष बड़ी तेजी से फैलने लगा था. आखिर शेट्टी, बोपपणा और लक्ष्मीनारायण, सबने यह निश्चय किया कि रानी से राज्य संभालने के लिए कहा जाये. रानी अपने आभूषण देकर ऋण चुकाने को तत्पर थी पर इसके लिए वे सहमत न हुए. राजा के दायें हाथ बसवय्या ने छिपकर उनकी यह गुप्त मंत्रणा सुन ली थी और उसने सब कुछ राजा को बता दिया. वह गुस्से में रानी को उलटा-सीधा बकने लगा था. वह रानी को मारने भी दौड़ा. पर रानी ने संयम नहीं खोया. उसने उसे पकड़ लिया. गुस्से के वेग से राजा मूर्च्छित होकर पंद्रह दिन तक बिस्तर पर पड़ा रहा. राजा के स्वस्थ होने पर रानी ने वैद्य, दीक्षित तथा पादरी मैघलिंग को इनाम दिये.

राजा यद्यपि स्वस्थ तो हो गया था, पर उसके शरीर में सत्व न रहा. था. यह दुडुब्बा की राय थी. उसने बसवय्या को अलग बुलाकर कहा था, "वैद्य की दवा से काम नहीं चलेगा. एक भगवती भी आजकल इधर आयी हुई है. उसे बुलाकर भी दिखाना अच्छा है."

भगवती को बुलाया गया. पहली ही बार की भेंट में उसने चेन्न बसवय्या और राजघराने के वैमनस्य की बात उठायी और उसे ठीक कराने के लिए पूजा-पाठ कराने को कहा. उसने रानी से भी भेंट की. सबको संदेह हो चला था कि वह राजमहल से संबंध बढ़ाने के प्रयास कर रही है. एक दिन बसव सब काम निबटाकर अकेला भगवती से राजा के लिए शारीरिक शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करने के लिए जा पहुंचा पर वह ऐसा नहीं कर पाया.

इसी बीच एक दिन अपरंपर स्वामी ओंकारेश्वर मंदिर के सामने वाली पुष्करणी के ऊपर की सीढ़ी पर ध्यान के बहाने बैठा था. दीक्षित ने उसकी आवाज से उसे पहचान लिया. यह तो राजमहल के अप्पाजी बीरण्णा है. "लोगों को तो पता नहीं तुम कौन हो?" उन्होंने कहा.

"केवल सूरप्पा ही जानते हैं." उसने उत्तर दिया.

सूरप्पा लक्ष्मीनारायण का छोटा भाई था. पहले वह अप्पाजी के

Continental-B.I.C./84

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवकों में था. अब वह राजमहल के संगीत नाटक विभाग का मुखिया था.

अगले दिन दीक्षित ने ज्योतिष लगाकर उसका फल वीरप्पा को बताया और कहा कि अप्पाजी यहां आकर रहना चाहते हैं तो राजा को सूचित करके कह सकते हैं, पर बाहर रहने में ही क्षेम है."

वीरप्पा ने पूछा, "ऐसा कौन-सा काम है, जिससे सबका भला हो."

"आपके बुजुर्ग एक दूसरे के साथ मैत्री से नहीं रहे, वीरप्पा. अधिकार की लालसा में अधिकतर लोग गलत रास्ते पर चले. केवल तुम्हारे पिताजी ने यह नहीं किया, सर पर गठरी रखकर चले गये. वह बड़े सत्यवादी हैं. वह स्वयं जानते हैं कि सबके लिए शुभ क्या है?"

"वह तो ठीक है. पर. . .उनका बेटा राजा बन जाये, यही उनकी इच्छा है."

"न्याय से हाथ लगे तो अच्छा, नहीं तो अप्पाजी यह पसंद नहीं करेंगे. राजा और उसकी बेटी को हटाकर राज्य लेने की बात वह स्वीकार नहीं करेंगे."

"ठीक है दीक्षितजी." वीरप्पा ने कुछ सोचा और उसने निर्णय किया कि वह मडकेरी तथा आसपास भ्रमण कर पिता को सारी स्थिति से अवगत करायेगा. आगे वह जैसा उचित समझें.

वीरप्पा के जाने के बाद दीक्षित ने राजा और रानी की जन्मपत्रियों को फिर से देखा कि वे क्या दिशा निर्देश करती हैं.

राजा को जबसे दीक्षित की क्रूर ग्रह-दशावाली बात पता चली थी, उसके क्रोध का पारावार न था. दीक्षित के सामने आते ही वह बिफर पड़ा, "आइये पुजारीजी, आपको पूछने-ताछनेवाला कोई नहीं क्या? आपने क्या कहा था, कंस-देवकीवाली बात? औरतों को डराने का ही काम है क्या? जरा जबान को ताला लगाकर रखिये."

क्षण भर को दीक्षित हक्का-बक्का रह गया. राजा के पास आते समय उसे रानी ने बताया था कि उसकी ननद गर्भवती है. कैसी देवेच्छा है यह कि कैद में रहने पर भी बहन गर्भवती हो गयी. ऐसा लगता है, ग्रह अपना काम करने का निश्चय कर चुके हैं. उसने सोचा. वह निर्निमेष राजा की ओर देखने लगा.

"क्या देख रहे हैं. हमें कोई डर नहीं है. आपकी पोथी को झूठा बनाकर दिखा देंगे. हमारी बहन यहीं रहेगी." राजा ने कहा.

"महाराज की मर्जी." दीक्षित ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया.

परंतु राजकुमारी और रानी, दोनों के आग्रह पर राजा अपनी बहन को अप्पगोलं, उनके महल, भेजने को तैयार हो गया. रानी को संतोष के साथ-साथ आश्चर्य भी हुआ. उसने तनिक भी देर नहीं की और तैयारियां शुरू कर दीं. सबने उन्हें विदा किया. दीक्षित भी अक्षत लेकर साथ-साथ पीछे चला.

ननद की रक्षा का काम हुआ. अब रानी के लिए उतना ही कठिन

"गंदी बातें मत कीजिए. बेटी और बहन की इज्जत अपनी इज्जत होती है. महीनों अकेली रोती रही तो एक दिन हमीं ने ननदोई जी को बुला भेजा... इसमें क्या गलती की. इसे बंदीगृह क्यों कहें, यह तो सुहाग का कक्ष है. अपनी बेटी जैसी बहन को उसके घर भेज दीजिए..."

वह रानी को कुछ बताने को उत्सुक था कि महल से बुलावा आ गया. रानी अंग्रेजों को दिये जानेवाले भोज के विषय में उससे बात करना चाहती थी. रानी ने राजा के स्वास्थ्य के विषय में पूछा तो उसे लगा कि वह ईश्वर की प्रेरणा से यह बात कर रही है. रानी ने जब यह सुना कि राजा की ग्रहदशा बड़ी क्रूर है तो उसका हृदय धक् से रह गया.

दीक्षित ने आगे कहा, "महाराज से आपको एक काम कराना होगा. शीघ्रातिशीघ्र अपनी ननद को कैद से छुड़ाकर अप्पगोलं भिजवा दीजिए."

"आप कंसवाली दशा बता रहे हैं. ननदजी को बच्चे नहीं, यह डर कैसे?"

"ग्रहदशा के अनुसार इसी में राजा का क्षेम है."

"अच्छी बात है, हमसे जो बन पड़ेगा करेंगे. इस संकट से महाराज मुक्त हो जायें, प्रार्थना कीजिये और पूजा कराइये."

"जो आज्ञा रानी मां." कहकर दीक्षित वापस लौटा.

इधर राजा की ओर से अस्वस्थता के दौरान भेजे गये पत्र के उत्तर में बेंगलूर स्थित अंग्रेजी राज्य के प्रतिनिधि और उसके एक अंग्रेज साथी से दो पत्र प्राप्त हुए, जिनमें उन्होंने राजा के आतिथ्य के निमंत्रण को स्वीकार करते हुए महाराज के स्वास्थ्य लाभ पर प्रसन्नता व्यक्त की थी.

एक और कार्य था. उसकी बात पर चलकर ननद के पास जाने की अनुमति देनेवाले पहरे के नायक उत्तप्पा की रक्षा करना. राजा तो उसे सूली पर चढ़ाने को आतुर हो रहा था, पर रानी और विशेषकर राजकुमारी की बात उसे माननी पड़ी थी.

उस सांझ अपने वचनानुसार भगवती दीक्षित से मंदिर में आकर मिली थी. उसने अपनी राम कहानी ताऊ को सुनायी.

"मैं सिर्फ सोलह साल की थी. अण्णया, महल के तौर-तरीके मुझे क्या पता? राजा ने महल के मंदिर में बुलाया. मना कैसे करती. पास खड़ी हुई. 'शादी हो गयी समझो मेरे साथ चलो' कहा. अपने मन की कर ली. बाद में मां को बताया और शादी पूछने पर कहा, 'समझो कर ली.' मां चुप हो गयी. मुझसे कहा, 'चार दिन देखो,' देखा कहकर रह जाने में वह लड़की बूढ़ी हो गयी अण्णया. पिताजी को भी समझा दिया. फिर मुझे हालेरी से निकालकर नाल्कुनाड् ले गये. एक वर्ष बीत गया. देवक्का के घर एक बच्चा हुआ. मेरा बच्चा बिना शादी का था, उसका शादीवाला. इसका क्या हाल हो गया सोचकर डर गयी. इस बात को चौंतीस वर्ष बीत गये. मां भी मर गयी. मैं अकेली हो गयी. गुरु की सेवा की. भगवती की शरण ली. गुरुजी भी आपकी ही तरह बहुत अच्छे थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अण्णय्या. वे भी मुझे 'पापा' कहकर बुलाते थे. उन्होंने मुझे संगीत सिखाया, ज्योतिष विद्या सिखायी. दो साल पहले वे भी चले गये. मरते समय बोले, 'तुम्हारा बनवास समाप्त होने वाला है?' उसकी कुंडली देखकर ऐसा कीजिये, जिसमें उसका भला हो. मैं आपकी पापी हूं. अब मेरा पुण्य बताइये."

भाई की बेटी की आत्मकथा सुनकर दीक्षित उदास हो गया. वह चुप रहा.

"आप चुप क्यों हैं, क्या कहते हैं." पापा ने पूछा.

"तुम्हारा बेटा लिंगराज का बेटा है, पर वह राज्य का अधिकारी नहीं बन सकता."

"आप भी यही कहते हैं. मैं भी नहीं चाहती कि वह अपने छोटे भाई को हटाकर स्वयं राजा बने. वह भाई राज्य खो देगा, तब किसी दूसरे को राजा बनाना पड़ेगा. तब आपका दोहता राजा बने. यही मेरा कहना है. वह सब आने पर बताऊंगा."

"बड़ी दूर की सोची बेटी तुमने. राजा की पत्री, बेटे की पत्री दोनों देखी हैं?"

"जी हां, देखी है. गणना करके आयी हूं. आप देखिये क्या कहती हैं."

"अच्छा बिटिया देख लूंगा."

"अच्छा अब मैं चलती हूं." और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उठी. उनको चरणों में माथ झुकाया और प्रदक्षिणा करके मंदिर के बाहर चली गयी.

पाणे सूर्यनारायण ने पता लगा लिया था कि उसकी पत्नी वहां लायी गयी है, तभी वह लक्ष्मीनारायण के घर सहायता मांगने गया था. उस शाम उत्तय्या तक्क के वसीका बंद हो जाने पर चर्चा करने के लिए बोपण्णा के साथ लक्ष्मीनारायण के घर गया. वहां निश्चय किया गया कि सूर्यनारायण की पत्नी को छुड़ाने के लिए रानी से प्रार्थना की जाये.

अगले दिन सुबह उत्तय्या तक्क आया. उसने राजा को खरी-खोटी सुनाते हुए कहा, "मैं साठ का हो चुका पर अब भी बाहों में स्त्री को जकड़ सकता हूं. जवान को बूढ़े से भी गया बीता न होना चाहिए. बात कड़वी हो गयी है. बुरा न मानियेगा. यही समझियेगा कि पिता के दोस्त ने आपकी भलाई के लिए कहा है. अच्छा, अब मैं चलता हूं." और द्वार पर खड़े बसव की ओर नजर डाले बिना बाहर चला गया.

उत्तय्या का वसीका शुरू करने का आदेश देकर राजा फिर शराब में डूब गया.

उत्तय्या तक्क, बोपण्णा और लक्ष्मीनारायण संतुष्ट थे कि यह प्रसंग आसानी से निबट गया. अब उनका अगला लक्ष्य था. पाणे की लड़की को छुड़ाना. लक्ष्मीनारायण की मां सावित्रम्मा ने रानी और राजकुमारी से मिलकर योजना बनायी और उस लड़की को छुड़ाकर उसके पति को साथ कर दिया गया.

राजा की बहन राजमहल की कैद से छूटकर जब अप्पगोलं पहुंची. तो उसके पति चेन्नबसव को संतोष से बढ़कर आश्चर्य हुआ. स्वागत-सत्कार के बाद दोनों ने भोजन किया.

दूसरे दिन सूर्योदय से कुछ पहले देवम्माजी ने एक सुंदर लड़के को जन्म दिया. सबको बड़ी खुशी हुई. मडकेरी से रानी ने मां बेटे के लिए प्रसाधनादि मांगलिक वस्तुएं भेंट कीं. किंतु राजा क्रोध से भर गया. दीक्षित ने संकेत किया, शिशु को राजा के हाथों से दूर रखना होगा.

उधर मां बच्चे की कुंडली दिखाने को उत्सुक हो रही थी पर पिता को भगवती में आस्था थी. चेन्नबसव का नौकर जब भगवती के आश्रम में पहुंचा, तब वह मडकेरी आयी हुई थी. ओंकारेश्वर के मंदिर में दीक्षित के साथ बातचीत कर रही थी. बातचीत का विषय नवजात की जन्म कुंडली ही था.

"मामा की कुंडली और भांजे की कुंडली हूबहू मिलती है, अण्णय्या जी. यह मामा उसे मारेगा और वह इसके हाथ से मरेगा."

"रहने दे, पापा. इन सारी बातों की चिंता तुम क्यों करती हो?"

"मैं चिंता क्यों करूं?" भगवती को यह भी विश्वास था कि उसका बेटा राजा बनेगा.

लेकिन दीक्षित को यह विश्वास था, यह उसके लिए हानिकारक होगा. पिता के इस विश्वास से ही उसके मुंह का रंग उड़ गया और वह सिर झुकाकर वहां से चली गयी.

इस समय तक अंग्रेजों को नवरात्री में वहां आने का निमंत्रण भेज दिया गया था. इस विषय पर वीर राज और रानी ने कोई विचार-विमर्श नहीं किया था. परंतु दोनों को हृदय में एक ही बात थी कि कुछ प्रमुख व्यक्ति राजघराने के विरोधी बन रहे थे और राजा के विरुद्ध शिकायतें भेजनेवालों में घर का दामाद चेन्नबसव भी था. राजपरिवार में जब ऐसी मंत्रणा चल रही थी, तब उनके निमंत्रित गोरे लोग कुछ और ही सोच रहे थे. मद्रास के गवर्नर और बंगलूर के रेजिडेंट ने जो आपस में चिट्ठी-पत्री की थी, उससे स्पष्ट था कि अंग्रेज राजा के पापाचार से असंतुष्ट थे और राजा को गद्दी से हटाना चाहते थे. उनकी योजना थी कि राजा के अतिथि के रूप में मडकेरी जाकर उसे चेतावनी देंगे. वहां की स्थानीय परिस्थितियों का अध्ययन करके कोडग को कंपनी सरकार के अधीन करने के बारे में साधक-बाधक, बलाबल सब बातों को जानने का प्रयास करेंगे. इसके अतिरिक ईसा मसीह के पवित्र वचनों का प्रसार करके यहां की जनता के दिलों के अंधकार को दूर करके उनका उद्धार करना भी उनका एक उद्देश्य था.

त्योहार का दिन आ पहुंचा. अतिथि भी आ पहुंचे. राजभवन का आतिथ्य बेरोक-टोक चला. इस बीच राजा ने पाणे से चुराकर लायी लड़की को कुशलतापूर्वक वापस भेज दिया. गोरे इस बात से अत्यंत प्रसन्न हुए. उनके सम्मान में शिकार, राग-रंग, संगीत-नृत्य के अतिरिक्त नाट्य समारोह का आयोजन भी किया गया. राजमहल की प्रथा के अनुसार अपने देश के प्रसंगों को लेकर नाटक देखे गये. चेन्नबसव तथा मंत्री लक्ष्मीनारायण के भाई सूरप्पा द्वारा तैयार किये गये नाटक में तो राजा की विलासिता ओर उसके लंगड़े मंत्री बसवय्या की पोल खोल दी गयी. राजा कुपित हो उठा. अंग्रेजों ने मंत्रियों व राजा के बहनोई से भी शासन की स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त की.

वहां से लौटकर अंग्रेजों ने गवर्नर जनरल को जो रिपोर्ट भेजी, उसके अनुसार राजा को गद्दी से उतारना कोई कठिन कार्य न था. पर वे स्वयं पहल नहीं करना चाहते थे. राजा ने चारों तरफ शत्रु बना रखे हैं. उसका एक ताऊ भी है, जो अपने पुत्र को गद्दी पर बिठाना चाहता है, यद्यपि बहुत दिन से राज्य से दूर होने के कारण उसे पहचाननेवाले कम हैं. कुछ लोगों ने यह भी जानकारी दी है कि राजा का एक बड़ा भाई भी है. उसकी बहन भी गद्दी की दावेदार है. अंग्रेजों के सामने अनेक विकल्प थे.

उधर चेन्नबसवप्पा को जैसे ही पता चला कि नाटक के कारण राजा बहुत नाराज है, वह देश छोड़कर बंगलूर जाने की योजना बनाने लगा. परंतु उसने यह काम जितना आसान समझा उतना था नहीं. उसी शाम राजा ने उसे और उसकी पत्नी व बच्चे को अप्पगोलं के राजमहल में बंदी बना दिया. राजमहल की कैद से छूटे मुश्किल से चार महीने हुए थे. अब उसके साथ उसका पति और बच्चा भी बंदी हो गये थे. यह सोच-सोचकर राजा की बहन देवम्माजी दुखी होने लगी. पर उसके पति ने धीरज नहीं खोया. उसी रात कैलू के त्योहार का भोज था. उसने पहरे-दारों को एक पंक्ति में बिठाया और उनकी खीर में काफी अफीम घोटकर मिला दी. वह अपनी पत्नी, बच्चे और अनुचर चोमा के साथ आधी रात को राजा की कैद से भागने में सफल हो गया. पर दुर्भाग्य ने यहां भी उनका पीछा नहीं छोड़ा. रास्ते में उनका बच्चा कहीं गिर गया. किसी की समझ में न आया कि क्या किया जाये. मां के मन में तो सिर्फ बच्चे की ही रक्षा की बात थी. बाकी लोग आसानी से लौटने को तैयार न थे. अंत में यह यह निश्चय किया गया कि चोमा जिस रास्ते से वे आये हैं, उसी रास्ते

Continental-B.T.C.784

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बच्चे को ढूंढता हुआ वापस जाये. पर दुर्भाग्य जैसे यहां भी उन सबका पीछा कर रहा था. बच्चा तो मिल गया पर चोमा को पकड़ लिया गया. यह सोच ही रहा था कि बच्चे को कैसे मालिक के पास पहुंचाया जाये कि इस बीच राजा अपने मंत्री बसवय्या के साथ वहां आ पहुंचा. बसव ने बच्चे का मुंह देखा, कपड़ा देखा, फिर राजा की ओर मुड़कर बोला, "राजमहल का ही बच्चा है मालिक."

राजा की त्यौरियां चढ़ गयीं, उसने पूछा, "भागनेवाले मां-बाप ही होंगे. यह उनका नौकर होगा. पूछो इससे क्या बात है."

परंतु चोमा की जबान बंद रही. राजा ने चोमा को पकड़कर बल्ली की नोक को उसके पेट में धंसाकर सूली पर चढ़ा दिया. "मां, अब मेरे मालिक और मालकिन की रक्षा करना. उनके बच्चे की रक्षा करना!" दूसरे ही क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ गये.

उधर जब देवम्माजी और चेन्नबसव को यह पता चला कि बच्चा राजा के हाथ पड़ गया है तो वे हतप्रभ रह गये. किसी तरह अपने को संभालकर उन्होंने कलक्टर से सहायता मांगी. उसने वीर राज, मद्रास के गवर्नर और बंगलूर के चीफ कमिश्नर को एक पत्र भिजवाया और उन्हें उचित सहायता देकर बंगलूर भेज दिया.

कलक्टर का पत्र देखकर वीर राज के तन बदन में आग लग गयी. वह बहुत गरजा बरसा, "बच्चे को भेजूंगा इन हराम की औलादों के पास. हिम्मत तो देखो हराम की औलाद अंग्रेज की!" उसने अगले दिन रेजिडेंट को एक पत्र भिजवाया, जिसमें अपने अपराधी बहनोई और बहन

निश्चल हो गया. छुरी को वहीं छोड़ राजा दबे पांव अपने कमरे में लौट आया. उसने जब बसव को बताया तो वह स्तब्ध रह गया. रानी भी दुःख के सागर में डूब गयी. बसव ने छुरी को निकालकर, धोकर अपने पास रख लिया और बच्चे को चुपचाप दफना आया.

सूर्योदय के साथ यह बात सारे शहर में फैल गयी. इसी समय शहर में एक खबर और आयी राजा के दुर्व्यवहार के कारण गोरे सेना लेकर आ रहे हैं. यह सुनकर मंत्री-परिषद ने सेना को देश की सीमा पर रोकने और राजा से गद्दी छोड़ने का अनुरोध करने का निश्चय किया और उन्होंने बसव को अपना अभिप्राय समझाया. वह इतनी सरलता से उनकी बात मान लेगा, इसकी उन्हें आशा न थी.

इधर बच्चे की हत्या के बाद राजा मानसिक संतुलन खो बैठा, उसके बुद्धिविकार के उपचार के लिए रानी ने भगवती को बुलाया. सारी रात भगवती राजा के सिरहाने बैठकर किसी मंत्र का जाप करती रही. इसी प्रकार तीन दिन तक चिकित्सा चलती रही. भगवती की चिकित्सा से वीरराज स्वस्थ हो गया.

इस बीच राजा का राज्याधिकार समाप्त हो गया. रानी को इस बात का दुख हुआ कि इस भाग्य के लिए उसकी बेटी ने राजमहल में जन्म लिया था? बोपण्णा चाहे तो इसे गद्दी मिल सकती है और उसे सुख मिल सकता है.

राजा को जब यह सूचना मिली तो वह क्रोध में बसव पर बरस

मद्रास के गवर्नर और बंगलूर के रेजिडेंट ने जो आपस में चिट्ठी-पत्री की थी, उससे स्पष्ट था कि अंग्रेज राजा के पापाचार से असंतुष्ट थे और राजा को गद्दी से हटाना चाहते थे. . . . ईसा मसीह के पवित्र वचनों का प्रसार करके यहां की जनता के दिलों के अंधकार को दूर करके उनका उद्धार करना भी अंग्रेजों का एक उद्देश्य था.

को वापस भेजने का आग्रह किया. इसके बाद कई पत्र भिजवाये, पर नतीजा कुछ नहीं निकला. राजा ने अंग्रेजों के प्रतिनिधियों को कैद कर लिया और फाल्गुन मास के पहले सप्ताह में सेनापति फ्रेसर ने सेना टुकड़ियों को तीन नायकों के हाथ में देकर स्वयं उपसेनापति लिंडसे के साथ एक टुकड़ी लेकर पिरियापट्टन की ओर रवाना हुआ.

बच्चा तो रनिवास में हंसता-हंसता बढ़ रहा था. उसे रानी और राजकुमारी का भरपूर स्नेह मिल रहा था, परंतु राजा को ही इसमें कोई सुख नहीं मिला. रानी ने तो राजमहल, राजा और बच्चे के मंगल के लिए पूजा भी करायी. तक्क, सावित्रम्मा, यहां तक कि राजकुमारी की बच्चे को उसके माता-पिता के पास भेजने की मनुहारों से राजा द्रवित नहीं हुआ. सावित्रम्मा की मनुहार सुनकर राजा के शरीर का ताप बढ़ गया. मन भी असंतुलित हो गया. सारा राजमहल सो गया. राजा को नींद न आयी. उसने एक स्वप्न देखा कि उसके सिर से मुकुट उतारकर बच्चे के सिर पर रख दिया है और उसके एक ओर उसकी बहन है और दूसरी ओर बहनोई और इनके सामने मैसूर का रेजिडेंट साहब खड़ा है. उसे लगा कि उसका भविष्य साक्षात सामने खड़ा है. उसने निश्चय किया कि बच्चे को खत्म कर डालना है और वह अंदर से एक अर्धचंद्राकार तेज छुरा उठा लाया. और निशब्द रनिवास के बीच के कमरे में पहुंचकर पालने के पास खड़ा हो गया. उसने बच्चे को घूरा. छुरी बाहर निकालकर गर्दन पर रखकर दबा दी. बच्चा तनिक कसमसाकर

पड़ा. अंततः बसव ने जब उसे पांव पकड़कर समझाया तो वह तैयार हो गया. उसने कहा, "अच्छी बात है पंडितजी, हम अपनी बेटी के लिए गद्दी छोड़ते हैं. आप गोरों को वापस कर दीजिये. हम उनका हर्जाना देंगे."

लक्ष्मीनारायण ने नतमस्तक होकर कहा, "जो आज्ञा मालिक!" और बसव के साथ बाहर आ गया.

फ्रेसर की योजना के अनुसार उसके मातहत पांचों दल एक ही दिन लगभग दोपहर के समय लंबा रास्ता तय करके कोडग की सीमा तक आ पहुंचे. इसके साथ अप्पा जी भी था. उसे मालूम था कि दल नायक ने कड़ा हुक्म दिया था कि "हमारे आदेश के बिना कोई यहां कदम रखे तो गोली मार दो!"

वह जैसे ही आगे बढ़ा वैसे ही सीमा-सैनिक की गोली से ढेर हो गया. सेना आगे जाने से रुक गयी, पर लड़ाई नहीं रुकी. राजा को समझा-बुझाकर गद्दी छोड़ने के लिए राजी कर लिया गया. एक कार्यक्रम निश्चित करके फ्रेसर द्वारा कंपनी सरकार की ओर से एक घोषणा की गयी: "कोडग के राजा वीर राजेंद्र को वहां के प्रमुखों ने गद्दी से उतार दिया है. उन्होंने देश का शासन भली भांति नहीं चलाया, प्रजा को कष्ट दिये, कई खून किये, अंग्रेजों के प्रतिनिधियों को कैद में रखकर उनका अपमान किया. अतः उनको दंड देने के लिए हमें यहां आना पड़ा. कोडग की जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

भारत के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित
शीर्षस्थ भारतीय साहित्यकारों की अनन्य रचनायें

ज्ञानपीठ पुरस्कार	लेखक	पुस्तक	मूल्य
1965	जी. शंकर कुरूप	ओटक्कुषल ओटक्कुषल अर्थात् "बांसुरी" मलयालम् की काव्य कृति है ।	10.00
1966	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	गणदेवता बंगाल के ग्राम्य जीवन पर आधारित उपन्यास ।	42.00
1967	उमाशंकर जोशी	निशीथ गुजराती मूल के साथ हिन्दी काव्य रूपान्तर ।	48.00
1967	कु. वे. पुटप्पा	श्री रामायण-दर्शनम् महाछन्दों में रचित कन्नड़ का अद्वितीय महाकाव्य ।	9.00
1968	सुमित्रानंदन पंत	चिदम्बरा चिदम्बरा तथा अन्य कृतियों से संकलित पंत जी की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह । अनेक भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध ।	7.00
1969	फिराक गोरखपुरी	बज़्मे जिन्दगी रंगे शायरी फिराक साहब की श्रेष्ठतम रचनाओं का संकलन देवनागरी लिपि में ।	35.00
1971	विष्णु दे	स्मृति सत्ता भविष्यत् देवनागरी में बंगला मूल के साथ हिन्दी काव्य रूपान्तर ।	12.00
1972	रामधारी सिंह दिनकर	संचयिता कवि दिनकर द्वारा स्वयं संजोया हुआ काव्य-संकलन ।	32.00
1973	गोपीनाथ महान्ती	माटी-मटाल उड़ीसा के ग्राम्य-जीवन का गौरव-ग्रंथ । पूरा उपन्यास दो भागों में ।	40.00
1973	द. रा. बेन्द्रे	चार तार 44 कविताओं का संकलन कन्नड़ मूल के साथ हिन्दी रूपान्तर ।	15.00

ज्ञानपीठ पुरस्कार	लेखक	पुस्तक	मूल्य
1976	आशापूर्णा देवी	प्रथम प्रतिश्रुति (लघु नाट्य रूपान्तर)	3.00
		सुवर्णलता (उपन्यास)	45.00
		बकुलकथा (उपन्यास)	45.00
1977	शिवराम कारंत	मूकज्जी कन्नड़ उपन्यास का हिंदी रूपान्तर ।	27.00
1978	अज्ञेय	कितनी नावों में कितनी बार अज्ञेय जी द्वारा 1962 से 1966 के बीच रची गयी श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह ।	18.00
1979	वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य	मृत्युंजय असमिया उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर ।	38.00
1980	एस. के. पोट्टेक्काट	कथा एक प्रान्तर की मलयालम उपन्यास का हिंदी रूपांतर ।	50.00
1981	अमृता प्रीतम	अमृता प्रीतम : चुनी हुई कवितायें	35.00
		अमृता प्रीतम : सैलेक्टेड पोयम्स	38.00
		अमृता प्रीतम : चुने हुए उपन्यास	90.00
		अमृता प्रीतम : चुनी हुई कहानियां, चुने हुए निबंध	50.00
		कोरे कागज (लघु उपन्यास)	15.00
1982	महादेवी वर्मा	महादेवी : प्रतिनिधि गद्य रचनाएं	45.00
		महादेवी : प्रतिनिधि कविताएं	35.00
1983	मास्ति वेंकटेश अय्यंगार	चिक्कवीरराजेंद्र (उपन्यास)	48.00
		परकाय प्रवेश (कथा-संग्रह)	35.00
		सुब्बण्णा (लघु उपन्यास) पुस्तकालय सं.	10.00
		पेपर बक	5.00

हम चाहते हैं कि अच्छी से अच्छी पुस्तकें कम से कम दाम पर आप तक पहुंचे

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड
नई दिल्ली-110003

Continental-B.I.C./84

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को एक नया राजा चुनना है. इस कार्य में हम आपकी सहायता करेंगे. कोडग की जनता सुख से रहे, यही कंपनी सरकार का उद्देश्य है." यह उस घोषणा का सारांश था. जनता इससे अत्यंत प्रसन्न हुई.

राजा की गद्दी के दावेदारों में भगवती थी, पर अपने लिए नहीं अपने पुत्र के लिए. उसने अंग्रेजों को नाल्कुनाड के राजमहल का गुप्त मार्ग भी बताया जहां राजा छिपा हुआ था. राजा स्वाभवतः कायर न था. अंग्रेजों की सेना को आते हुए देख राजा जैसे ही अपने लंगड़े मंत्री बसवय्या के साथ राजमहल के गुप्तद्वार से निकला वैसे ही पकड़ लिया गया. यह कैसे हुआ? वह हतप्रभ रह गया, 'हो न हो लंगड़े, बसव ने मुझे अंग्रेजों के हाथ पकड़वा दिया है.' वह इसी निश्चय पर पहुंचा. बसव को देखते ही वह चिल्लाया, "अपने आप पकड़वाकर हाथ पड़ गये कहता है हरामजादे!" और अपनी कमर से पिस्तौल निकाल उसका सीना गोलियों से बींध दिया. अंग्रेज अधिकारी से उसे जब पता चला कि राजमहल के गुप्तद्वार की जानकारी उन्हें बसव ने नहीं किसी और ने दी थी, तब भी उसे विश्वास नहीं हुआ. न ही बसव के मरने पर कोई पश्चाताप हुआ.

अंग्रेज असमंजस में थे कि किसे गद्दी पर बिठाया जाये. राजा की बहन को? राजकुमारी को? अपरंपर स्वामी के वेश में रहनेवाले राजा के ताऊ के पुत्र को? भगवती के पुत्र को? उन्होंने इस संबंध में मंत्री परिषद से मंत्रणा की. जनसभा की. भगवती ने जब यह रहस्योदघाटन किया कि मंत्री बसवय्या लिंगराज का बड़ा लड़का है और वह उसकी मां है तब लंगड़ा, नाई!, बसवप्पा! भगवती और लिंगराज का बेटा है, सभी आश्चर्यचकित रह गये. भगवती ने जब अपनी करुण गाथा सुनायी तो सभी द्रवित हो गये. उत्तय्या तक्क ने इस सत्य की पुष्टि की. लिंगराज ने विवाह का झूठा वादा किया, फिर भगा दिया. बच्चे का पांव मरोड़ दिया. हम भी शपथ के कारण इस बात को रहस्य रखने के लिए मजबूर थे. चालीस वर्ष बीत गये. उत्तय्या ने कहा, "पर कैसा दुर्भाग्य था. भगवती की साधना निष्फल हो गयी थी. उसका बेटा बसवय्या कैसे राजा बनता. वह तो राजा के क्रूर हाथों से मारा गया था." रानी को जब पता चला कि भगवती उसके ससुर की प्रेयसी थी तथा बसव राजवंश का था तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही.

अगले दिन फ्रेसर अकेला राजमहल में आया. वह राजा से मिला और उसे यह निर्णय सुनाया कि राजा को मंगलूर जाकर टीपू सुल्तान के महल में रहना होगा. उसे प्रतिमास छह हजार रुपये वृत्ति दी जायेगी. राजा के पास और कोई चारा न था. वह रानी और बेटी व अपनी कुछ धन संपत्ति को लेकर वहां चल दिया. वीरराज की बहन देवम्माजी को दहेज में मिली जमीन के अतिरिक्त दो सौ पचास रुपये प्रति मास वृत्ति देने का फैसला हुआ. कमिश्नर ने भगवती को पुरस्कार स्वरूप 'उंबली' जागीर देने का निर्णय किया, पर उसने इनकार कर दिया.

अंग्रेजों ने शासन अपने हाथ में लिया. राजा को काशी भेज दिया गया. राजकुमारी को अंग्रेजी सिखाने के लिए लूसी होकर को नियुक्त किया गया. वे राजकुमारी को ईसाई मत की ओर आकर्षित करना चाहते थे. राजा तैयार था. उसका कहना था, "इस धर्म में रहकर ही क्या मिला? राज्य मिले तो ईसाई बन जायेगी." रानी पूजा-पाठ में लीन हो गयी थीं. श्रावन मास में भी उसने गंगा स्नान नहीं छोड़ा. इससे वह बीमार हो गयी और कुछ दिन बाद स्वर्ग सिधार गयी. मडकेरी में रानी के स्वर्गवास की सूचना एक वर्ष बाद पहुंची. रानी की आत्मा की शांति के लिए दीक्षित ने दस तीर्थों में जाकर पूजा-पाठ किया. तीन वर्ष के बाद ओंकारेश्वर के दर्शन करके दीक्षित बोपण्णा से मिला. देश में कुल मिलाकर राजा के शासन की अपेक्षा अधिक शांति थी. लोग केवल लगान के स्थान पर धन देने की बात से असंतुष्ट थे. संपाजे प्रदेश के गौड लोगों ने नयी सरकार का विरोध किया, पर कोडगियों की सहायता से इसे दबा दिया गया. संन्यासी वेश में वीरण्णा नाम के आदमी को, जो अपरंपर स्वामी के नाम से जाना जाता था, अंग्रेजों ने बंगलूर में कैद कर लिया ओर सूरप्पा को देश-निकाला दे दिया. भगवती एक वर्ष अपने मंदिर में थी, फिर कहां चल गयी, किसी को भी पता न चला.

दस वर्ष से अधिक समय बीत गया. कोडग की जनता को खबर पहुंची कि उनका भूतपूर्व राजा वीर राज इंग्लैंड चला गया. राजकुमारी ईसाई धर्म में प्रविष्ट हो गयी. दो-एक साल बाद राजकुमारी का कप्तान साहब से विवाह हो गया. कुछ साल बाद उसने एक बच्ची को जन्म दिया. बच्ची तीन वर्ष की हुई तो वीर राज चल बसा. इसके दो वर्ष बाद राजकुमारी भी चल बसी. कोडग के राजघराने के अंग्रेज जीवन के चिह्नस्वरूप 'ऐडित सातु विक्टोरिया गौरी कैंबल' नाम की वह छोटी बच्ची अपने पिता कप्तान के साथ इंग्लैंड में रह गयी.

इस समय तक कोडग को अंग्रेजों के हाथ में गये तीस वर्ष बीत गये थे. कोडग की जनता को इनमें से किसी बात का पता न था. □

▣ संक्षिप्त रूपांतरण : सुरेंद्र अरोड़ा

मास्ति : कुछ प्रसंग

▣ बी. आर. नारायण

कन्नड़ का प्रयोग

मास्तिजी जब सब कलेक्टर थे तो एक बार वसूली के लिए गये. एक किसान से लगान नहीं आया था. उसके नाम पर नोटिस जारी किया जा चुका था. वह किसान इनके सामने हाजिर हुआ. मास्तिजी ने उसे पूछा, "क्यों भई, नोटिस नहीं पढ़ा?"

उसने कहा, "महाराज, नोटिस तो अंग्रेजी में था, मैं कैसे पढ़ सकता हूं?"

तब मास्तिजी को ध्यान आया कि बेचारे किसानों के नाम पर अंग्रेजी में नोटिस भेजे जाते हैं. कोई पढ़नेवाला न मिलने के कारण वह उसे इधर-उधर रख देते हैं. इस पर हम लोग उन्हें दंड देते हैं. यह कितना बड़ा अन्याय है. किसानों को उनकी भाषा में ही आगे से नोटिस भेजे जाने चाहिए. तभी से उन्होंने कन्नड़ के प्रयोग और महत्त्व पर और जोर देना आरंभ कर दिया.

मार्गदर्शन

स्वर्गीय राजरत्नम् पाली और प्राकृत के पंडित थे. एम. ए. पास करने के बाद एक बार वे मास्तिजी के पास काम मांगने गये. प्रथम श्रेणी में एम. ए. किये राजरत्नम् को मास्तिजी पच्चीस रुपये वाला बाबू बनाना नहीं चाहते थे. उनके पास केवल जनजागरण के कार्ड बनाने का कार्य था. मास्तिजी ने उनसे कहा, "मैं, फाहियान और हुएनसांग ने हमारे देश के बारे में जो लिखा है, उसको कन्नड में लाना चाहता हूं. आप वह काम कीजिए. मैं आपको पच्चीस रुपये अपने पास से देता हूं. राजरत्नम् ने कार्य आरंभ किया. उनका लेख, 'प्रबुद्ध कर्नाटक' में प्रकाशित हुआ. जिससे उन्हें एक सौ पचास रुपये मिले. जब राजरत्नम् मास्तिजी को उनके दिये पैसे लौटाने गये तब मास्तिजी बोले, "इन्हें अपने पास ही रखिए और अपना प्राकृत का अनुसंधान कार्य जारी रखिये. मैं आपको पच्चीस रुपये प्रतिमास तब तक देता रहूंगा जब तक आपको सही काम नहीं मिल जाता." समय आने पर उन्होंने राजरत्नम् को कन्नड के प्राध्यापक के कार्य पर लगा दिया. ऐसे कई उदाहरण हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार

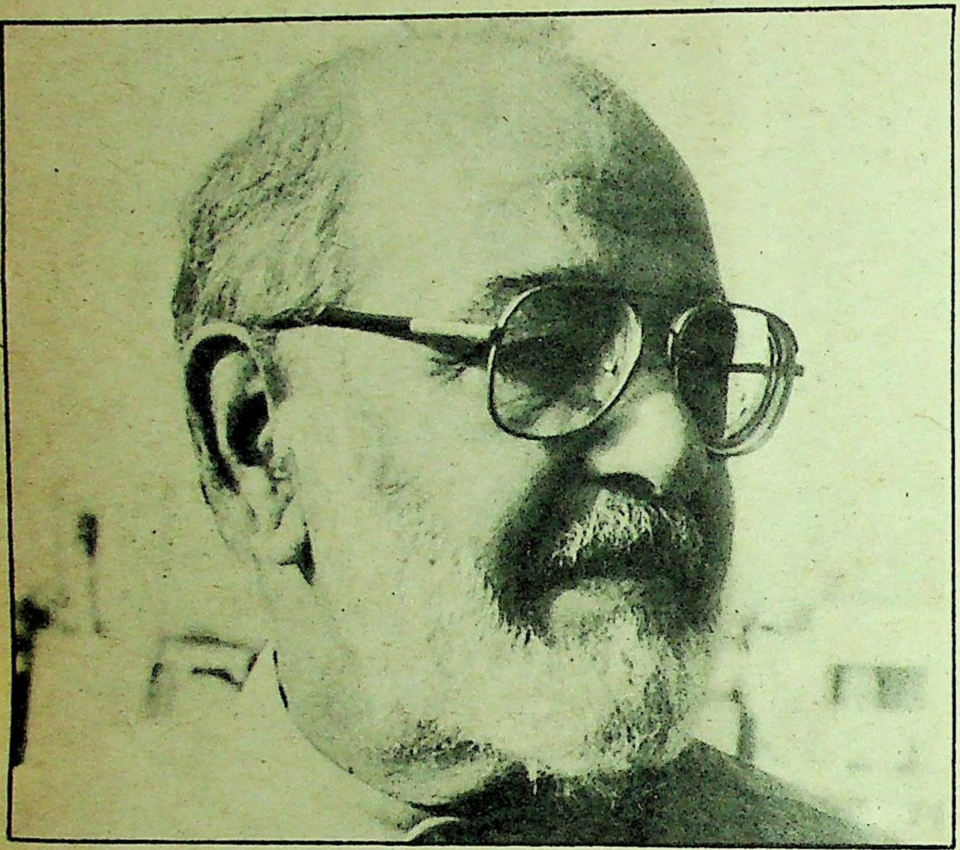

पुरस्कारों का कोई न कोई रूप तो सदा से ही रहा है।

शाश्वत साहित्य की अवधारणा हो या रचना और रचनाकार का परिवेश; भारतीय साहित्य की परिकल्पना हो या साहित्यिक पुरस्कारों का संदर्भ . . . हिंदी के वरिष्ठ कवि-कथाकार अज्ञेय से बातचीत करना एक सुखद सुयोग है. प्रस्तुत है—हिंदी के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता साहित्यकार अज्ञेय से सुरेंद्र तिवारी की बातचीत के कुछ अंश. (पूरी बातचीत शीघ्र ही. . .)

▣ ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुछ रचनाएं शाश्वत होती हैं, उनमें मनुष्य की गरिमा सर्वदा बनी रहती है, परंतु इस शाश्वत साहित्य की अवधारणा अभी भी बहुत स्पष्ट है, ऐसा मुझे नहीं लगता. क्या इस तरह का जो साहित्य है वह मनुष्य को उसके संकट से उबार सकता है?

शाश्वत साहित्य तो कुछ होता नहीं, या हम भी नहीं जानते कि क्या होता है. कुछ चीजें अधिक टिकाऊ होती हैं, कुछ कम. ये काल के दो अलग-अलग पैमाने हैं. एक जिसे हम स्थायी कहते हैं, और दूसरा जिसे हम तात्कालिक कहते हैं. हम काल के इन दोनों आयामों में जीते भी हैं. एक वृहत्तर आयाम की पहचान भी हमारे अंदर होती है जबकि हम क्षण में जीते हैं. जब हम दूसरे आयाम में जी रहे होते हैं, बीच-बीच में थोड़े समय के लिए तब हम यह भूल नहीं जाते कि एक तात्कालिक जीवन भी हमारा है. इस तरह एक से अधिक आयामों की पहचान हमारे जीवन में अगर बनी रहे तो उस हद तक हमारा जीवन समृद्धतर होता है. साहित्य यह कोशिश करता है कि अधिक से अधिक आयाम हमारे जीवन में आयें और लगातार आते रहें.

▣ जो स्थायी साहित्य है या जिसे टिकाऊ साहित्य भी कहें, उसकी सार्थकता हम इसमें मानते हैं कि वह अपनी जमीन से जुड़ी होती है. इस दृष्टि से अगर हम सोचें तो अधिकांश हिंदी कथाकारों की जड़ नजर नहीं आती.

जड़ों का नजर न आना तो ठीक ही है. जड़ें गहरे में होती हैं इसलिए नजर नहीं ही आयेंगी. जो जमीन से ऊपर है उसी के आधार पर आप जड़ का अनुमान करते हैं. जो ऊपर है वह कितना टिकने वाला है इसी से आप जड़ों का अनुमान करते हैं. यही ठीक स्थिति भी है. जड़ें होनी जरूर चाहिए, किंतु वे दिखाई दें यह आवश्यक नहीं. देखेंगे तो आप पेड़, पत्ते को ही.

▣ मेरा मतलब कुछ और है. रचना में अगर रचनाकार के आसपास का परिवेश, उसकी अपनी पहचान, समय और समयगत स्थितियां स्पष्ट रूप में नहीं उभरतीं और ऐसा लगता है कि वह एक बनावटी जीवन, ऊपरी ताम-झाम के बीच जी रहा है . . .

इस बात को अगर मैं इस रूप में कहूं तो शायद कठिनाइयां कम हो जायेंगी कि जैसा मैंने अभी काल के संदर्भ में कहा कि हम लोग लगातार काल के एक से अधिक आयामों में जीते हैं. जिस रचना में एक साथ कई आयाम झलकते हैं वह टिकाऊ साहित्य होता है, बाकी तात्कालिक. हम जो जी रहे हैं, हम कौन हैं, हम जो आज जहां पहुंचे हैं वहां कैसे पहुंचे हैं इन सबकी पहचान भी अच्छे साहित्य में होती है. यह नहीं कि हम हमेशा चेतन रूप से इस पर विचार करते हैं पर हम जो हैं, हमारा हम पर हमारा होना यह दोनों इस बात से जुड़े हुए होते हैं कि हमारे पीछे क्या था. हम हैं, इसका बोध हमारे जीवन में झलक रहा है, उसी से हमारी पहचान होती है. पहचान का गहरा होने का अर्थ भी यही है कि जो शब्द सुनाई देता है उसके पीछे अनेक युगों की अनुगूंज भी है. हमें सुनने वालों के पीछे भी चूंकि इसी तरह की एक परंपरा है इसलिए उस अनुगूंज की पहचान उसे भी होती है. जो साहित्य लगातार आज की आवाज को सामने रखते हुए हमारे लिए संभव बनाता है कि हम यह अनुगूंज सुनें, उस साहित्य से अनुभव मिलता है, जो हमारे भीतर है वही वहां गूंजता भी है, इसलिए ऐसा ही साहित्य जिंदा भी रहता है.

भारतीय साहित्य की परिकल्पना दो तरह से से की जा सकती है. इसका मैं पूरा जवाब देने का प्रयत्न करूं उससे पहले मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं कि आजादी से पूर्व हम लोग स्वदेश प्रेम की बात करते थे और उससे पहले, अंग्रेजी में जिसे 'नेशनल कांग्रेस' कहते थे उसको राष्ट्रीय कांग्रेस नहीं 'जातीय कांग्रेस' कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धविराम

(सन् 1978 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कविता-संग्रह 'कितनी नावों में कितनी बार' से.)

▣ अज्ञेय

नहीं, अभी कुछ नहीं बदला है.

अब भी
ये रौंदे हुए खेत
हमारी अवरुद्ध जिजीविषा के
सहमे हुए साक्षी हैं,
अब भी
ये दलदल में फंसी हुई मौत की मशीनें
उनके अमानवी लोभ के
कुंठित अशमित प्रेत:
अब भी
हमारे देवदारु-वनों की छांहों में
पहाड़ी खोहों में
चट्टानों की ओट में
वनैली खूंखार आंखें
घात में बैठी हैं:
अब भी
दूर अध-दिखती ऊंचाइयों पर
जमे हैं गिद्ध
प्रतीक्षा के बोझ से
गरदनें झुकाये हुए.
नहीं, अभी कुछ नहीं बदला है:
इस अनोखी रंगशाला में
नाटक का अंतराल माना
समय है सिनेमा का:
कितनी रील?
कितनी किस्तें?
कितनी मोहलत?

कितनी देर
जलते गांवों की चिरायंध के बदले
तंबाकू के धुएं का सहारा?
कितनी देर
चाय और वाह-वाही की
चिकनी सहलाहट में
रुकेगा कारवां हमारा?

नहीं, अभी कुछ नहीं बदला है:
हिम-चोटियों पर छाये हुए बादल
केवल परदा हैं—

विराम है, पर वहां राम नहीं हैं:
सिंचाई की नहरों के टूटे हुए कगारों पर
बांस की टट्टियां धोखे की हैं:
भूख को मिटाने के मानवी दायित्व का स्वीकार
नहीं
मिटाने की भूख की फुफकार ही
उनके पार है.

बंदूक के कुंदे से
हल के हत्थे की छुअन
हमें अब भी अधिक चिकनी लगती,
संगीन की धार से
हल के फाल की चमक
अब भी अधिक शीतल,
और हम मान लेते कि उधर भी
मानव मानव था और है,
उधर भी बच्चे किलकते और नारियां
दुलराती हैं,
उधर भी मेहनत की सूखी रोटी की बरकत
लूट की बोटियों से अधिक है—
पर
अभी कुछ नहीं बदला है
क्योंकि उधर का निज़ाम
अभी उधर के किसान को
नहीं देता
आजादी आत्म-निर्णय
आराम
ईमानदारी का अधिकार!

नहीं, अभी कुछ नहीं बदला है:
कुछ नहीं रुका है.
अब भी हमारी धरती पर
बैर की जलती पगडंडियां दिख जाती हैं,
अब भी हमारे आकाश पर
धुएं की रेखाएं अंधी
चुनौती लिख जाती हैं:
अभी कुछ नहीं चुका है.
देश के जन-जन का
यह स्नेह और विश्वास
जो हमें बताता है
कि हम भारत के लाल हैं—
वही हमें यह भी याद दिलाता है
कि हमीं इस पुण्य-भू के
क्षिति-सीमांत के धीर, बद्धव्रती दिक्‌पाल हैं.

हमें बल दो, देशवासियो,
क्योंकि तुम बल हो:
तेज दो, जो तेजस् हो,
ओज दो, जो ओजस् हो,
क्षमा दो, सहिष्णुता दो, तप दो
हमें ज्योति दो, देशवासियो,
हमें कर्म-कौशल दो:
क्योंकि अभी कुछ नहीं बदला है,
अभी कुछ नहीं बदला है. . . ☐

थे. तो राष्ट्र की अवधारणा नयी है और राजनीतिक है किंतु स्वदेश की, देश की या जाति की एक सांस्कृतिक अवधारणा रही और यह बहुत पुरानी है. इधर राष्ट्रीयता की बात होती है, राष्ट्र प्रेम की बात होती है और भारतीय भी हम कहते हैं तो भारत राष्ट्र की बात करते हैं, भारत देश की या जाति की बात उतने प्रधान रूप से हमारे सामने नहीं होती जोकि आजादी से पहले रहती थी और सांस्कृतिक दृष्टि से हमेशा रहनी चाहिए थी. हम जो भारतीय साहित्य की बात करते हैं तो यह पक्ष हमारे सामने मुख्य रूप से होना चाहिए कि राष्ट्र की बात प्रधान नहीं होनी चाहिए बल्कि एक सांस्कृतिक इकाई की जिसे आप देश कहें, जाति कहें, वह होनी चाहिए. तो इस संदर्भ को सामने रखकर मैं कहूं कि इससे पहले भारतीय साहित्य की परिकल्पना होती तो वे सारे साहित्य आ जाते जो भारत की अलग-अलग भाषाओं में लिये जा रहे थे किंतु जिनके पक्ष एक भारत देश की अवधारणा थी और एक देशव्यापी भारतीय जाति कि परिकल्पना थी. संस्कृत साहित्य में भी इसी अर्थ में भारत सामने आता है और उससे बड़ा गहरा संबंध हमारा जुड़ता है जो कि शायद आज के साहित्य में नहीं मिलेगा. यह तो एक पक्ष है और यही महत्वपूर्ण पक्ष है. हम लगातार देश के प्रदेशों में जीते रहे हैं. एक विशेष संस्कृति में या विशेष परिपाटियों में पलते रहे हैं. लेकिन एक देश की, एक जाति की कल्पना हमारे सामने आ रही है और केवल कल्पना ही सामने रही हो ऐसा नहीं है, उससे हमने प्रेरणा भी ग्रहण की है. ऐसा बहुत कुछ रहा है और चेतन रूप से हमारे जीवन में रहा है जो सारे भारत में एक रहा है, इसके बावजूद कि हमारी जीवन परिपाटियां इतनी अलग-अलग रही हैं तो जो इस भावना को, इस स्तर के जीवन को प्रतिबिंबित करता है. या इस तरह का आग्रह करता है उसे मैं भारतीय साहित्य कहूंगा. चाहे वह किसी भाषा में लिखा जाता हो, किसी प्रदेश में लिखा जाता हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीस उठी तो पन्ना पलट दिया....

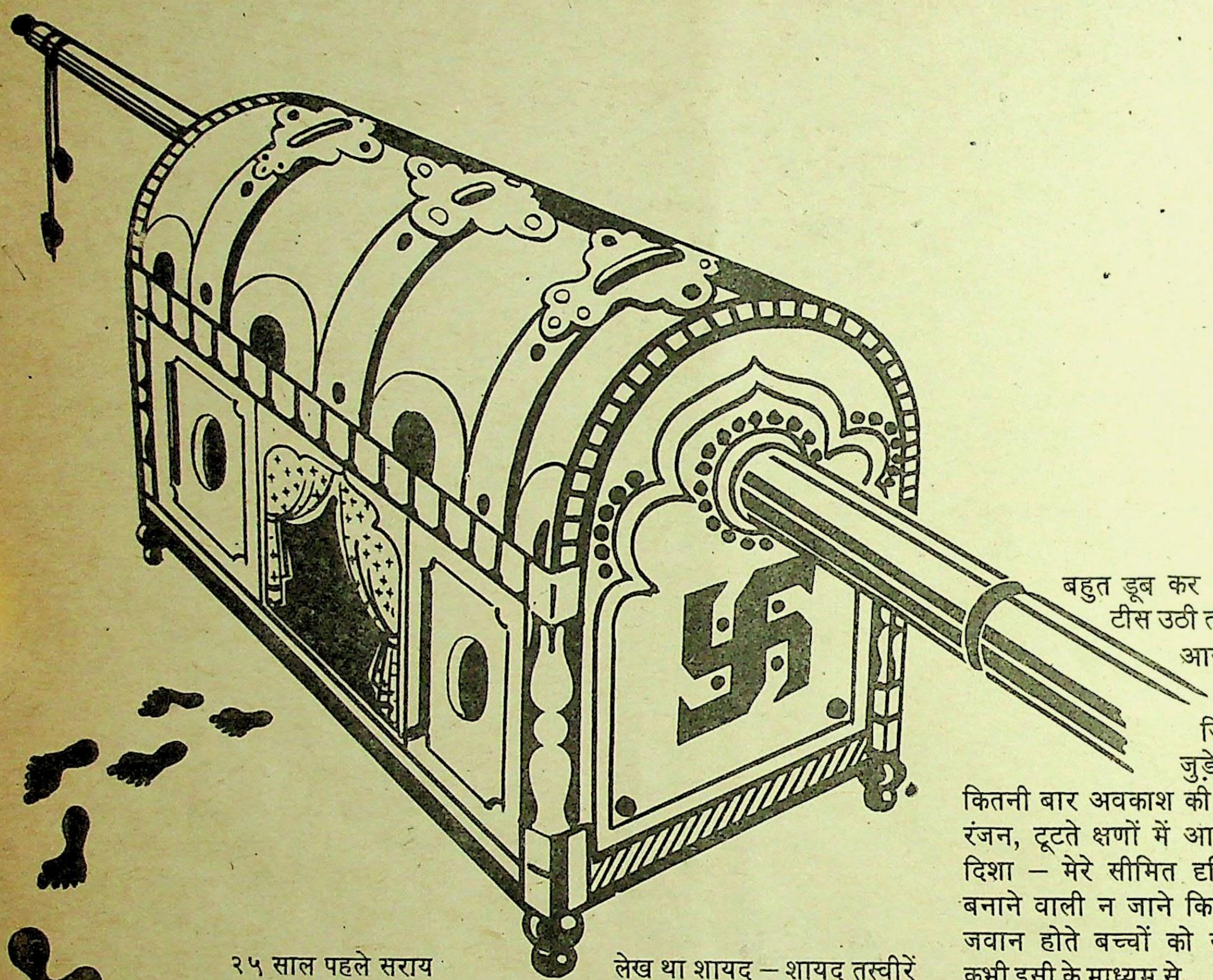

२५ साल पहले सराय शहज़ादी जैसे छोटे से गांव से डोली उठी तो ले आई मुझे सीधे बंबई... इतना बड़ा शहर... सब कुछ नया, अटपटा.. नयी ससुराल और मेरे परिचय की डोर, कि सिर्फ़ पति तक! उन्हें भी तो कहाँ जानती थी तब?

'घबराओ नहीं, रम जाओगी धीरे-धीरे और फिर मैं तो हूँ न!'

अक्सर सोचती कि ये इतने सुशिक्षित, देश-विदेश घूमे हुए – इन्हें मैं, मैट्रिक पास देहातन ही रह गयी थी ब्याहने के लिए?

'तो क्या हुआ? बस, अपने मन के दरवाज़े-खिड़कियाँ खोल कर पढ़ो, गुनो, अनुभव लो. दुनिया में कहाँ, क्या हो रहा है, इसकी खोज ख़बर रखो – लो धर्मयुग पढ़ो – भाएगा तुम्हें!'

...और मैं वही धर्मयुग लेकर पन्ने पलटने लगी थी – सावन की हरियाली तीजों पर कोई लेख था शायद – शायद तस्वीरें भी थीं... मन वापिस लौट लौटकर जाने को होने लगा... वह खेत... वह अमराई... वह लकड़ी की आँच पर रोटी सेंकती माँ... आँगन में बिछी मिर्चें... हँसी – ठिठोली... मेले - ठेले...

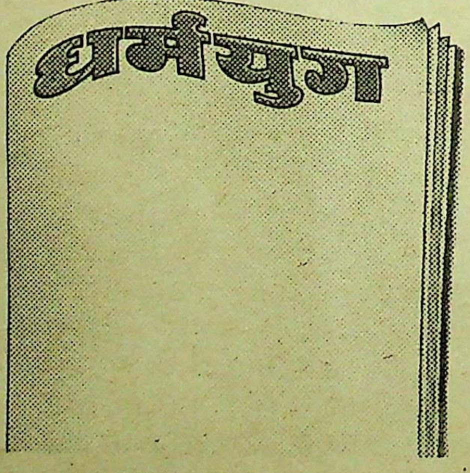

बहुत डूब कर पढ़ा, महसूस किया.. टीस उठी तो पन्ना पलट दिया... आज सोचती हूँ धर्मयुग के इन पन्नों से मेरी जिंदगी के २५ साल जुड़े हुए हैं... न जाने कितनी बार अवकाश की दुपहरियों में मनो-रंजन, टूटते क्षणों में आस्था, अनिश्चय में दिशा – मेरे सीमित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने वाली न जाने कितनी बातें – अपने जवान होते बच्चों को समझा-परखा, कभी कभी इसी के माध्यम से...

आज भी याद हैं कुछ उनकी छिटपुट बातें...

'अरे वाह, माँ! क्या जिरह पेश की है अन्तर्जातीय विवाह पर! भला कोई कह सकता है कि हमारी माँ सिर्फ़ मैट्रिक पास है!'

'दादी! तुम छुनाओ न कहानी धलमयुग में से पलकर!'

'इनका' मज़ाक...

'भई वाह! क्रिकेट का शौक तो शौक, पर इतनी जानकारी? कहाँ हासिल की?'

मैंने हँसते हुए धर्मयुग थमा दिया था 'इन्हें'.

'धर्मयुग से!'

'अच्छा ! तो मेरी बिल्ली और मुझी से म्याँऊ?'

ऐसी न जाने कितनी यादें... कितने क्षण... अपने परिवार से जुड़े रहने का यह एहसास... यह धर्मयुग.

नव सामाजिक चिंतन का अग्रदूत

ARMS-BC-DH-140-B

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरे अर्थ में भारतीय साहित्य वह होता है जो किसी एक भारतीय भाषा में लिखा जाता हो. यह अभी तो नहीं है क्योंकि अभी भी राष्ट्र की कल्पना देश की कल्पना से अलग ही है. किंतु राष्ट्र बाद की चीज है. भारत राष्ट्र हमारे जीवन में उतना ही पैंठा है जितना भारत देश हमारे जीवन में रहा है. जिस हद तक वह पैंठा है वह उसी हद तक पैंठा है जिस हद तक अंग्रेजी पैंठी है. इसलिए मानने वाले यह भी मानते हैं कि भारतीय साहित्य वही है जो भारतीय अंग्रेजी में लिखा जाता है या अंग्रेजी में लिखनेवाले भारतीयों द्वारा लिखा जा रहा है. किंतु ऐसा नहीं है. ये लोग जितना अंग्रेजी में दक्ष हुए हैं उतना ही देश से और देश की संस्कृति से कट गये हैं.

■ इसी जगह एक बात और मुझे याद आ रही है. हमारे यहां हिंदी या अन्य किसी भी भारतीय भाषा के पत्रकार से कहीं अधिक महत्व अंग्रेजी अखबार के पत्रकारों को दिया जाता है. इसका मूल कारण आप क्या समझते हैं.

अंग्रेजी मोह भी नहीं है, सच बात तो यह है कि देश राजनीति की दृष्टि से आजाद तो हुआ है पर मानसिक रूप से अभी अंग्रेजी का उपनिवेश ही है, अंग्रेजों का नहीं अंग्रेजी का. सारे समाज में अंग्रेजी का मान अधिक है. आप अपना कोई भी हक हिंदी में मांगिये तो वह पूरा नहीं होगा किंतु उसी को टूटी-फूटी अंग्रेजी में कहिए तो जरूर ध्यान दिया जायेगा. आपका सामाजिक स्तर भी अंग्रेजी जानने के कारण ऊंचा माना जायेगा.

यही स्थिति अगर साहित्य के क्षेत्र में या पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रतिबिंबित होती है तो यह तो एक समाजव्यापी रोग है. कोई अलग बात नहीं है. पत्र के मालिक भी मानते हैं कि अंग्रेजी पत्र का स्थान ऊंचा है. पढ़े-लिखे लोग अंग्रेजी का अखबार पढ़ते हैं हिंदी का नहीं. ये भी जानते हैं कि विज्ञापनदाता अंग्रेजी के अखबार में विज्ञापन देगा क्योंकि उसे अंग्रेजी पढ़ने वालों तक ही पहुंचना है. यह भी सच है कि मालिक अपना राजनीतिक लाभ भी अंग्रेजी पत्रों के माध्यम से ही उठाते हैं. तो यह सब तो अतिरिक्त कारण हैं जिससे अंग्रेजी पत्रों को हिंदी की अपेक्षा ऊंचा दर्जा दिया जाता है. तो इस मान्यता का एक आर्थिक आधार भी है, सामाजिक आधार तो है ही. परंतु आप आज के अंग्रेजी अखबारों को देखिए तो अंग्रेजी राज के प्रति कितना मोहाविष्ट भाव अभी भी ये अखबार प्रकट करते हैं. एक मोह बना हुआ है कि काश हमारी स्थिति अब भी वही होती जो तब थी. काश हमें वही मान-सम्मान मिलता जो तब मिलता था. यह भाव उनमें झलक रहा है.

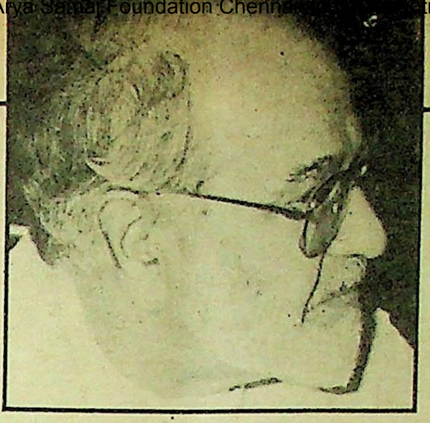

■ अज्ञेय हिंदी के वरिष्ठ एवं चर्चित कवि, कथाकार, निबंधकार, संपादक और आलोचक हैं. वर्ष 1962–71 के लिए प्रदत्त सन् 1978 का ज्ञानपीठ पुरस्कार उन्हें 'कितनी नावों पर कितनी बार' के लिए समर्पित किया गया.

■ पुरस्कार के लिए अब कृतित्व नहीं, व्यक्तित्व देखा जाता है. क्या आप मानते हैं कि ऐसे पुरस्कारों का कोई महत्व है या इससे पुरस्कृत व्यक्ति की सर्जनात्मक क्षमता में कोई अंतर आता है? मेरा यह प्रश्न छोटे-बड़े सभी पुरस्कारों के संदर्भ में है.

पुरस्कारों का कोई न कोई रूप तो समाज में सदा से रहा है. कभी राजा या सामंत पुरस्कार देता था या पुरस्कृत करता था, और वह कई तरह से पुरस्कृत कर सकता था, उनके बाद एक दूसरा वर्ग आया और फिर सरकार यह काम करने लगी. बहुत से लोग इसको अनिवार्य भी मानते हैं कि पुरस्कारों की योजना तो रहनी ही चाहिए. सरकार यह काम करे इसमें उन्हें कोई दोष नहीं दीखता. पहले भी ऐसे लोग थे जो इनकी उपेक्षा करते थे या इनसे प्रभावित नहीं होते थे, अब भी हैं और रहेंगे. इधर बहुत से छोटे-छोटे पुरस्कार भी शुरू हो गये हैं जिनमें मूल्यांकन की कोई दृष्टि नहीं है बल्कि व्यक्तिगत रुचि के आधार पर पुरस्कार दिये जाते हैं, यह सच है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि पहले ऐसा नहीं होता था. व्यक्तिगत रुचियों के आधार पर पहले भी पुरस्कार दिये जाते थे.

■ पुरस्कारों की बात चली तो एक बात और—रवींद्रनाथ के बाद किसी भी भारतीय को साहित्य का नोबेल पुरस्कार नहीं मिला. सुनने में आया था कि आप का नाम एक-दो बार वहां प्रस्तावित हुआ जरूर पर उससे आगे बात नहीं बढ़ी. भारत दुबारा यह सम्मान पाने से वंचित है अब तक, इसका कारण आप क्या समझते हैं?

किसका नाम गया किसका नहीं गया, यह सब गोपनीय प्रक्रिया होती है इसके बारे में कोई जानकारी का दावा मैं नहीं करता हूं. यह सच है कि रवींद्रनाथ के बाद किसी भारतीय को यह पुरस्कार नहीं मिला. उनको भी मिला तो इसलिए कि गीतांजलि का अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध था और उनके समर्थक विदेश में थे इसलिए मिला. भारत की या कि एशिया की ही भाषाओं की जानकारी उस क्षेत्र को कम रही है जिस क्षेत्र से निर्णायक आते हैं. तो जब तक यह स्थिति है तब तक यह होगा ही कि इन देशों का साहित्य सामने नहीं लाया जायेगा जिससे कि उन पर विचार हो सके. अधिकतर उस पुरस्कार की दृष्टि तो योरोप, अमेरिका और लैटिन अमेरिका तक ही सीमित रही है. इससे अधिक तो मैं नहीं जानता कि मैं क्या कह सकता हूं.

■ पुरस्कारों पर अक्सर यह भी आरोप लगाया जाता है कि सरकार या संस्थाएं पुरस्कार देकर साहित्यकारों को खरीद लेती हैं या उनके लेखन में एक दिशा-परिवर्तन ला देती हैं. खासकर युवा लेखकों को...

ऐसा भी हो सकता है, लेकिन एक तो ये कि पुरस्कार देकर ही ऐसा किया जा सकता है यह जरूरी नहीं है. समाज में प्रतिष्ठा देकर, नौकरी देकर, विदेश भेजकर भी यह किया जा सकता है. पचासों तरीके हैं ऐसा करने के. पुरस्कार भी उनमें से एक है. दूसरी बात यह है कि अगर आप साहित्यकार के लिए ही राजनीतिक प्रतिबद्धता अनिवार्य मान रहे हैं तो उस राजनीति में जो हो रहा है, वही सब इस क्षेत्र में भी क्यों न हो. संसद के और विधायिकाओं के सदस्य खरीदे-बेचे जा सकते हैं तो फिर साहित्यकार भी उन लोगों के द्वारा उतना ही बिकाऊ माना जा सकता है, जो कि इसे भी राजनीति का एक अंग मानते हैं और जो साहित्यकार को अनिवार्यतया राजनीतिक व्यक्ति मानते हैं तो उन्हें यह समझना चाहिए कि राजनीति के खतरे तो वे दामन से चिपका ही रहे हैं.

■ परंतु यह एक बात स्पष्ट होनी चाहिए कि सरकार या संस्थाएं साहित्यकार को ही भ्रष्ट करना क्यों चाहती हैं?

साहित्यकार को भ्रष्ट करने का थोड़ा-सा अधिक योगदान अगर वह करती है तो उसे साहित्यकार में यह संभावना भी दीखती है कि वह राजनीति से भी ऊपर उठ सकता है, इसलिए उसे डर भी लगता है. लेकिन अगर आप ही साहित्यकार को राजनीति से बांध देते हैं तब तो आप खुद उसकी सामर्थ्य कम कर रहे हैं. और आप साहित्यकार की सामर्थ्य कम करना चाहते हैं या उसे बढ़ाना चाहते हैं—यह तो आपको गंभीरता से सोचना ही होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष का भाग्य

—अज्ञेय

मानव की मानव के प्रति जागरूकता आज के इस जमाने में एक मशीन की आड़ में प्रकट होती है—या तो वह मोटर के स्टीयरिंग पर बैठा राहियों को बचाकर चलने में चौकन्ना है, या वह स्वयं राही है और मोटर के स्टीयरिंग पर बैठे हुए अनेक मानवों से बचकर चलने में चौकन्ना है. बचने और बचाने का ही रिश्ता जब मानव-मानव में हो, तब इसकी संभावना कम है कि उस अकेली चलती हुई औरत की विचित्र क्रिया पर किसी का भी ध्यान गया हो—फिर चाहे कोल्हू के बैल-से आज के मानव के जीवन में वह क्रिया कितना ही गहरा अभिप्राय रखती हो. . .

मानिकतल्ले की सड़क पर, कालेज स्क्वेयर से कुछ आगे, काली के मंदिर के पास ही पटरी पर वह चली जा रही थी. मंदिर में अर्च्चा में बहाये हुए, या प्रार्थिनी विधवाओं के गीले कपड़ों से बहे हुए, पानी से वह पटरी कुछ दूर तक पैरों-जूतों के पिच-पिच उपहारों से क्लांत और बोझल, फिर क्रमशः सूखी होती चली गयी थी.

इसी स्थल पर चलती हुई वह औरत एकाएक अचकचाकर रुकी, हड़बड़ाई-सी पैर बचाकर एक ओर को हटी और फिर सिमटकर बचती हुई-सी आगे बढ़ी, दो कदम रुकी और फिर धीरे-धीरे, कांपती-सी आगे चली गयी. . .

कोई भी इस क्रिया को देखता तो अनुमान करता कि बहुत देर से व्रतादि करनेवाली किसी जीवन-विक्षत धर्मप्राण हिंदू स्त्री के अनुष्ठान से लौटते समय पैर के नीचे अचानक किसी जीव. . .जीव भी सख्त त्वचावाला नहीं, पिलपिला और चेंपदार, जिससे छूकर तलवे का संवेदनशील मध्य भाग तड़प जाये, जैसे मेंढक या केंचुआ—के आ जाने से जो प्रतिक्रिया होती, वही प्रतिक्रिया यहां भी देखी है.

लेकिन पटरी पर तो कोई जीव नहीं था, किसी भूतपूर्व जीव की लोथ भी नहीं.

केवल सूखी हुई धूल के ऊपर दो गीले पैरों की छाप वहां पर थी— पास-पास, छोटे-छोटे. इन्हीं बाल-पदचिह्नों पर पैर पड़ने से वह इतनी आकुलता से बची थी—उसका सारा पिंजर कांप गया था और वह जैसे गिरने लगी थी, फिर संभलकर आगे बढ़ी थी.

वह ऐसे था, जैसे घोर कारागार में एकाएक कोई फाटक खुल गया हो. . .

पांच कदम लंबाई की उस कोठरी के भीतर भ्रांत गति से आगे घूमती हुई प्रतिमा एकाएक रुक गयी. क्या आगे-पीछे ही जीवन क्रम है? वह बंदिनी है, लेकिन इस परिपाटी के खिलाफ विद्रोह करना चाहती है. क्यों जीवन में या आगे ही बढ़ना या पीछे ही हटना? क्यों पांच कदम आगे और पांच कदम वापस? वह आगे-पीछे का क्रम छोड़कर कोठरी के चारों ओर चक्कर काटने लगी—बीच में चक्की, खड्डी, खुड्डी, पतरा कई विघ्न थे, लेकिन सीधी की बजाय मंडलाकार चाल चलने से उसे कुछ संतोष हुआ. यह गोल-गोल घूमना भी कोल्हू के बैल की तरह है, पर संतोष शायद इसलिए मिलता है कि वह केवल घिरी हुई नहीं है, कुछ है जो उसकी भी मुट्ठी में है, कुछ उसकी देन है, जो उसके अंतरतम से प्रसूत होकर बाहर की ओर संसार, की ओर उन्मुख है, कुछ जो—

प्रतिमा को लगता है, वह बद्ध रहेगी, जेल ही में रहेगी, पर जैसे किसी अव्यक्त, दिव्य निमित्त से कहीं को एक फाटक उसके लिए खुल गया है.

आत्म-प्रवंचना. कौन-सा, किधर का, कहां को है—वह फाटक जो खुला है?

जेल के इन पिछले चार वर्षों में प्रतिमा के जीवन-मंदिर में कई फाटक खुले और बंद हुए हैं. कभी कहीं फाटक न होने से सेंध लगाकर ही काल-तस्कर घुस आया है और न जाने किधर को निकल गया है. प्रतिमा का पति किसी षड्यंत्र के मुकद्दमे में फांसी लटक गया है, वह स्वयं एक ऐसे ही अपराध में, स्कूल में अध्यापन करती हुई, क्लास में से पकड़कर जेल में डाल दी गयी है और वहीं, सात वर्ष की कारावास की सजा की घोषणा होते-होते तक स्त्री से माता हो गयी है. वरे हुए पुरुष का खोना और जने हुए पुरुष का पाना इतना पास-पास हुआ है कि वह उदभ्रांत-सी हो गयी है, लेकिन खुलने और बंद होनेवाले इन फाटकों की भूलभुलैया में उसने अपना अभिमान नहीं खोया है. लोगों ने उसे विश्वास दिलाया था कि माता होने पर

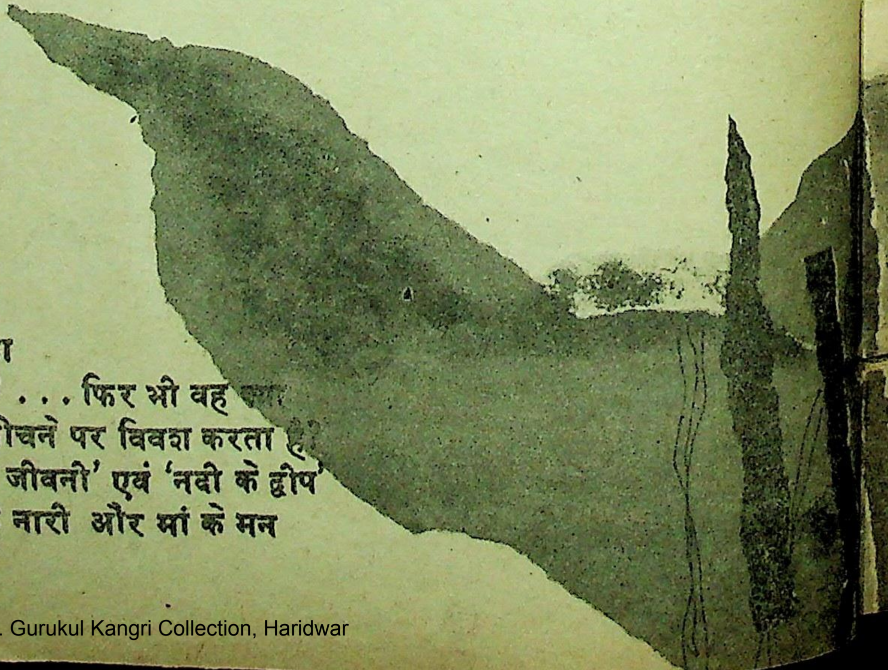

क्या आगे और पीछे ही जीवन का क्रम है? तब फिर नारी विद्रोह करना क्यों चाहती है? पुरुष को पाने और खोने का सिलसिला किस हद तक प्रभावित करता है एक नारी को? . . . फिर भी वह क्या है, जो नारी को अपने जने हुए पुरुष के भाग्य को लेकर सोचने पर विवश करता है? हिंदी के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि और 'शेखर-एक जीवनी' एवं 'नदी के द्वीप' के यशस्वी कथाकार अज्ञेय की प्रतिनिधि कहानी, जो एक नारी और मां के मन की कथा को रेखांकित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह छूट जायेगी, उसने तिरस्कारपूर्वक इस विश्वास को निकाल फेंका था. छोड़ी वह नहीं गयी, और विश्वास व्यर्थ गया, लेकिन उसने तिरस्कार किया था तो निराशा होने के डर से नहीं एक सहज दर्प से, जो किसी की दया से छूटना नहीं चाहता था.

और न जाने किस दिव्य या दैवी क्रिया पर, प्रतिमा को अकेलापन नहीं अखरा था, न जाने कैसे वरे हुए पुरुष के अंतर्धान होने की खलिश इस जने हुए पुरुष ने धीरे-धीरे पूर दी थी. . . वह पुरुष अभी शिशु था, उसकी चाल अटपटी और वाणी तुतली थी, पर प्रतिमा को ऐसा लगता था कि वह भाग्य के फाटक की ओर समर्थ पैरों से बढ़ रहा है कि उसके स्पर्श से फाटक खुल जायगा, कि उस के पीछे खड़ी होकर प्रतिमा भी देखेगी कि वह भाग्य शिशु का नहीं, पुरुष का है. . .

कब की बात है? कैसे उसे याद आती है? याद नहीं आनी चाहिए, क्योंकि आज उसका सारा जीवन एक ही अनुभूति में केंद्रित है, और वह अनुभूति शिशु-पुरुष की समीपता की नहीं है, वह दूसरी अनुभूति है, ओफ! कितनी दूसरी.

क्योंकि वह शिशु-पुरुष आज उसके साथ नहीं है. एक दिन जेलवालों ने कहा था, बालक अब बड़ा हो गया है, अब तुम्हारे साथ नहीं रह सकता. तुम्हारे संबंधी हैं? तब उसने अभिमान से कह दिया था, "मेरा कोई नहीं है. यह मेरे पास रहेगा." और एक बार जगाकर इस अभिमान को छोड़ना कठिन हो गया था—फाटक कई हैं, लेकिन आलोक अभिमान का है. उस दिन वे चले गये थे, पर पीछे प्रतिमा को पता लग गया था कि उसका भाग्य उसके साथ नहीं है, कि जिस शिशु को जेलवालों ने पुरुष मान लिया है, उसका मार्ग अलग होगा ही. और एक दिन वे आकर उसे ले गये थे—कह गये थे कि उसे अनाथाश्रम में रखने का प्रबंध कर रहे हैं . . . जेल के फाटक के बाहर—पर अनाथाश्रम का फाटक. . . .

एक दिन ले गये थे? आज है वह दिन—अभी वे उसे ले गये हैं. अभी, जब मैं यह चक्कर काटने लगी हूं अभी. पुरुष को पाना, पुरुष को खो देना—क्या वह आगे-पीछे की गति ही जीवन की गति है? मैं इसे अस्वीकार करती हूं. मैं कोठरी का चक्कर काटती हूं. मैं पृथ्वी का एक अंश घेरती हूं, जीवन का एक अंश है, जो मेरी मुट्ठी में है, जो मुझसे प्रसूत होकर संसारोन्मुख है जो . . .

इस समय वह जेल के दफ्तर में होगा. कुछ लिखा-पढ़ी हो रही होगी, कुछ कागजी कार्रवाई, उसके बाद वह वहां से भी आगे चलेगा, वह फाटक उसके लिए खुलेगा और वह उतनी सब सीढ़ियां उतरकर आगे बढ़ेगा—कि फाटक अब तक खुल ही चुका है?

—मैं अपनी कोठरी में आगे-पीछे नहीं, चक्कर काटती हुई चल रही हूं. यह भी कोल्हू के बैल की तरह है, पर उसकी मारफत मुझे लगता है, जैसे कहीं को एक फाटक मेरे लिए खुल गया है, मेरे लिए किसी अव्यक्त, दिव्य निमित्त से, पर उसी की मारफत, उसी पुरुष की मारफत जिसका भाग्य मैंने गढ़ा है. . . .

दफ्तर में.

क्या बच्चे को पता है कि वह अब पुरुष है, कि वह मां से छिन नहीं रहा, पुरुषत्व को प्राप्त कर रहा है, पुरुष के भाग्य की ओर जा रहा है? क्योंकि वह रो नहीं रहा है. एक अपरिचित, अस्पष्ट-सा अभिमान उसके भीतर भर रहा है कि इन अनेक छोटे-बड़े अफसरों के बीच वह एक बच्चे की तरह नहीं उनके परामर्शों का केंद्र बनकर खड़ा है . . . तभी तो जब जेल का सुपरिटेंडेंट उसे बाहर भेजने की कार्रवाई समाप्त करके चलने को हुआ, ड्योढ़ी से निकलकर फाटक तक आया, कई सांकलों और कुंडों की खड़खड़-झनझन के साथ फाटक खुला, तब सुपरिंटेंडेंट को पहुंचाने आये हुए छोटे अफसरों के साथ वह भी आगे बढ़ता आया. उस समय कोई विशेष आह्लाद उसके मन में नहीं था, केवल वह कुछ-कुछ चेतता हुआ अभिमान-बढ़कर साहब के बराबर को हो लिया, किसी ने उसे रोका नहीं (क्या इसलिए नहीं कि वह बच्चा है? नहीं, उसके नये अभिमान ने कहा, नहीं इसलिए कि वह पुरुष है.) वह और आगे बढ़ा.

चौदह सीढ़ियां और फिर रास्ता और उसके ऊपर आकाश—आकाश को चीरता हुआ एक आरक्त कंठ तोता—आह, यहां नहीं हैं सींखचे, नहीं हैं फाटक—है एक आकुल निमंत्रण.

स्वातंत्र्य—पुरुष का भाग्य . . .

उसका पैर फिसल गया, जैसे अनंत का फाटक खुला और बंद हो गया. दृश्य को घेरनेवाली आंखें फिर अपनी ज्योति में घिर गयीं.

चक्कर काटती हुई प्रतिमा क्षण-भर रुक गयी न जाने क्यों. फिर वह घेरा छोड़कर पहले की तरह चलने लगी. क्या आगे और पीछे ही जीवन क्रम है? वह विद्रोह करना चाहती है. पुरुष को पाना और पुरुष को खोना. आगे और पीछे, पीछे और आगे—काले सींखचों से अंधी दीवार तक, अंधी दीवार से काले सींखचों तक, जिसके आगे दूसरी दीवार के सींखचे, जिसके आगे—

क्या है, क्या है, मेरे पुत्र का भवितव्य, मेरे वरे हुए नहीं, जने हुए पुरुष का भाग्य !

क्रमशः वह जान जायेगी.

काली के मंदिर के पास की पटरी पर वह औरत लड़खड़ाकर फिर संभल गयी है और आगे चल पड़ी है. कोई फाटक खुला नहीं है, आगे सींखचे हैं. □

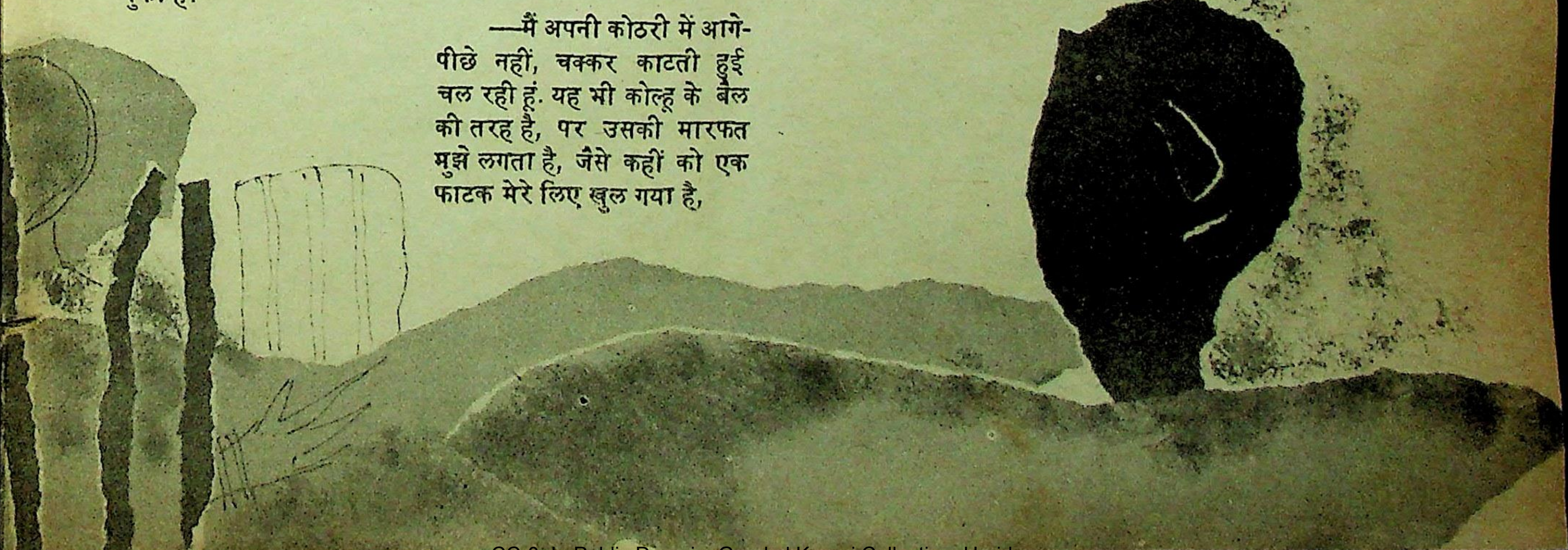

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊंट

एस.के.पोट्टेकाट

मलयालम कहानी

चाहत सिर्फ तन की नहीं मन की भी होती है. और तन की चाहत पर तो स्थिति के अनुकूल अंकुश भी लगाए जा सकते हैं लेकिन मन की चाहत क्या किसी अंकुश को मान पाती है? क्या मन के सामने तन बेमाने और निर्जीव नहीं हो जाता? क्या उसका समूचा अस्तित्व किसी मुर्दे से ज्यादा अहमियत रख पाता है?

सब लोग उसको ऊंट ही पुकारते. उसके पैर तार के खंभे के समान लंबे हैं. लंबी गरदन और चीनी हांडी-सी छाती. सूखे नारियल का-सा एक सिर भी. वही है ऊंट.

ऊंट सुबह और शाम को जल भरे बर्तनों और पीपों को एक ठेला गाड़ी में रखता और उसे खींचकर गली से आगे बढ़ता. तब वह दृश्य देखते ही बनता. चार छोटे से पहियोंवाली वह ठेलागाड़ी एक विकृत स्वर निकालते हुए आगे बढ़ती तो ऐसा लगता मानो एक भैंस प्रसव-पीड़ा से इधर-उधर घूम रही हो.

होटल की मेज पर बिछा हुआ एक पुराना चीथड़ा ही वह पहनता. उसके अलावा दाहिनी टांग के मध्य एक चीथड़ा हमेशा बांधे रहता. वह तो कई बरस पहले की एक चोट की याद ताजा करता. घाव तो भरा था. और उसके ऊपर रोयें भी उगे थे. चूंकि उसका खयाल है कि अगर वह उस चीथड़े को हटाता तो वह तड़ाक से गिरकर मर जाता, इसलिए वह उस चीथड़े को हर्गिज अलग नहीं करना चाहता. पैर के एक अलंकार की तरह वह कपड़ा भी उसका पीछा न छोड़ता.

ऊंट के आराम करने की भी एक जगह है. पर वह होटल के पीछे काठ भरनेवाले मकान के एक कोने में जूठन की टोकरी के नजदीक थी. शाम को तब वह वहां जाकर बैठता जब वह अपना पूरा काम-काज खत्म कर चुका होता. तभी वह एक टुकड़ा सिगार पीता और गरदन घुमाते हुए उकड़ूं बैठता. तभी उसके सहयोगी देहाती लौंड़े उसे घेर लेते और उसकी पीठ पर चढ़कर खेलने लगते.

ऊंट और ये लौंडे शहर के उस बड़े होटल के मोहताज होकर जिंदगी गुजारते. होटल का पानी वह ठेलागाड़ी में लाता. यही है उसका पेशा. सोलह बरसों से वह यह काम नियमित रूप से करता आया है.

यों वह जिंदा रहा. "आठ शख्सों का भोजन वह अकेले खाता!" ऊंट के बारे में होटल मैनेजर को बस यही एक शिकायत है. पानी तो वह दूर से लाता ही. अलावा उसके होटल के लकड़हारे का काम भी वही करता.

अगस्त क्रांति से मुल्क भर में हलचल तो मच गयी. दूसरा विश्वयुद्ध भी खत्म हो चुका था. भारत ने आजादी की घोषणा कर दी. ऐसी बातों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भनक तक ऊंट को न होती. उसको महज दो मर्तबा महसूस हुआ था कि इस मुल्क में भी कुछ अजीब घटनाएं घट रही हैं.

एक दिन सुबह को हमेशा की तरह वह ठेलागाड़ी खींचकर आ रहा था. रास्ते के नजदीक के एक कारखाने के सामने धरना चल रहा था. तभी वहां एक लारी भर पुलिस आ धमकी और धरने पर बैठे लोगों और तमाशबीनों को बेरहमी से मारने-पीटने लगी. वह तड़ाक से ठेलागाड़ी वहीं डालकर नौ-दो-ग्यारह हो गया. भागते वक्त लाठी की एक मार, उसकी पीठ पर लगी थी. गली के दोनों ओर के दुकानदारों को देखते ही गुफा-सा मुंह खोलकर उसने चेतावनी दी, "भाग जाओ, वरना मार खानी पड़ेगी. ऊं. चट."

उसका विचार था कि सभी शहरवालों की पीठ पर अभी-अभी मार पड़ेगी.

दूसरी घटना. वह ठेलागाड़ी एक मर्तबा उसकी पीठ पर गिर पड़ी थी. एक मामूली शख्स होता तो वह उसी दम वहीं ढेर हो जाता. ऊंट चंद मिनट के अंदर उस ठेलागाड़ी के अंदर से धड़ल्ले से उठ खड़ा हो गया, पर उसके सिर और पीठ पर भारी चोट आयी थी.

थोड़ी दूर तक रेंगते हुए चलने के बाद वह वहीं गिर पड़ा. होटल मैनेजर ने तुरंत उसको एक रिक्शागाड़ी में बिठाकर अस्पताल पहुंचा दिया. सब लोगों का अनुमान था कि ऊंट जरूर मर जायेगा, जख्म इतना गहरा था, मगर वह जिंदा बचा.

जब उसे होश आया तो उसने अपने को मुलायम सफेद सेज पर लेटे हुए पाया. उसने अपने पूरे बदन पर निगाहें घुमायीं. सिर, दाढ़ी और कंधे सफेद कपड़ों के टुकड़ों से बांध दिये गये थे. टांगों पर पुराना कपड़ा दिखाई नहीं पड़ा. उसने चट अपने सिर के कपड़े का टुकड़ा फाड़ डाला. झटपट उसे अपनी टांग पर बांध दिया. फिर बेफिक्री के साथ आंखें बंद कर लेट गया.

थोड़ी देर के बाद नर्स ने आकर देखा तो ऊंट को बेहोश लेटे हुए पाया. उसके सिर से खून बह रहा था.

डेढ़ मास तक वह अस्पताल में पड़ा रहा. बरामदे के एक कोने में ही उसका पलंग डाल दिया गया था.

एक दिन होटल मैनेजर ने ऊंट को अपने कमरे में बुला लिया.

ऊंट सकपकाया. वे क्यों बुला रहे हैं? क्या इसलिए कि कुछ जली-कटी बातें सुनायें? बड़ी देर तक वह नाक-भौं सिकोड़कर दफ्तर के बाहर खड़ा रहा. आखिर वह बड़े अदब के साथ मैनेजर के सामने हाजिर हो गया.

मैनेजर ने उसे एड़ी से चोटी तक घूरकर देखते हुए फर्माया, "अरे, मैंने तुझे एक बात पूछने के लिए ही बुलाया है. तू कितने बरस का है?"

ऊंट आंखें फाड़े खड़ा रहा. वाणी उसके गले से फूटी नहीं मानो वह गूंगा हो.

"तुझे उसका स्मरण होगा नहीं. . जाने दे. तू लंबे समय से इस होटल का नौकर है न? मुझे तुम पर अधिक स्नेह और वात्सल्य है. लिहाजा मैं तेरा ब्याह रचाना चाहता हूं. तेरी क्या मंशा है?"

सुनते ही ऊंट बिल्कुल सन्न पड़ गया.

"अरे, जानता है औरत है कौन? इधर बावर्चीखाने की नौकरानी मातु है न? वही. चूंकि तुम दोनों इस होटल के पुराने नौकर हो, इसलिए तुझे ब्याह में पैसा-वैसा खर्च करने की जरूरत नहीं. शादी के खर्च के लिए तो. . . . "अपनी बात बीच में ही रोककर मैनेजर ने मेज खोलकर एक सिगरेट टिन में रखे रुपयों में से दस-दस रुपये के तीन नोट बाहर निकालकर मेज पर रख दिये.

"तेरी तनख्वाह का पैसा तो इधर है. और अधिक पैसा खर्च होगा तो मैं अपनी तरफ से दूंगा. औरत तुझे पसंद आयी है कि नहीं?"

ऊंट मैनेजर से क्या कहे? वह टकटकी लगाये वहीं खड़ा रहा.

तब तक ऊंट का विचार था कि औरत और ब्याह आदि से उसका कोई सरोकार नहीं. मुहब्बत आमेज जिंदगी की वह कल्पना भी कैसे करता? मैनेजर की बातों से उसे अपने जिस्म में नयी गुदगुदी का एहसास हुआ. ऊंट ने नाक और ओंठों से कमरे भर में सूंघने की कोशिश की.

"अरे, जल्दी बता. इसमें तुझे कुछ एतराज है क्या?" मैनेजर बोला.

ऊंट ने दांत निपोरते हुए सिर को हौले से हिलाया.

"हां, तू अब जा. कल रात ही तेरी शादी होगी. समझे? कल तू पानी-वानी लाने के लिए मत जाना. और थोड़ा-सा आराम करना."

शाम को होटल मैनेजर ने ऊंट को पुकारकर एक नयी शर्ट, डबल धोती और एक जरीदार अंगोछा भेंट में दिया.

अगला दिन भी आ कर चला गया. रात होने पर जब तक होटल के सभी ग्राहक गये तब तक दस नंबर कमरे में शादी का सभी इंतजाम हो चुका था.

नयी पोशाक पहनकर जरा कोफ्त के साथ ऊंट कमरे में दाखिल हुआ. तब भी उसकी टांग में बंधा रहनेवाला कपड़े का टुकड़ा वहीं था.

नयी दुल्हन फर्श में बिछी चटाई पर सज-धजकर बैठी थी. ऊंट ने उसकी ओर सहमकर देखा. विदित हुआ कि वह मोटी और काली तरुणी उसी होटल की नौकरानी मातु है. उसके जिगर में खुशी की लहर उठी, पर उसे दबाते हुए वह उसकी ओर टकटकी लगाये वहीं खड़ा रहा.

मैनेजर और उसके कुछ साथियों के सान्निध्य में शादी की रस्म संपन्न हो गयी.

वह एक पूनम की रात थी, पर यकायक बूंदाबांदी शुरू हो गयी.

ब्याह के बाद क्या करना होगा, यह ऊंट को सूझा ही नहीं. वह टकटकी लगाये वहीं खड़ा रहा. इतने में मैनेजर की आवाज गरजी कि अब तू पुरानी जगह ही जाकर लेट ले.

यों ऊंट को यह नहीं मालूम हुआ कि उसने कुछ खोया है या कुछ पाया है. वह पहले की तरह दिन काटने लगा. जिंदगी में ऐसी बेशुमार बातें थीं. जिनसे ऊंट कतई वाकिफ न था. उनमें एक यह शादी भी थी.

महीनों गुजर गये.

प्रत्यक्ष में ऊंट में कोई परिवर्त्तन हुआ नहीं. मगर उसको अपनी खोपड़ी में चिंताओं की गुदगुदी का एहसास हुआ. सामान्यतया उसकी सेहत अच्छी थी. मगर अब तो वह शिकार हो गया था बर्दाश्त न कर सकनेवाले एक सिर दर्द का.

ठेलागाड़ी खींचते वक्त अब वह गली में नहीं देखता. उसकी गरदन झुक जाती. बिना किसी वजह के वह नाराज हो जाता. ऐसे मौकों पर वह कभी मर्राई आवाज में गरजता. अंट-शंट बातें करता.

मातु को वह कभी-कभार देखता. बावर्चीखाने में, कभी चक्की में नारियल पीसते और कभी मसाला भूनते हुए. ऊंट को देखते ही मातु मुंह को आंचल से ढककर हंसी से लोट-पोट हो जाती.

उसने सब कुछ बर्दाश्त किया.

ऊंट ने सुना था कि शादी हुए छह मास भी न बीते कि मातु ने एक औलाद को जन्मा है.

एक दिन वह ठेलागाड़ी खींचते हुए जा रहा था. तभी तपाक से लड़के चिल्लाये, "अरे, देखो ऊंट का बच्चा!"

ऊंट ने गरदन मोड़ते हुए उस औरत की तरफ घूरकर देखा. गली से मातु जा रही थी. उसकी छाती से चिपटा था वह दुलारा बच्चा.

ऊंट की आंखों में रौनक आ गयी. वह एक आम आदमी की तरह मुस्कराया. झट गाड़ी रोक ली. हौले से मातु के नजदीक चल दिया.

मातु मारे खौफ के वहीं खड़ी हो गयी. ऊंट ने चट उस नन्हे-मुन्ने को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया. फिर वह ठेलागाड़ी के पास चला आया. मुन्ने को एक हाथ से छाती से सटाते हुए वह ठेला गाड़ी खींचकर चल दिया.

मातु फफक-फफककर रो दी. वह गाड़ी के पीछे दौड़ती रही. लफंगे लौंडे शोर शराबा करने लगे. इतने में लोगों की भीड़ वहां जमा हो गयी.

पुलिस की टोपी देखते ही ऊंट ने ठेलागाड़ी वहीं छोड़ी और नौ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

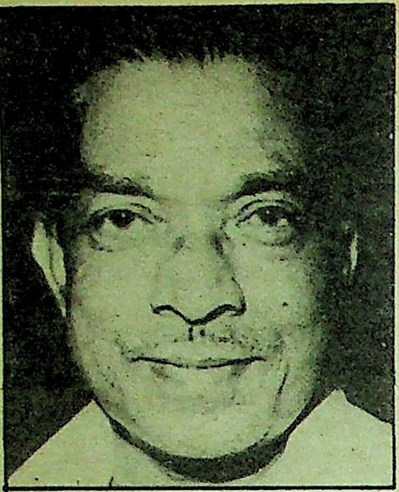

■ एस. के. पोट्टेकाट
— जन्म : 14 मार्च, 1913 कोषिकोड़ (कालीकट) मलयालम के मूर्धन्य साहित्यकार. विविध विधाओं में 60 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित. वर्ष 1964-73 के लिए प्रदत्त सन् 1980 का ज्ञानपीठ पुरस्कार आपकी उपन्यासकृति 'ओरु देशत्तिंते कथा' को समर्पित किया गया.

दो-ग्यारह हो गया.

उसने सोचा कि किधर दौड़ चलूं? होटल के सिवा और किसी जगह का स्मरण भी नहीं कर सका. मुन्ने को कांख में दबाते हुए वह सीधे होटल की तरफ दौड़ पड़ा.

वहां भी पुलिस की टोपी नजर आयी. वह खौफ के मारे भाग चला और होटल की सीढ़ियां चढ़ गया. देखा कि वही पुराना कमरा नंबर दस खुला है.

वह कमरे में घुसा और भीतर से दरवाजा बंद कर लिया.

होटल मैनेजर, मातु, पुलिस और छोटी-सी भीड़ कमरे के बाहर जमा हो गयी.

"दरवाजा खोलो!" मैनेजर आदेशात्मक स्वर में दहाड़ा.

कोई आवाज नहीं.

दरवाजा खटखटाते हुए मैनेजर ने पुनः चिल्लाकर कहा, "अरे, तुझसे दरवाजा खोलने के लिए ही कह रहे हैं."

"मुन्ने को मैं हर्गिज नहीं दूंगा." ऊंट ने भीतर से मर्रायी आवाज में कहा.

"वह तो बाद में देखेंगे, तू जरा दरवाजा खोलकर बाहर तो आ."

"यह मुन्ना मेरा है, सिर्फ मेरा." भीतर से पुनः मर्रायी आवाज आयी.

"अरे, तुझे दरवाजा खोलने को ही हम कह रहे हैं." मैनेजर ने जोर से दरवाजा खटखटाया.

"इसकी मां तो मुझ मिली नहीं. मुन्ना तो मुझे ही चाहिए." ऊंट दर्द भरी आवाज में गिड़गिड़ाया.

"अबे, यह क्या बक-बक कर रहा है? यह मुन्ना है किसका?" पुलिस ने तड़ाक से पूछा.

"वह तो इसका मुन्ना है." मैनेजर ने औरत की तरफ इशारा करते हुए कहा.

"वह तो समझ गया, इसका बाप?"

पुलिस के सवाल की उपेक्षा करते हुए मैनेजर ने जोर से पूछा, "अरे, तू बच्चे को क्या करने जा रहा है?"

"मैं स्वयं इसको पाल-पोसकर बड़ा बनाऊंगा. नहीं तो बेच डालूंगा. नहीं तो कत्ल करूंगा. यह मेरा मुन्ना है." ऊंट ने जवाब दिया.

"अरे बच्चू, तू इतना बड़ा हो गया है क्या? अगर तू दरवाजा नहीं खोलता तो मैं दरवाजा तोड़ने का इंतजाम करता हूं. और मैं साले तुझे मार डालूंगा." पुलिसवाले ने चेतावनी दी.

"अगर अब दरवाजा खटखटाया तो मैं मुन्ने को खिड़की से बाहर फेंक दूंगा." ऊंट ने धमकी दी.

मुन्ने की रुलाई भीतर से सुनाई पड़ी.

"हाय, हाय! वह जानवर मेरे मुन्ने को मार डालेगा." मातु ने अर्द्ध बेहोशी की हालत में चीखकर कहा.

"मुन्ने राजा सो जा, सो जा." भीतर से ऊंट की लोरी की आवाज सुनाई पड़ी.

मैनेजर पशोपेश में पड़ गया. कुछ लोग सन्न होकर खड़े सोचते रहे कि आगे क्या होगा?

"यह तो सिविल है क्रिमिनल नहीं. इससे मेरा कोई वास्ता नहीं." यह कहने के साथ पुलिसवाला नीचे उतरने लगा तो मैनेजर ने उसे रोका.

"इधर एक हत्या अभी-अभी होगी. ऐसी हालत में आप कुछ भी न जानने का बहाना कर कैसे जा सकते हैं?"

"उसके बाद मुझे पुकारो. मुझे तो इससे कोई सरोकार नहीं." कहने के साथ ही सिपाही चला गया.

मैनेजर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया. सख्ती से दरवाजा तोड़कर अंदर घुसता तो ऊंट धमकी के मुताबिक मुन्ने को गली में फेंक देता. ऐसी हालत में बात और खतरनाक होती.

बच्चे की रुलाई पुनः गूंज उठी. क्या पता कि ऊंट बच्चे को थपकियां दे रहा है या उसका कत्ल कर रहा है.

"अरे, मुन्ने को तुझे ही देंगे. वह तो भूख-प्यास से रोते-रोते जान दे देगा. तू दरवाजा तो खोल. हम तेरा कुछ नहीं बिगाड़ेंगे." मैनेजर ने शांत स्वर में कहा, मगर भीतर से कोई आवाज सुनाई नहीं दी.

मुन्ने की रुलाई बीच-बीच में सुनाई पड़ती रही.

"खपरैल को हटाकर हौले से भीतर घुस लें तो?" एक दर्शक ने अपना विचार प्रकट किया.

"अंदर पहुंचने के पूर्व ही वह हैवान उसकी हत्या कर देगा." दूसरे दर्शक ने कहा.

मैनेजर बोला, "हम भी देखते हैं कि वह यों कितने दिन तक ठहरेगा."

"उसकी बात जाने दो. उस मुन्ने की हालत क्या होगी? मुन्ना हाथ से निकल गया तो. . ." होटल एजेंट कणारन ने कहा.

"चाहे जो भी हो, कल की सुबह होने दो. इतने में उसका मिजाज तब्दील होगा."

यों सोच-विचारकर मैनेजर और उसके साथी वहां से चल दिये.

एजेंट कणारन दरवाजे के बाहर पहरा देने लेट गया.

अगले दिन मैनेजर और उसके साथी कमरा नंबर दस के बाहर खड़े होकर पुकारने लगे.

भीतर खामोशी थी.

आखिर तय किया गया कि दरवाजा तोड़कर भीतर घुसा जाये.

दरवाजा तोड़ दिया गया. उन्होंने भीतर की ओर झांककर देखा. देखते क्या हैं कि छत के शहतीर से ऊंट की नंगी लाश लटक रही है. ऊंट ने मुन्ने को अपने चीथड़े से अपनी छाती में झोली बांधकर लिटाया हुआ है. बिस्तर की चादर को ही उसने शहतीर से बांध लिया था.

मैनेजर ने कमरे की आलमारी पर चढ़कर ऊंट की छाती से लटकी झोली से उस मुन्ने को उठा लिया.

मुन्ने के शरीर में गर्मी थी. दिल हौले-से धड़क रहा था.

"मुन्ना मरा नहीं. नहीं मर गया." मैनेजर चिल्लाया. फिर वे सब मुन्ने को लेकर बाहर आ गये.

ऊंट की लंबी गरदन जरा मुड़ी थी. जीभ बाहर थी. अधखुली पलकों से, ऊंट की लाश ने दरवाजे से घुस आयी हवा की मदद से उस मुन्ने की तरफ जरा घूरकर देखा. □

● रूपांतर : प्रो. पी. कृष्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफी दर्दनाक, बल्कि कहा जाये तो वीभत्स दृश्य, जबकि घर के सभी को रोज यह दृश्य देखना पड़ता था, घर से निकलते और भीतर घुसते समय.

सभी को लगता था कि एक पंगु जड़ आदमी को ऐसी जगह रखने से पहले किसी ने समझ-बूझ से काम नहीं लिया था, जबकि मकान में उपयुक्त जगह की कमी नहीं थी. लेकिन उपाय क्या था? विश्वपति की जिद है कि इस निर्दिष्ट जगह को छोड़कर अन्यत्र टसकेंगे नहीं.

जबरदस्ती मकान के सारे लोगों की उपेक्षा करके एक तल्ले के सोने के कमरे से उठकर विश्वपति सीधे इस कमरे में दाखिल हो गये. उनकी जिद से तंग आकर लोगों ने उठाकर इस जगह पर उन्हें प्रतिष्ठित किया था. अब किसी की हिम्मत नहीं कि उन्हें यहां से कोई हटाये. उनके पीछे लोग हारकर कानाफूसी करते, केवल इस रास्ते के पासवाले कमरे में ही क्यों, इस धरती पर सर्वदा के लिए स्थायी बचे रहने का प्रमाणपत्र ले रखा है उन्होंने.

सदर रास्ते के किनारे यह मकान. इस कमरे में खिड़की के किनारे गरदन झुकाये इस बूढ़े को रास्ते पर चलते सारे लोग अनायास देख पाते. और यह सब परिवार के लोगों को अच्छा लगनेवाली बात भी नहीं थी. क्यों लगे? यह अपाहिज बूढ़ा आदमी कोई और तो नहीं, इस मकान के दो कमासुत जवान बेटों के पिता हैं, स्वयं इस परिवार के अधिकर्त्ता!

खिड़की इस रास्ते से काफी ऊंची होने के कारण असली माजरे को लोग देख नहीं पाते. नहीं जान पाते कि कुर्सी में धंसे इस आदमी के दोनों पैर टेहुने से नीचे गायब हैं. लोग सोचते कि बूढ़े हो गये हैं, अतः हिलडुल नहीं सकते, अथवा अधिक से अधिक लकवाग्रस्त हैं. उसी तरह

अपाहिज आदमी की जिंदगी का दर्द कितना गहरा जाता है जब वह अपने ही भरे-पूरे परिवार के बीच खुद को अकेला महसूस करने लगता है ....और कैसी होती है उसकी वेदना जो उसे अपने छोटों से अवमानित होने पर झेलनी पड़ती है. ...! क्या है इस बूढ़ी परंपरा से जुड़ी जिंदगी का यथार्थ?

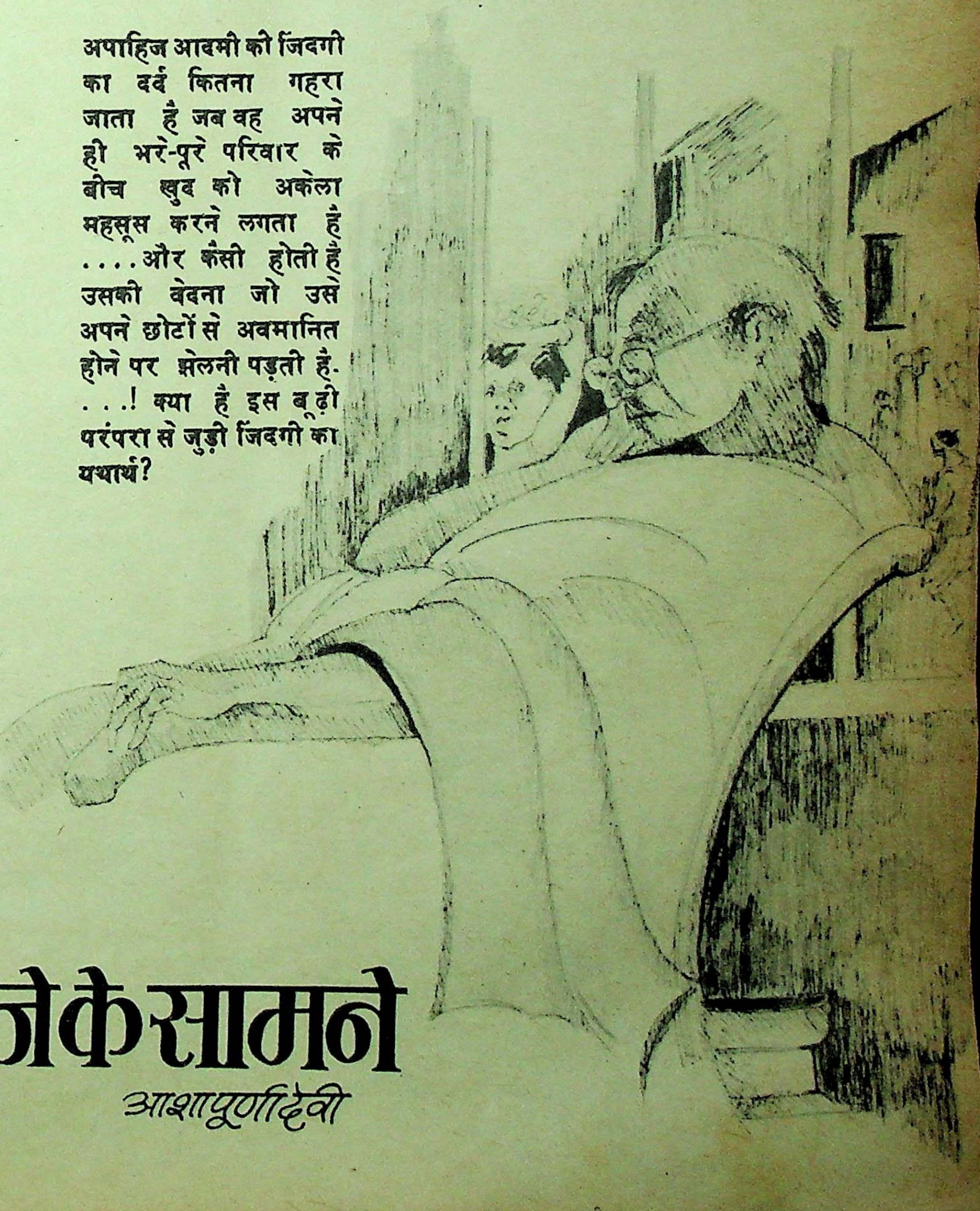

बंगला कहानी

बंद दरवाजे के सामने

आशापूर्णा देवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से परिवार के लोग भी जानने की कोशिश नहीं करते कि यह जड़ आदमी हाथ नचा-नचाकर रास्ते पर चलते लोगों से क्या बातें करता है और फेरीवाले को बुला-बुलाकर क्या-क्या खरीदता है, खाता है. खाता तो है ही, दूसरे दिन भी कुछ भी ले आने के लिए चुपचाप अग्रिम पैसे दे सकता है.

लेकिन आश्चर्य है. एक भी आदमी कहे मुताबिक दूसरे दिन झांकने नहीं आता. मानो, इधर आना ही भूल गया हो.

पैर नहीं रहे विश्वपति के, अतः कमर में वह ताकत भी नहीं, लेकिन आंखों की रोशनी बरकरार है. वे दूर से देख लेते कि फुचकावाला, आलू, काबलीवाला, बादामवाला, अमरूदवाला, खीरावाला दूसरे फुटपाथ से निकले जा रहे हैं, लेकिन आंखों में जोर रहने से क्या हुआ, गले में जोर नहीं है. इसके अलावा मामला भी तो छिपाव का है. जोर-जोर से बुलाने पर तो दूसरों के जान लेने का खतरा रहता है. लेकिन इस बात को गोपन रखा जा सकता है भला? खास तौर पर तब जबकि इस परिवार में दो-तीन शैतान बच्चे हों.

रास्ते के आसपास चक्कर मारते-मारते यह खबर भी उन बच्चों को लग जाती है, और घर में आकर ही-ही, खी-खी करते हुए बोलते हैं, "जानती हो मां? दादाजी ने लुक-छिपकर फुचकेवाले को क्या-क्या, अमरूदवाले के पास से. . .खूब लालची हैं दादाजी. हैं न मां. . .ही-ही-ही."

अभी तक मात्र ट्-थ्री के विद्यार्थी हैं ये. उससे क्या? वे चाहें तो, अपने पिता-चाचा को बाजार में बेच आ सकते हैं, फिर दूसरे बाजार से खरीदकर ले आ सकते हैं. दोनों लड़कों से लड़की ज्यादा चालाक है. हाथ नचा-नचाकर बोलती है, "इस भुक्खड़ बूढ़े को पैसा ही भला क्यों देती हो?"

यह लड़की विश्वपति के छोटे लड़के तीर्थपति की बेटी है. तीर्थपति की पत्नी बड़ी संजीदगी से बोलती है, "उनके अपने पेंशन का पैसा, है वे जैसा चाहे खर्च करें, दूसरों को इसमें क्या?"

"वाह, पेंशन वे खुद थोड़े ही लेते हैं. पिताजी ला देते हैं न!"

"तो वे खुद थोड़े जा पायेंगे? लाना पड़ता है."

"न लायें तो क्या होगा? उनमें ताकत ही कहां कि जबरदस्ती वसूल करें."

मां हंसकर कहती है, "तो ठीक है, पिता को बोलना कि न लायें."

"वे सुनेंगे भला. वे पिता की तरह उनसे भक्ति करते हैं. मुझे ही डांट देंगे. अच्छा ठीक है, खुद भुगतेंगे. यह सब खा-पीकर उनका पेट खराब होगा.'

इस प्रकार एक दिन सारा गोपनीय किस्सा लोगों तक पहुंच गया. गुस्से, दुख, लज्जा, अपमान से वे टूट गये अंदर ही अंदर. यद्यपि दोनों भाइयों के विचार इस बारे में अलग-अलग थे.

दोनों भाइयों में मेल-मिलाप न हो. ऐसी बात भी नहीं. लेकिन घनिष्टता नहीं थी.

विश्वपति नाम का यह आदमी अगर इतने दिनों से परिवार की जिम्मेदारी संभालकर न रखा होता. तो अब तक दोनों भाई अपनी-अपनी दुनिया के सरताज होते. कौन जाने और कितने दिन तक विश्वपति गांगुली के ग्राम से इलेक्ट्रिक बिल, टेलिफोन का बिल इत्यादि आता रहेगा. यहां तक कि मकान का टैक्स इनके नाम से जारी है. दूर रिश्तेदारों की तरफ से आया हुआ निमंत्रण-पत्र इनके नाम होता है.

मालिकाना अंदाज ही कुछ और होता है, जल्दी से खारिज नहीं होता. अतः ऐसे संभ्रांत पद के लिए दोनों लड़कों को तो मोह होगा ही. उनका न भी हो, तब भी पत्नी के लिए यह मलकियत—क्योंकि अभी भी वे 'गांगुली परिवार की औरतें' नाम से ही जानी जाती हैं.

तो क्या, विश्वपति सचमुच एक सौ वर्ष और बचेंगे? यद्यपि ऐसा सोचना व्यर्थ है. अधिक से अधिक दूसरों से कुछ ज्यादा समय तक तक जिंदा रहें, तब भी निरंतर एक ही जड़ आदमी को देखते-देखते मन में नहीं आता कि कितने दिन और?

यह और अद्भुत लगता है कि इस आदमी को साल-दर-साल दूसरों की सहायता से मुंह में कौर उठाने के अलावा और कुछ नहीं करना पड़ता. कमरे में ही नित्यकर्म करता है, वही आदमी अपने मुंह में इसी हाथ से कौर उठाने के लिए तत्पर कैसे होता है?

विश्वपति अपने लड़कों से कहीं अधिक मात्रा में भात लाते हैं, पाव रोटी चबाते हैं. आश्चर्य, हजम कैसे कर पाते हैं?

भुवनपति को तो एक कटोरी दूध नहीं पचता. तीर्थपति को तो दूध के नाम से भी परहेज है. विश्वपति को तो छोटी कटोरी भरकर मलाई मिलती है, किसी दिन नागा नहीं होना चाहिए.

इस तरह अस्वाभाविक आदत की जहालत लोगों को सहनी पड़ती है. तिस पर यह कि विश्वपति बच्चों की तरह रास्ते से फेरीवाले को बुलाकर असमय खाते-पीते रहते हैं. कुछ और ज्यादा जायकेदार चीज लाने के लिए अग्रिम मूल्य भी दे रखते हैं. यह सब सुनकर किसे सहन हो?

"उस कमरे से न निकलने तक ऐसा होता रहेगा." तीर्थपति बोला, "अब समझ में आयी बात. एक तल्ले से उतारकर रास्ते के किनारे वाले कमरे में ले आने की जिद के पीछे यही करण था. फेरीवाले को बुलाकर जो इच्छा हो, खाते रहेंगे. नहीं तो, ऊपरवाला कमरा भी तो रास्ते के किनारे ही पड़ता था, वहां से बाहर सब कुछ दीख पड़ता था. लेकिन बात तो कुछ और थी. मोहल्ले के लोगों को मुंह दिखाने लायक नहीं रहा. ये लोग तो रोज ही देखते हैं कि वह रास्ते से खरीदकर अंट-शंट खाते रहते हैं. क्या सोचते होंगे वे, यही न कि घर से भरपेट खाना नहीं मिलता है."

सचमुच. यह देखने में बुरा नहीं लगता कि दिन भर एक कुर्सी में धंसा बूढ़ा आदमी खिड़की के पास झुका बैठा है. उसके मुंह से लार टपक रही है. फिर भी वह सब समय कुछ न कुछ पगुराने की तरह चबा रहा है, छि:!

विश्वपति की देखभाल करने वाला खिदमतगार, जीवन-मरण के साक्षी, विधायक अमूल्य घर में घुसकर हंसता-हंसता बोलता है, "क्या बताऊं छोटी मौसी, दादाजी के झूठे हाथ को पोंछते-पोंछते अपने से तंग आ गया हूं. हाथ से खाया नहीं जाता है, चम्मच से खाने की इच्छा होती है."

"समझीं बड़ी मौसी, उन्हें कितनी बार कहा है कि इस उम्र में कम खाया करें, तो नाहक गुस्सा हो जाते हैं, मुझ पर. बोलते हैं, तेरे बाप का खाता हूं? अपने पैसे से खाता हूं."

बड़ी मौसी संभलकर बोलती हैं, "इसी अहंकार के मारे तो ऐसी स्थिति तक पहुंचे हैं. . ."

शाम होते ही विश्वपति कमरे में हुमाद का धुआं देने के लिए अमूल्य को तंग कर मारते हैं. अतः सरंजाम जुटाने के लिए उसे इस कमरे से निकलकर बाहर आना पड़ता है, फिर हुमाद जलाकर ले जाना पड़ता है. . .अमूल्य को लगता है कि इस बीच छिपछिपाकर और भी बातें होती हैं."

आज जैसे ही एक हाथ में हुमाददानी और दूसरे हाथ में पंखा लेकर अंदर घुसा, देखा कि कोई एक चीज छिपकर बाहर खड़े एक आदमी के हाथ में विश्वपति ने दी और वह आदमी तुरंत वहां से खिसक गया.

अमूल्य ने टोका, "दादाजी, उस आदमी को अपने क्या दिया?"

विश्वपति थोड़ा हिचकिचाये, फिर बिगड़ते हुए बोले, "दूंगा भला क्या? पिछले दिन का पैसा बाकी था, वही बुलाकर दे दिया."

"सब समय तो देखता हूं कि कुछ न कुछ देते रहते हैं, इतना बाकी रखते कब हैं?"

"तुम तो किसी का हिसाब रखते नहीं हो, फिर जानोगे कैसे?"

अमूल्य पंखा झलते हुए अनमने भाव से बोला, "दूसरा कौन है जो हिसाब रखता है आपका, पता नहीं मुझे."

"क्यों वे तीनों शैतान. . ."विश्वपति फिर उदास हो गये. ठहरकर निराश गले से बोले, "हम भी कभी बच्चे थे अमूल्य, पूरे परिवार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे-बड़े. मगर कोई भी इतना शैतान नहीं थे."

अमूल्य चुप था.

दादाजी की गुस्से-भरी आवाज अच्छी-भली लगती है, बल्कि निराशा, उदासी से लबरेज उनकी चुप्पी नहीं. बीच-बीच में ऐसे ही अंधकारमय गर्त में उतर जाते हैं. तब अमूल्य हतप्रभ हो जाता है!

लेकिन उस दिन चुप रह जाने के बावजूद, दूसरे दिन तेल मालिश करने के वक्त अमूल्य चौंक पड़ा, चिल्ला उठा, "दादाजी, आपकी अंगूठी?"

"अंगूठी! कौन-सी अंगूठी?" विश्वपति ने अवाक होकर उंगलियों की तरफ देखा, फिर आश्चर्य से बोले, अरे, सचमुच. . . कहां गयी? देखें तो जरा, नीचे कहीं तो गिर तो नहीं गयी?"

"गिरेगी भला कैसे? . . . . ." अमूल्य को संदेह हुआ, फिर बोला, "खींचने के बाद भी उंगली से नहीं निकलती थी."

"हो सकता है, सोते समय बिस्तर पर कहीं गिरी हो. रात में सोने पर उंगलियां पतली हो जाती हैं."

"रात में उंगलियां पतली हो जाती हैं?" अमूल्य जोर से बोला, "यह तो नयी बात सुनने को मिली. कल उसी आदमी को आपने दे तो नहीं दी?"

"क्या? क्या बोले?" विश्वपति हठात विफर पड़े, "तुम लोगों ने क्या मुझे पागल समझ रखा है? कीमती पत्थर जड़ी अंगूठी को रास्ते के जिस-तिस को दे दूंगा? भला क्यों? किस लिए . . . . ओह! तुम्हारे अधीन रह रहा हूं, इसीलिए धौंस जमा रहे हो. जाओ छोटे सरकार के पास, मौसी के पास जाकर मेरी शिकायत कर आओ कि मैंने अनजान आदमी को खैरात में अंगूठी दे दी है." बोलकर हांफने लगे थे. आंखें पोंछते रहे.

लेकिन इसके बाद अमूल्य शिकायत करने क्यों जाये भला. वह तो इन सब पचड़ों में नहीं पड़ता. भले ही विश्वपति उसे चांडाल कहें.

जो हो, पर बात तो गड़बड़ घोटाले की है. कमरे में दो ही आदमी हैं. दूसरा कोई घुसता नहीं. जो कुछ भी पूछना-ताछना हो दरवाजे के बाहर खड़े-खड़े. तब स्थिर बैठे इस आदमी की उंगली से अंगूठी जायेगी कहां? अमूल्य को छोड़कर कौन जानेगा इसे!

डरते-डरते अमूल्य ने इस घटना का बयान किया दोनों मौसी के सामने, तब बच्चे वहां नहीं थे. फिर भी वह इससे मुक्त हो पाया है, ऐसा भी नहीं.

छिप-छिपाकर बातें चलें तो बात अलग है, "भगवान ही जानता है, क्या सच है, क्या झूठ है. अंगूठी गायब कर अब सफाई देने आया है. क्या पता. पिताजी की उंगली में लगी अंगूठी लगभग बाहर आना सोना से बनी थी. जरा सोचो? उन्होंने अपने जमाने में साठ रुपये भरी सोना देकर बनवाई होगी, और आज?"

फिर भी बिना जाने झट से कुछ कहा न जा सकता है. गुस्से में भरकर अमूल्य यदि छोड़कर चला जाये, तो पानी सर तक चढ़ जायेगा. उस 'जंग लगे' जड़ आदमी को एक शाम भी संभालने की कूवत किसी में नहीं है!

इस आदमी की देख-भाल करने की जवाबदेही जिसके मत्थे थी, एवं जिसे विश्वपति की इस अमूल्य दुर्दशा के लिए तलब किया जा सकता था, वह तो कभी का खिसक गया. अब सारा भार उनके लड़कों पर आ पड़ा है. याने मां निर्मला गांगुली उसी वक्त चली गयीं, जब विश्वपति का दिमाग सातवें आसमान पर था!

अमूल्य को जब कुछ कहा नहीं जा सकता, तो असल आदमी को ही बताना ठीक रहेगा. याने तीर्थपति, क्योंकि भवनपति को क्या पता कि यह किस्सा घटने वाला है. वह तो आज आफिस में लौटते हुए किसी की लड़की की शादी में शामिल होने चला गया था. अतः तीर्थपति को आज छूट मिल गयी थी.

कमरे के अंदर कोई जाता भी नहीं. छोटा कमरा, उसी में बिस्तर तथा बेडपैन, यूरीनल, मुंह धोने का कटोरदान, स्नान के लिए बाल्टी, खाना खाने के लिए टेबल इत्यादि. किसकी इच्छा हो ऐसे घर में घुसने की? अमूल्य ही घर के भीतर से भोजन ले आता था. . .

तब भी तीर्थपति संभलकर चप्पल पहने हुए कमरे में आ खड़ा हुआ. छूटते ही सीधे-सीधे पूछ बैठा, "पिताजी, आपकी अंगूठी कहां है?"

वह एक तरफ से कांप उठे. फिर संयत होकर साहसपूर्वक बोले, "ओह तो बदमाश ने तुम सब से शिकायत कर दी. मैंने कहा था कि बिस्तर पर कहीं गिर गयी होगी खोज डालो. लेकिन साहब को इसके लिए फुरसत हो तब न. कैसे हो! खोजने के लिए तो बिस्तर के नीचे झुककर परिश्रम करना पड़ेगा न. काम चोर कहीं का." एक ही सांस में इतना सब बक जाने के बाद वे हांफने लगे थे.

"रुकिए!" तीर्थपति को सुअवसर मिला था, क्योंकि भैया की अनुपस्थिति में अभी वही सबकुछ कहने का अधिकारी बन बैठा था. मालिकाना अंदाज में बोला, "कल से आपको ऊपरवाले कमरे में रहना होगा. तैयार रहिएगा."

"फिर से मुझे ऊपर के कमरे में ले जाओगे? पागल हूं क्या, या कि दिमाग ठीक नहीं. एकदम से अभी ही श्मशान केंवड़ातल्ला ले क्यों नहीं जाते बेटा!"

तीर्थपति व्यंग्य के लहजे में बोला, "कहने भर से थोड़े ही कोई मरता है. केंवड़ातल्ला ले जायेगा. . . पहले वही मरकर आपकी प्रतीक्षा में बैठा रहेगा."

"क्या, क्या बोले?"

"जो सच है. वही बोल रहा हूं. मेरा ब्लड प्रेशर तो दो सौ चालीस तक उठा है. बहरहाल, आप इस रास्ते के किनारेवाले कमरे में नहीं रह सकते. मोहल्ले के लोगों के सामने नाक कट रही है."

डूबते को तिनके का अंतिम सहारा, विश्वपति निराश होकर बोले, "हां, लोग तो यही सोचते होंगे. नहीं, नहीं, सभी जानते हैं बेटे, बूढ़ा होने पर जीभ थोड़ी बढ़ जाती है. कुछ चटपटा खाने को हमेशा जी चाहता है टुपर-टुपर. मैं नहीं जाता."

"जायेंगे कैसे नहीं. आप बकते रहिए." तीर्थपति ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "सब जानता हूं. उन बदमाशों को बुला-बुलाकर खाने की फरमाइश करके अग्रिम पैसे फेंकते रहते हैं. ऐसा कब तक चलेगा?"

विश्वपति ने बड़े सहज होकर कहा, "ठीक कहते हो बेटे, बेहद ठगते हैं वे सब. कितने तो पैसे लेकर भाग गये. आने का बहाना सभी करते हैं. लेकिन नहीं आते, असभ्य कहीं के! चोर-उचक्के कहीं के!" इतना कहकर वे चुप लगा गये.

तीर्थपति धिक्कारते हुए बोला, "इस उम्र में भी इतना लालच? अद्भुत हैं आप! नहीं, नहीं आपको यहां से हटाना ही पड़ेगा."

विश्वपति अपने छोटे बेटे के ममताहीन चेहरे की तरफ ताकते हुए भीगे गले से बोले, "यहां बैठा हूं, आसपास के इतने सारे दृश्यों को देखने से वंचित करोगे? सोचो तो जरा, दोनों पैर गंवाकर कैसे एक आदमी इतने दिन. . .

"यह आपका दुर्भाग्य है. आपकी जिद्द की वजह से ही तो." तीर्थ-

आशापूर्णा देवी बंगला कथा-साहित्य की वरिष्ठ लेखिका हैं. इनके उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' को सन् 1960-69 के बीच प्रकाशित भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए इन्हें सन् 1976 का भारतीय ज्ञानपीठ का साहित्य पुरस्कार समर्पित किया गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकतंत्र के लाखों स्तम्भ

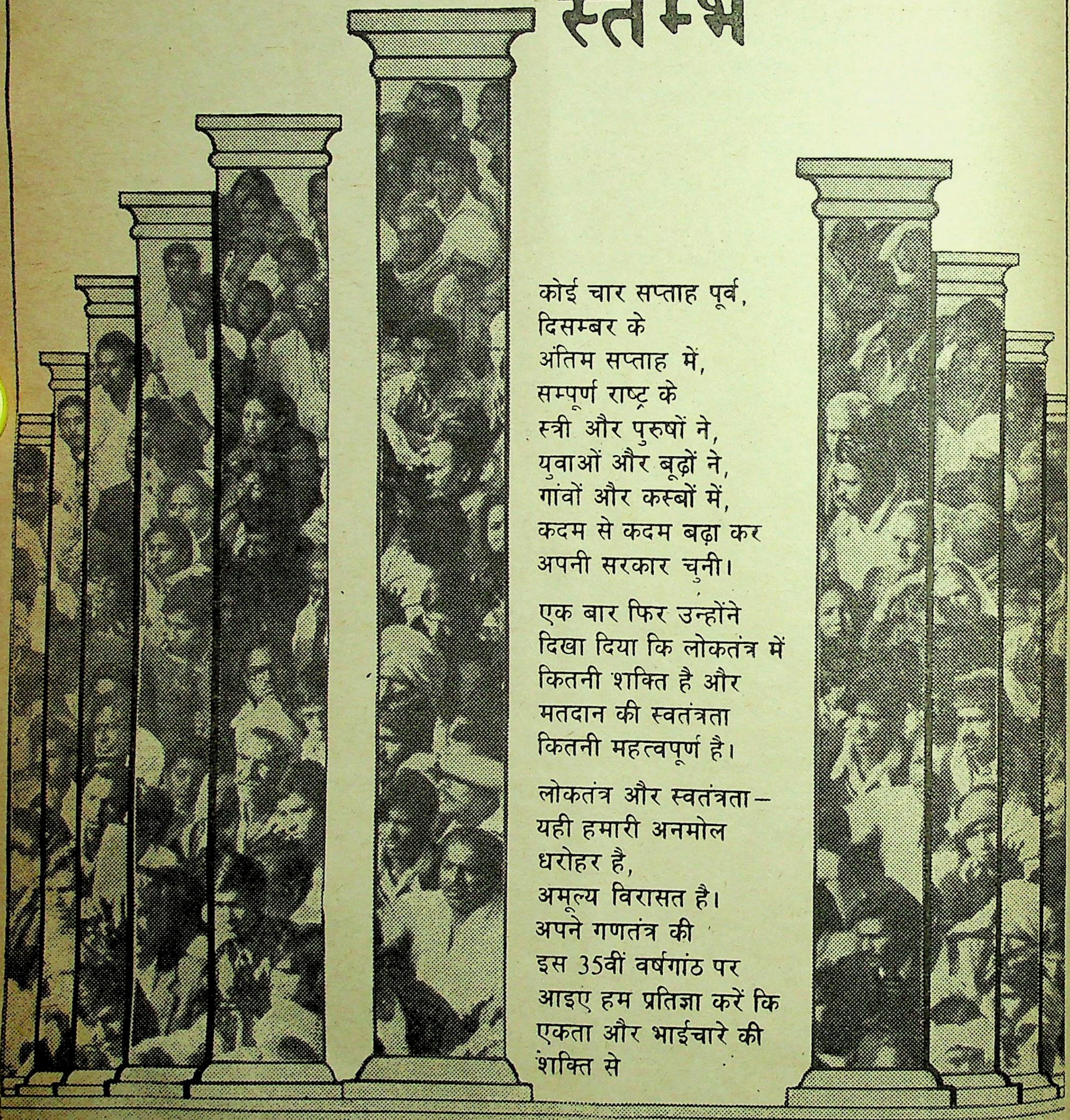

कोई चार सप्ताह पूर्व,
दिसम्बर के
अंतिम सप्ताह में,
सम्पूर्ण राष्ट्र के
स्त्री और पुरुषों ने,
युवाओं और बूढ़ों ने,
गांवों और कस्बों में,
कदम से कदम बढ़ा कर
अपनी सरकार चुनी।

एक बार फिर उन्होंने
दिखा दिया कि लोकतंत्र में
कितनी शक्ति है और
मतदान की स्वतंत्रता
कितनी महत्वपूर्ण है।

लोकतंत्र और स्वतंत्रता—
यही हमारी अनमोल
धरोहर है,
अमूल्य विरासत है।
अपने गणतंत्र की
इस 35वीं वर्षगांठ पर
आइए हम प्रतिज्ञा करें कि
एकता और भाईचारे की
शक्ति से

हम इस जोत को जलाए रखेंगे।

davp 84/257

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति ने बड़ी निर्ममता से याद दिला दी, "चलती हुई ट्राम पर चढ़ने की क्या जरूरत थी?"

चले गये ट्राम की चपेट में!

विश्वपति मानो हत्वाक थे. चलती हुई ट्राम में? कौन उठा था? विश्वपति? कैसा विश्वपति? किस तरह के जूते पहनता था?

तीर्थपति यहां जितना भी पैंतरेबाजी कर गया हो, रात में सलाह मशविरे के बाद सोचा, पिताजी को ऊपर ले जाने को ज्यादा जिद करने की जरूरत नहीं है. सचमुच, जिस कमरे में हैं वहां से बाहर ले जाना जितना सहज है, उतना ऊपर के तल्ले पर ले जाना नहीं. इसके अलावा, सब समय पेशाब-पखाने वाली गंदगी, बच्चों के पास रखना ठीक नहीं है. अतः भैया के लौटने पर भी उसने यह बात नहीं उठायी. चुपचाप रहा. अंगूठी की बात भी नहीं. . .जहां तक संदेह होता है, उसी अमूल्य की कारसाजी है. सुनकर कहीं गुस्से में भैया. . .

जोर से दुबले हुए बैठे थे विश्वपति. कब कुछेक मजदूर बुलाकर उनको कुर्सी समेत टान-टूनकर ऊपर सीढ़ी के उठा ले जायें. तब तो अंतिम भरोसा भी हाथ से जाता रहेगा. पर सुबह तक कुछ नहीं हुआ था.

गरदन झुकाये बैठे-बैठे घड़ी गिन रहे थे विश्वपति. बीच-बीच में माथा-उठाकर देखते रहे, इस बीच बच्चों के स्कूल की बस आयी, तीनों बच्चे उस पर चढ़कर चले गये. फिरकर भी नहीं देखा उनकी तरफ.

लेकिन उन बच्चों की तरफ से विश्वपति सोचते नहीं कि उनके दोस्त जब पूछते हैं, "दादाजी यदि बीमार हैं तो पड़े क्यों नहीं रहते बिस्तर पर? दिन-रात नीचेवाले कमरे में खिड़की के पास बैठे-बैठे क्या करते रहते हैं? यह सुनकर लज्जा में उनका माथा नीचे झुक जाता है!

सचमुच, इतना बड़ा मकान, जिसे विश्वपति ने बनाया था, उसी मकान में ऊपर के एक अच्छे बड़े कमरे में उनको क्यों नहीं रखा जाता?

बच्चे तो फिरकर देखते नहीं, हां, उनके लड़के देखते हैं.

तीर्थपति दरवाजे के पास से निकलते समय 'जा रहा हूं' कहकर चला गया और भुवनपति दरवाजे के चौखट के पास (जो विश्वपति के कुर्सी के निकट पड़ता है. बड़े कष्ट से घूमकर उन्होंने देखा) खड़ा-खड़ा नाटक के नायक की तरह वहीं से बोला, "ठीक से रहेंगे, ज्यादा धूप होने पर खिड़कियां बंद कर लेंगे, दवा पियेंगे ठीक समय पर. मना नहीं करेंगे. अच्छा चलूं. . ." यह कहकर जल्दबाजी में बाहर पैर रखा ही था कि आज भी पीछे से आवाज आयी, "सुनो. . ."

"बाहर निकलते समय पीछे से नहीं बुलायेंगे, कितनी बार कहा है!" आज 'केवल सुनो', नहीं तो, 'बबुआ-बबुआ' सुनते-सुनते भुवनपति के कान पक गये हैं.

"ऐसे ही देर हो गयी है, फिर वही, कुछ कहेंगे?" भुवनपति झुंझलाई हुई आवाज में बोला.

विश्वपति को गुस्सा नहीं आया, नाराजगी भी नहीं हुई, बेहद संयत होकर धीरे से कहा, "नहीं, रहने दो." ऐसी कोई जल्दी नहीं है, कल बताऊंगा."

भुवनपति थोड़ा उदास हो पड़ा. क्योंकि रंज होना उसके स्वभाव में नहीं था. बोला, "बोलिए, जल्दी बोलिए."

"ठीक है, ठीक है. कहा न, जल्दी नहीं है. कल बताऊंगा. . ."

भुवनपति ने सोचा, इस तरह पड़े-पड़े अपनी स्वार्थभरी दुनिया के सिवाय उनके सामने सब कुछ धुंधला है. दूसरों की दुनिया के रेस के घोड़े किस तरह भाग रहे हैं, यह उनकी सोच के बाहर की बात है!

बहरहाल, अब और अभिनय का समय नहीं है, लौटकर जो होगा, सो होगा. खूब जरूरी है, ऐसा क्या है? मांगने का ढंग निहायत बच्चों की तरह है. लगता है, जैसे प्यार दिखाने के लिए ही यह नखरा मात्र है. इस परिवार में भुवनपति है, जो विश्वपति पर नजर रखता है. अंतः बुला-बुलाकर अपना अधिकार उसी पर लादना चाहते हैं, और क्या?

भुवनपति ने सोचा था कि घर लौटकर अंदर जाने से पहले पूछेगा, "सुबह क्या मांग रहे थे? अब बोलिए. कल रात बाहर खाने पर आमंत्रित था, अतः देर हो गयी, और आज सुबह उठने में भी. . ."

लौटकर क्या पूछेगा, वही मन ही मन सोचता जा रहा था. भुवनपति. लेकिन घर लौटने तक मौका मिला उसको? नहीं मिला. आफिस पहुंचने के थोड़ी देर बाद ही फोन मिला कि. . .

भुवनपति स्तब्ध रह गया सुनकर. इस तरह हठात घटना घट सकती है भला? अतः वह फोन पर हत्वाक था, "अंय? क्या बकते हो?" यह खबर आफिसवाले को देकर जिस तरह विक्षिप्तावस्था में बाहर निकला था कि लोगों ने मुश्किल से हंसी रोकी थी.

भुवनपति बड़ा अजीब भावुक जीव है. भागते हुए देखकर तो लगा था कि जैसे हठात माथे पर आकाश टूट गिरा हो. आज दस-बीस साल से तो सोच रखा था, ऐसा होगा. फिर निश्चल रहते न!

घर लौटकर भुवनपति ने वही पाया.

मानो सभी को प्रतीक्षित वस्तु मिल गयी हो, सोचकर सभी ने निश्चितता की सांस ली थी. .

भुवनपति को यह सब अजीब नहीं लग रहा था, धीरे-धीरे उसने भरसक संयत होने की कोशिश की थी. वह भी दूसरे लोगों की तरह निश्चित हो पाता, अगर सुबह—हां, सुबह जाने में जल्दबाजी नहीं करता. अगर वह जान पाता, किस चीज की जरूरत थी उन्हें. विश्वपति ने चाहा था, बेहद रुंधी हुई आवाज में! और जब 'ठीक है, ठीक है, कल बताऊंगा' कहा था. तब! तब क्या उनके चेहरे पर नाराजगी थी? खूब विह्वलता थी? अत्यंत सोचने-समझने की कोशिश कर रहा था भुवनपति, पिता के साथ संपर्क उसका मात्र औपचारिक था? 'ठीक है, ठीक है, रहने दो.' कहते समय क्या विश्वपति के चेहरे पर गुस्सा दुख, नाराजगी की छाया स्पष्ट थी? किस तरह से आवेग, साथ ही बुझा-बुझा असहायपन प्रस्फुटित हुआ था!

आखिर क्या मांगना चाहा था, किस चीज की जरूरत थी उन्हें?

नहीं, अब इस जीवनकाल में जान नहीं पायेगा वह. जीवन के बाकी बचे दिनों में बंद दरवाजे के सामने खड़ा रहना है भुवनपति को!

यह दरवाजा जिस जगह खुला पड़ा है, वहां अमूल्य खड़ा है और उन्हीं बातों को लेकर हंसी-ठट्टा कर रहा है.

यह शोकाकुल मृत्यु तो नहीं है, मुक्ति संपन्न मृत्यु है; अतः हंसी-ठट्ठा करने में किसी को बाधा कहां है? निमंत्रित व्यक्तियों से खचाखच भरा यह मकान अभी उत्सव-उत्साह से भरा-पूरा लग रहा था. उसी भीड़ में शामिल अमूल्य लोगों के सामने ही हंस-हंसकर बोल रहा था, "अजी बुआ, चतुर्थी श्राद्ध में अपने पिता की प्रिय वस्तु फुचका, आलू काबुली चटनी का इंतजाम नहीं करेंगी? अजी, वह सब लोगों का दिखावा मात्र था, नाटकीय प्रपंच. उन सबों को बुला-बुलाकर दादाजी आहिस्ते-आहिस्ते क्या बोलते थे, जानती हैं? हां जी, दूसरे दिन वे दादाजी के लिए खाने में विष मिलाकर लायें. हां-हां, एकदम बच्चों जैसी जिद्द! दूसरे लोग भला ऐसा क्यों करने गये?"

बुआ अवाक् होकर बोलीं, "ऐसा मांगते थे?"

"तो मैं और क्या कह रहा हूं? दादाजी इसी भरोसे उनके हाथों में अग्रिम पैसे देकर रखते थे और जब वे सब दोबारा नहीं आते, तब उन्हें वे ठग, चोर, बदमाश कहकर गालियां बकते थे. उस दिन वह अंगूठी भी अधिक लोभ दिखाने के लिए उस आदमी को घूस की तरह उन्होंने सौंप दी थी. मजे की बात है कि यमराज को घूस भी नहीं मिली, मगर एक मिनट में उसने दादाजी को मुक्ति दे दी. बुआ जी, अब आप अपने पिताजी के श्राद्ध में उनकी इच्छा को ध्यान में रखते हुए 'विष' लाकर नहीं देंगी? हा-हा-हा.!" अमूल्य जोर-जोर से हंसने लगा था. आसपास के और भी लोग हंसने लगे थे उसकी बातों पर.

लेकिन इस हंसी के कारण को कोई भी भुवनपति को बताने नहीं जा रहा. उसे पता चल जाता तो, वह भी बंद दरवाजे को ठेलकर थोड़ा झांक लेता, मुक्त हो लेता. किसी ने उसे नहीं बताया, बतायेगा भी नहीं. अतः भुवनपति बंद दरवाजे के सामने ही खड़ा रह जायेगा जीवन पर्यंत! □

● अनुवाद : सिद्धेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सपने के धन का उपयोग

परिचर्चा आयोजक : सत्यपाल सक्सेना

हालांकि विषय बड़ा ही दिलचस्प था—यदि आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिल जाये तो आप उस रकम से क्या करेंगे?—सोचा था लेखक भी विषय को उसके परिप्रेक्ष्य में ही लेंगे और खुलकर बोलेंगे. लेकिन यह क्या? बहुत से अग्रज लेखकों ने तो यह सोच लिया कि मैं उनका अपमान करने की हिमाकत कर रहा हूं.

कुछ अन्य लेखकों ने (जो समझदार भी थे) विषय सुनकर 'हा हा हा' का जोरदार ठहाका लगाया. वे समझे कि मैं उनसे मजाक कर रहा हूं. जाहिर है कि वे लोग भी इस विषय पर मुंह कैसे खोल सकते थे.

हां, कुछ साहसी लेखक खुलकर सामने आये. पहले उपरोक्त दोनों तरह के लेखकों के मन में वह ललक तो थी कि कुछ बोला जाये. लेकिन साहस जवाब दे गया. कुछ लेखक तो सचमुच औरताना अंदाज में शरमाकर बोले, "छोड़िए सक्सेनाजी, इस परिचर्चा में शामिल होने लायक हम कहां." बहरहाल, जो लेखक बोले, यह खुशी की बात है कि वे खुलकर बोले. क्या बोले...?

विश्व भ्रमण पर निकलूंगा

▣ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

पहले तो भगवान को प्रसाद चढ़ाऊंगा. भगवती के सामने दीये जलाऊंगा. उन सबके नाम से लोगों को मिठाई खिलाऊंगा, जिसकी वजह से मुझे यह पुरस्कार मिलेगा. शेष राशि को लेकर योजना बनाऊंगा. मैं विश्व भ्रमण पर निकल जाऊंगा. खूब अच्छी-अच्छी चीजें देखूंगा, वहां रहूंगा. अपने लिए, पत्नी के लिए, बच्चों के लिए अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाऊंगा. जो कुछ वे कहेंगे करूंगा. इस भावना में कोई साहित्यकार नहीं घुस रहा. दरअसल यह मेरा गृहस्थ और परिवार का ही सहयोग होगा, जिसकी वजह से मुझे यह पुरस्कार मिलेगा.

विश्व भ्रमण पर मैं एक गांव के आदमी की तरह निकलूंगा, जो किसी मेले को देखने जाता है या उत्सव देखने को जाता है. और अंत में अपने अहंकार से पूछूंगा, "बता बेटा, और क्या चाहिए तुझे?"

हमारे यहां जो भी पुरस्कृत होता है, मेरा यह अनुभव है कि वह रोमांटिक हो जाता है. उनका अभिमान और बढ़ जाता है. इसलिए कोई तो पैसे से ट्रस्ट बनाने की सोचता है और कोई कुछ करने की सोचता है. यह सब झूठ है, अपने साथ छल है. इतना पैसा क्या होता है? यह तो बहुत थोड़ा पैसा है. पैसा मिले तो अच्छा-सा मकान बनवाओ. दरअसल यह छल ही आदमी को बड़ा होने से रोकता है. आदमी को एकदम नार्मल होना चाहिए. मेरा तो स्वप्न है कि मेरे लिए पुरस्कार की जब घोषणा हो तो कोई मुझे बुलाने आये, कोई मुझे ढूंढे और मैं लोगों को न मिलूं. मैं उस समय लिखने के लिए कहीं गया होऊं. मैं यह प्रतीक्षा न कर रहा होऊं कि मुझे पुरस्कार मिले बल्कि अपना काम करता होऊं. मैं कोई ट्रस्ट या संस्था नहीं बनाऊंगा.

पुरस्कार की संदिग्धता पर मैं कुछ नहीं बोलूंगा. दरअसल हमारे यहां सब कुछ असहज हो गया है. हमारे यहां आदमी इतना टूटा है, इतना खंडित हुआ है कि हर चीज के लिए अपने-अपने अर्थ लगाता है. मैं कोशिश करता हूं कि बात को उसी परिप्रेक्ष्य में सोचूं. मुझे जो संस्था पुरस्कार देगी, उसके लिए मैं कैसे सोच सकता हूं, संदिग्ध है अथवा असंदिग्ध. अगर मैं भी सोचने लगूंगा तो मैं साहित्यकार कहां हूं?

पुरस्कार मिलने पर एक काम और करूंगा. **वह यह है कि दुनिया को, विशेष रूप से भारत की दुनिया को, बताऊंगा कि साहित्यकार की जगह कहां होती है, उसका क्या स्थान होता है.** □

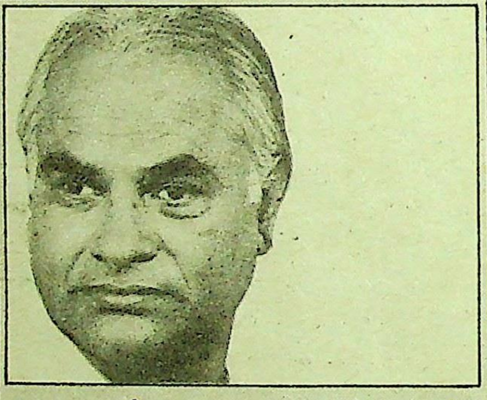

● डा. लक्ष्मीनारायण लाल : कपड़े बनवाऊंगा

● राजेंद्र अवस्थी : कागज खरीदूंगा

एक शानदार होटल में रहूंगा

▣ राजेंद्र अवस्थी

पुरस्कारों को मैं बहुत महत्व नहीं देता. जबकि ज्ञानपीठ जैसे बड़े पुरस्कार से दूसरों को यह तो आभास हो जाता है कि किस व्यक्ति विशेष का लेखन वटवृक्ष है. लेकिन मैं समझता हूं कि यह उसका सही मूल्यांकन नहीं है. अब तक जिन कृतियों को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिले हैं, वे कृतियां इस योग्य नहीं थीं. इसका अर्थ यह है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार किसी कृति विशेष पर नहीं बल्कि लेखक की समस्त क्षमता और उसकी सृजनात्मकता पर दिया जाता है. सृजन से जो उपलब्ध हो, वह ही उसका मूल्य है. लेखक और मजदूर में बड़ा अंतर नहीं है. खासकर भारत जैसे देश में तो और भी नहीं है, क्योंकि यहां का मजदूर मेहनत कर कम से कम रोटी तो कमा लेता है. यहां का लेखक केवल लेखन के बल पर मिली हुई मजदूरी से अपनी जिंदगी नहीं चला सकता. ऐसी विकट स्थितियों में यदि मुझे ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त होता है तो मैं समझूंगा कि यह मेरे गाढ़े पसीने की कमाई है, कोई खैरात नहीं. खैरात कि मैं जिसके लिए दूसरों को मिठाई बांटता फिरूं या पार्टियां दूं अथवा किसी संस्था को चंदा दे दूं. डेढ़ लाख रुपया मिलने से कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं बन जाता. फिर अब तक जितने लोगों को पुरस्कार मिले हैं, उनमें से अधिकांश लोगों ने उसका उपयोग दवाईयों की दूकान को समृद्ध बनाने में किया होगा. यदि ऐसे वक्त पर मुझे लखपति बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो मैं उसे बहुत बड़ा दुर्भाग्य ही मानूंगा. यदि पुरस्कार मिले तो अभी मिले, जब मैं जानता हूं कि जिंदगी को किस तरह शानदार ढंग से बिताया जा सकता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हां मैं अपनी नौकरी नहीं छोड़ूंगा या जो भी काम करूंगा उसे बंद नहीं करूंगा. बल्कि ज्ञानपीठ से प्राप्त राशि का उपयोग और अधिक योजनाबद्ध तरीके से अधिक महत्वपूर्ण लेखन के लिए खर्च करूंगा.

अब यहां यह बता देना जरूरी है कि मेरे लिखने का ढंग क्या है. मुझे लिखने के लिए बहुत साफ और अच्छे किस्म के कागज चाहिए. अच्छी मेज चाहिए और ऐसा कमरा हो, जिसमें मैं अच्छी तरह सांस ले सकूं. कम से कम घर बैठकर तो मैं काम कर ही नहीं सकता. लिखने के लिए एकदम शांत, एकांत और निश्चिंत वातावरण चाहिए और आपकी मर्जी पर हर समय, हर वक्त चाही हुई चीज हाजिर होनी चाहिए. यह सब किसी अच्छे होटल में ही उपलब्ध हो सकता है. इसलिए मैं अपने अगले लेखन की सार्थक भूमिका ऐसी ही जगह ठहर कर तैयार करूंगा. अब वह लेखन दर्द से कराहने वाले किसी व्यक्ति का भी हो सकता है. मजदूर के बारे में भी और शानदार ढंग से तौर-तरीकों को आजमाकर जिंदगी बसर करनेवाले व्यक्ति का भी. मुख्य चीज लिखने वाली जगह नहीं है. महत्व है मानसिक चेतना का. ◻

● डॉ. सरोजनी प्रीतम : कई योजनाएं हैं.

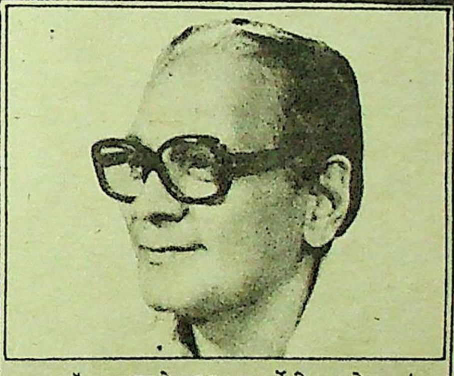

● डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी : भोज दूंगा.

मेरा भविष्य...!

◘ डॉ. सरोजनी प्रीतम

ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है तो राशि के संचित कोष का नाम पुरस्कार है. इस संचित कोष को पाने की लालसा में लोगों ने समूचा माल स्वयं हड़प लेने की योजना को पारंपरिक रूप दिया, इसलिए हे विद्वान! गुणवान!! यह पुरस्कार मुझे निकट भविष्य में दे रहे हैं तो कृपया पहले बता दें यह भविष्य कितना निकट है और इस निकटता को शीघ्र लाने के लिए सुपरफाइन इच्छा की जरूरत है, कौन-सा सुपरफास्ट वाहन चाहिए, कौन-सी तिकड़में लड़ाएं जरा बताइये.

खैर इस राशि का मैं कुछ ऐसे ढंग से उपयोग करूंगी कि यह राशि स्वतः संचित होकर मेरे पास आ जाये. तो सुनिए, हम आपको अपनी योजना तो बताएं.

किंतु याद रहे आज तक यह पुरस्कार लोगों ने प्रायः कांपते हाथों से ही ग्रहण किया है (यानी आपने उन्हें वय की चरमावस्था में ही दिया है) इसे इस उम्र में दीजिए जब अधरों पर 'अभी तो मैं जवान हूं' के स्वर उभरते हैं, मन में सौ-सौ अरमान मचलते हैं. इस राशि को पाकर हालांकि मेरा तो समूचा रूप ही बदल जायेगा और कन्याराशि से यह मुझे लखपति बना देगी. फिर भी ऐसा पति बनने की हार्दिक कामना की पूर्ति देखकर मैं सर्वप्रथम, हे श्रीमन्! आपको ही प्रशस्ति पत्र दूंगी तथा स्वर्णाक्षरों में लिखूंगी कि आप मुगल काल के वे प्रेमी हैं, जिन्होंने कद्रदानी की हरेक हंसिका पर मुहरें लुटाईं, अशर्फियां दीं.

हास्य-व्यंग्य के लिए शोध संस्थान की व्यवस्था पर भी मैं पचास हजार की राशि व्यय करना चाहती हूं. इसमें स्वयं को सर्वश्रेष्ठ घोषित करके शोधार्थियों पर सिक्का जमाना मेरा ध्येय रहेगा. उनके लिए शोध के विषय और हास्य-व्यंग्य के लेखकों की सूची, मेरे द्वारा ही बनाई जायगी. मेरी अप्रकाशित रचनाएं धड़ाधड़ प्रकाशित होने लगेंगी और व्यंग्य के क्षेत्र में अनेक नयी उपलब्धियां आप लोगों के हाथ लगेंगी.

हां, हिंदी जगत को सनाथ करने के लिए मैं शेष राशि से एक 'सरोजनी-प्रीतम' पुरस्कार योजना की घोषणा करना चाहती हूं बल्कि आप अनुमति दें तो यह घोषणा जारी कर दें ताकि ऐसे पुरस्कार योग्य रचनाएं लोग लिखनी तो शुरू कर दें. यों तो देखा गया है कि प्रायः लेखक पहले तो पुरस्कार पाने के लिए सौ तिकड़में लड़ाते हैं किंतु जब यह मिल पाए तो 'इससे मेरा अपमान हुआ है' कहकर पूरी राशि मुंह पर दे मारते हैं. मेरी चेष्टा ऐसे ही साहित्यकारों को पुरस्कृत करने की होगी ताकि वह राशि मेरे मुंह पर वापस दे मारे.

यह राशि शीघ्र दें तभी मेरी उक्त योजनाएं कार्यान्वित होंगी क्योंकि सुना है कि आनेवाली पीढ़ियों ने अपने व्यवहार से मान-अपमान के बीच खिंची भेद की दीवार गिरा दी है और वह अपमान भी पचा लेने की आदी है. यदि उन्होंने पुरस्कार राशि नहीं लौटाई तो मुश्किल हो जायेगी. ◘

चुनाव लड़ूंगा

◘ डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी

मैं मथुरा का चौबे हूं. हमारी जाति में जो व्यक्ति मथुरा में रहनेवाले सारे चौबों को पेट भरकर लड्डू खिलाता है, वही उनकी प्रशंसा का पात्र बनता है. मथुरा में इसे 'गांव' कहा जाता है अर्थात समस्तजाति के अबाल वृद्ध को इकट्ठा करके भोजन कराना. इसके साथ ही यदि आप यथाशक्ति दक्षिणा देना चाहें तो वह भी भोजन के साथ दी जाती है. हम लोग लगभग चार हजार हैं और आज के जमाने में इस आयोजन पर पचास हजार का खर्चा आता है. हमारी जाति में आप किसी अन्य क्षेत्र में किसी प्रकार का 'ब्रेकथ्रू' करें उसकी कोई नोटिस नहीं ली जाती. चाहे आप उस उपलब्धि को अखिल भारतीय स्तर की मानें किंतु हमारे भाईबंधु उसी के वर्चस्व को स्वीकार करते हैं जो इस यज्ञ को स्वीकार कर सकते हैं.

इसके साथ ही 'भंग' का 'गांव' भी होता है. जिसमें 'चक्क भांग', मुनक्का, बादाम, इलायची, आदि मिलाकर घुटवाई जाती है और प्रत्येक व्यक्ति को जी भरकर पिलाई जाती है और मेरे संस्कारों में यह बात बैठी हुई है कि ये दोनों काम कर देने पर व्यक्ति की सीट स्वर्ग में रिजर्व हो जाती है. स्वर्ग कौन नहीं जाना चाहेगा. बाकी रुपये से छोटा और बड़ा कोई भी चुनाव इस संसार को छोड़ने से पहले अवश्य लड़ने की तमन्ना है. मथुरा में चुंगी है. दिल्ली में कारपोरेशन है, मैट्रोपोलिटन कौंसिल है और संसद है. इनमें से जो भी लड़ सकूंगा, अवश्य लडूंगा. पता नहीं पुरस्कार कब मिले और उस समय मंहगाई का स्तर क्या हो. आज का तो एम. पी. के चुनाव पर स्वीकृत खर्चा डेढ़ लाख है. आगे जाकर यह और भी बढ़ेगा. इसलिए संसद का चुनाव लड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता. हां, अन्य जूनियर चुनावों पर हाथ आजमाया जा सकता है और यदि राजधानी में मामला फिट नहीं बैठा तो चुंगी का चुनाव तो निश्चित है कि फतेह करना है. हमारा अनुभव है कि पुरस्कार की बची हुई रकम से चुंगी की मेंबरी का खर्चा अवश्य निकल आयेगा. यह सत्य है कि आधुनिक जीवन की सार्थकता यही रह गयी है कि मृत्यु से पहले आप कोई न कोई चुनाव अवश्य जीतें. यदि पद सहित ही स्वर्गारोहण करें तो यह आदर्श मृत्यु मानी जाती है. ऐसी मृत्यु कौन नहीं मरना चाहेगा? ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाताल के झरने तक पहुंच जाने की तसल्ली

—अमृता प्रीतम

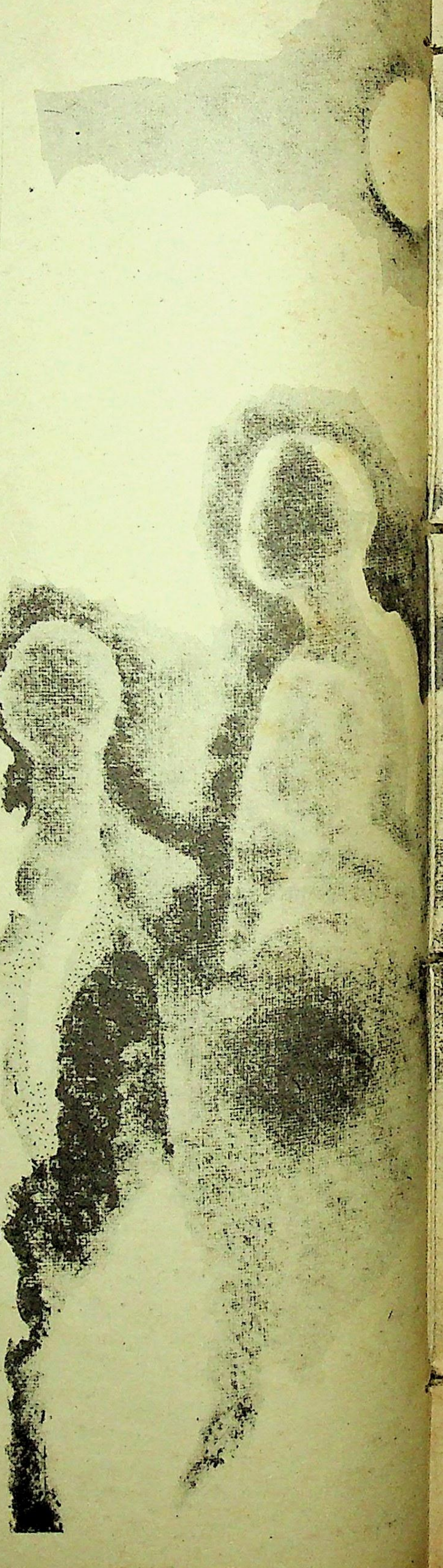

अमृता प्रीतम की डायरी से

नया उपन्यास 'तेरहवां सूरज' अप्रैल-मई में लिखा था. बुल्गारिया जाने से पहले. जिस दिन जो हिस्सा लिखती थी, इमरोज को सुनाती थी, लेकिन इकट्ठा और पूरा उपन्यास, लिख चुकने के बाद न मैंने पढ़ा था, न इमरोज ने सुना था. अब वापस आकर भटनागर साहब को हिंदी में तर्जुमा करने के लिए दिया. पूरा तर्जुमा सुनना था, इसलिए तीन दिन लगातार इस उपन्यास को सुना, मैंने भी, इमरोज ने भी. पूरे तीन दिन यह एहसास बहुत तीखा रहा कि यह उपन्यास मैं आज से कुछ साल पहले नहीं लिख सकती थी.

पिछला उपन्यास 'यह सच है' लिखकर भी लगा था कि आज तक जितने उपन्यास लिखे थे, इस उपन्यास तक पहुंचने के लिए लिखे थे. लेकिन यह कई पहलुओं से उससे आगे है. शायद इसलिए कि इसका 'स्पैन' बड़ा है. तीक्ष्णता वही है, पर मन के एक कोने में से उठी हुई नहीं, जिंदगी के छोर बिखराकर, कई कोनों को अपने अंदर में समेटती हुई. . .

उपन्यास में जिस समय संजय को वह स्वप्न आया, जब कागज पर लिखे हुए अक्षर धरती पर गिर पड़ते हैं और वह एक-एक अक्षर को एक-एक काले बीज की तरह उठाकर हथेली पर रखता है तो उसकी हथेली पोली और गीली मिट्टी की तरह हो जाती है जहां सारे अक्षर बीजों की तरह बोए जाते हैं. . . और फिर घड़ी भर बाद वहां छोटे-छोटे लाल रंग के फूल उग पड़ते हैं. . . तो संजय के इस सपने से मैं फिर उसी तरह कांप गयी जिस तरह उस रात कांपी थी, जब हू-ब-हू यही स्वप्न मैंने देखा था. . .

उपन्यास पढ़ते समय अपना यह स्वप्न मुझे याद नहीं था, न यह याद था कि अपना यह मैं, अपने पात्र की आंखों में डाल चुकी हूं. . . सिर्फ यह नहीं, और भी बचपन की कई विद्रोही यादें हैं—जो अपनी आत्म-कथा लिखते समय भी याद नहीं थीं, लेकिन वह स्वत: ही इस उपन्यास में आ गयी हैं. . .

संजय पुरुष पात्र है, अगर नारी पात्र होता तो इसका असली नाम अमृता ही होना था. . .

खुदाया! एक इंसान का इतिहास कितना लंबा होता है! चालीस बरस लिखते हुए हो गये, खत्म नहीं होता. . . आज भी संजय के मन का सारा दर्द मेरा निजी दर्द है. . .

22, 23, 24 अगस्त, 77

आज साहिर आये. हार्ट अटैक वाले हादसे के बाद उन्हें पहली बार देखा था—उनका एक-एक कदम पर खड़े होकर, हौले-हौले सीढ़ियां चढ़ना—अपनी ही आंखों को देखना बहुत मुश्किल लगा. सीढ़ियों में आगे होकर उन्हें बांह का सहारा दिया तो उसी पुरानी हंसती हुई आवाज में वह कहने लगे, "कुछ भी नहीं हुआ. बिलकुल ठीक हूं. . ." पर साथ ही सांस रोककर बोले, "सिर्फ दिल, फेफड़ा और किडनी खराब हो गये हैं, बाकी ठीक हूं. . ."

सब कुछ खर्च कर के जो बाकी बचता है—वही तो जिंदगी का अर्थ होता है. . . जिंदगी न सही, पर अर्थ बाकी है. . .

17 सितंबर, 77

रोमांचक शायरी का इतिहास आज हैरान होकर कभी साहिर के चेहरे की ओर देखता रहा, कभी मेरे मुंह की ओर. . बीच में मिश्रा साहिब बैठ हुए थे और उनके एक तरफ साहिर थे, दूसरी तरफ मैं. मिश्रा साहिब का विश्वास है कि उनके मंत्रों से, और उनकी फूंकों से सारे रोग कट जाते हैं. साहिर बता रहे थे, "दिल की हरकत ठीक है, लेकिन कभी-कभी घबराहट होने लगती है, सांस घुटा-घुटा आता है, एक फेफड़े में भी कसर है, एक किडनी में भी. . ." और मिश्रा साहब ध्यानमग्न होकर कोई जाप करते रहे, फिर साहिर की छाती पर, और गले पर, फूंक मारते रहे.

मैंने बताया, "उम्र के साठ के करीब होते हुए बरस शायद मेरे दोनों घुटनों में बैठ गये हैं, दोनों पर सूजन है. . ." और मिश्रा साहिब फिर ध्यानमग्न होकर जाप करते रहे और मेरे दोनों घुटनों पर फूंक मारते रहे. . .

साहिर का पता नहीं, लेकिन मैंने जरूर एक बार हंसकर शून्य में देखा, कहा, "खुदाया! हुस्न और इश्क के तसव्वुर का यह कौन-सा मकाम है!"

18 सितंबर, 77

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आज साहिर आये. हार्ट अटैकवाले हादसे के बाद उन्हें पहली बार देखा था. सीढ़ियों में आगे होकर उन्हें बांह का सहारा दिया, तो उसी पुरानी हंसती हुई आवाज में वह कहने लगे, कुछ भी नहीं हुआ. बिलकुल ठीक हूं. पर साथ ही सांस रोककर बोले, सिर्फ दिल, फेफड़ा और किडनी खराब हो गये हैं. बाकी ठीक हूं. सपनों की जिंदगी और जिंदगी के सपने कितने खूबसूरत होते हैं? अतीत को जीना कितना मीठा लगता है? इसी खूबसूरती और मीठेपन को उजागर कर रहे हैं अमृताजी की निजी डायरी के ये पन्ने—

कभी-कभी लोग ऐसा प्यार करते हैं, हैरान देखती रह जाती हूं. आज दोपहर टेलीविजन सेंटर से हरजीत का फोन आया, "एक बहुत जरूरी काम है, आज ही. मैं शाम को आ जाऊं?" और साथ ही कहा, "मैं एक लड़की से ब्याह करना चाहता हूं, उसे साथ लेकर आऊंगा." और हरजीत ने बताया "ब्याह वहीं, आपके पास आकर करना है." मैं हैरान हुई तो हरजीत ने कहा, "ब्याह की रस्म बस यही होगी, आपकी ब्लैसिंग्ज."

मेरा प्यार किसी के लिए विवाह की रस्म भी हो सकता है, यह बात मेरी ही आंखों में अचंभा हो गयी और शाम को इसी तरह हुआ—हरजीत अपनी महबूबा को लेकर आया, इमरोज गुलाब के फूल ले आये और मैंने अपनी नज्मों की किताब 'मैं जमा तू' उनके आंचल में डाल दी, और दोनों का माथा चूमा. फूल दिये.

इमरोज कैमरे से दोनों की तस्वीर खींच रहे थे कि हरजीत के दो दोस्त आये, पूछने लगे, "शादी की रस्म हो चुकी है?" तो हरजीत ने कहा, "हां, रस्म हो चुकी है, आप चाय पिएं."

किसी ईश्वर का अस्तित्व सचमुच मनुष्य की अपनी करामात होता है, और सिर्फ प्यार करनेवाले लोग यह करामात कर सकते हैं...

29 नवंबर, '77

रात को जिंदगी का सबसे अजीब स्वप्न आया, न जाने यह अचेतन मन का कैसा जादू-जाल था कि सपने के तार मेरे गिर्द लिपटते गये...

देखा—एक पहाड़ी-सा इलाका है, जहां पूरे इलाके में मेरी नज्मों की और मेरी दीवानगी की शोहरत एक लोक-कथा की तरह फैली हुई है. वहां एक दिन एक नदी के किनारे परे खड़ी हुई हूं कि नाव में बैठकर इलाके का राजा आता है. मुझे देखकर राजा के दरबारी नाव बांध लेते हैं, राजा से कहते हैं, "राजाजी! आप जिसकी नज्मों को सुनकर उसे खोजने आये हैं, वह यही है..." राजा नाव से उतरता है, कहता है, "तुम्हारी नज्में मेरे महलों में भी गूंज रही हैं, मेरे मन में भी.."

फिर मैं भी हैरान होकर उसकी ओर देखती हूं, वह भी. उसे याद आता है कि बहुत बरस हुए, शायद बीस बरस, जब मेरा उससे विवाह हुआ था, मैं उसके महल में उसकी रानी थी, लेकिन वह भोग-विलास में ऐसे खो गया था कि मुझे भूल गया था.

अब वह मेरी ओर हाथ बढ़ाता है, कहता है, "मैं तुमसे, सिर्फ तुमसे प्यार करता हूं, तुम्हारा हुस्न मैंने पहचाना नहीं था... अब मेरे महल में मुझे सिर्फ कुछ चाहिए तो वह तुम हो..."

मैं पीछे हटती कहती हूं, "नहीं, अब नहीं..."

देखती हूं—दरबारी मेरे आगे हाथ बांधते हैं, राजा की आंखों में पछतावे का पानी आ जाता है, लेकिन मैं दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्कार करके दूर जंगल की ओर चली जाती हूं...

स्वप्न में राजा का नाम पूरी तरह याद था, लेकिन जाग कर सिर्फ इतना याद रह गया है कि उसका नाम 'र' अक्षर से शुरू होता था. पूरा नाम भूल गया है. मुझे इस स्वप्न का कोई अर्थ नहीं मिल रहा है.

यह स्वप्न न जाने क्या है, इसका क्या विश्लेषण है, जी करता है जुंग जीवित हो तो उससे इसके अर्थ पूछूं.

आज जुंग की किताब 'मिमायर्ज, ड्रीम्ज, रिफ्लैक्शंज' पढ़ रही हूं. जुंग को भी अजीबो-गरीब सपने आते थे, जिन्हें वह कई बार वर्षों तक नहीं समझ पाता था. फिर किसी दिन उनके अर्थ अपने आप ही उसके अंदर से बोल पड़ते थे. वह फ्रायड की तरह सपनों को नपी-तुली थ्योरी में नहीं बांधता था. जो खयाल उसके चेतन मन में धीरे-धीरे सपनों के इर्द-गिर्द जुड़ते थे, उनमें से ही स्वप्न के अर्थ पहचान लेता था...

यही—मन में से स्वाभाविक तौर पर उठने वाले खयालों से—इस अपने सपने को समझने की मैं कोशिश कर रही हूं—वह राजा कौन था? क्या पिछले किसी जन्म की कोई परछांई मेरे सामने उघड़ रही है? क्या किसी जन्म में यही मेरा इमरोज किसी इलाके का राजा था, जिसने मुझे महल में ले जाकर भी बिसार दिया था? क्या पहले किसी जन्म में भी मैं शायर थी—दीवानी और जंगलों में घूमने वाली? और तब.. जब राजा को मेरी प्यास लगी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या उसी जन्म की प्यास के साथ वह इस जन्म में इमरोज बना? उसी प्यास को बुझाने?

इमरोज से मिलने से पहले—यह जिंदगी मेरे लिए जंगल थी, एक चट्टान थी. वह जब मिला, सचमुच लगा था—कोई सदियों की जान-पहचान है, उससे सदियों से रिश्ता है. . .

न जाने यह स्वप्न क्या है, शायद किसी बीते हुए जन्म की हक़ीकत है या मेरे आज के कहानियां लिखने वाले चेतन मन ने, सपने की डोर थाम बस यूं ही यह कहानी जोड़ दी है. . .

4 दिसंबर, 77 सवेरे चार बजे

रात सपने में बहुत वर्षों बाद अपने पिता को देखा. मैं और वह किसी पहाड़ी के शिखर पर खड़े हैं—जहां कई बहुत छोटी-छोटी और साफ पगडंडियां हैं, जिनमें से एक पगडंडी पर चलते हुए मैं कहती हूं—इस पगडंडी को लोग जानते नहीं, लेकिन मैं पहचानती हूं, यह बहुत जल्दी, एक उजाड़ की ओर से होती हुई नीचे बड़ी सड़क पर पहुंच जायेगी. मैंने एक बार दोपहर के समय यह खोजी थी. अब शाम है, वहां अंधेरा होगा. लेकिन कोई डर नहीं है, आप साथ हैं. . .

उस पगडंडी पर चलते हुए सचमुच जल्दी ही नीचे बड़ी सड़क दिखाई देने लगती है—रास्ते में अंधेरा जरूर पड़ जाता है, लेकिन तसल्ली-सी रहती है—रास्ता ठीक है, और बस अब जंगल खत्म होने वाला है—सड़क दूर से दिखाई देने लगी है—रास्ते में कहीं कोई आदमी नहीं मिलता, सिर्फ एक जगह पर सींगों वाला एक जानवर खड़ा हुआ दिखाई देता है, ठीक पगडंडी के ऊपर. मैं उससे थोड़ा डरती हूं, लेकिन फिर जल्दी से उसके एक पहलू के पास से होकर चली जाती हूं, वह मुझे कुछ नहीं कहता. . .

फिर न जाने कैसे—लाल पत्थरों के एक किले में मैं फंस जाती हूं, जिससे बाहर निकलने का रास्ता ढूंढते हुए मैं कई मंजिलें नीचे उतर जाती हूं—किले में और कोई नहीं है—बस, खूबसूरत लाल पत्थरों के बने हुए कई कमरे हैं, कई बरामदे, कई खंभे,—और वहां एक जगह पर एक बरामदे—से में मुझे एक आदमी मिलता है, जिससे मैं रास्ता पूछती हूं—वह साधारण-सा, दुबला-पतला-सा आदमी है. उसने शरीर पर वर्दी की तरह का कुछ पहन रखा है, जैसे किले का पहरेदार हो, लेकिन कुछ डाकिये-जैसा भी लगता है.

वह पास आकर अचानक मेरे होंठ चूमता है, फिर रास्ता बता देता है.—देखती हूं, उसने अपनी कमीज का एक बटन खोल दिया है, मैं घबराकर कहती हूं—'नहीं. . . नहीं' और तेजी से अकेली आगे चलने लगती हूं, वह हंस पड़ता है, लेकिन मेरा पीछा नहीं करता. लेकिन आगे जाकर फिर मुझे रास्ता नहीं मिलता.

▣ **अमृता प्रीतम शृंखला की उन इनी गिनी कड़ियों में से हैं, जो भारत और पाकिस्तान के पंजाबी साहित्यिक आंदोलन को संग्रथित बनाये हुए हैं. 1965-74 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कागज ते कैनवस' (पंजाबी) के लिए 1981 की ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेत्री.**

वहां एक और आदमी मिलता है, उसी तरह के कपड़े पहने, मैं उससे रास्ता पूछती हूं. वह कहता है, तुम्हें फिर पिछले बरामदे में जाना पड़ेगा. मैं कहती हूं, नहीं, मैं वहां नहीं जाऊंगी, वहां जो पहरेदार है, मैं फिर उसके पास नहीं जाऊंगी. यह दूसरा पहरेदार मेरे साथ चलते-चलते कहता है—"अच्छा! अगर वापस वहां नहीं जाना है तो दीवार के बाहर नीचे छलांग लगानी पड़ेगी." वह आगे को होकर दीवार से नीचे बाहर की ओर लटक जाता है, वहां कोई तार-जैसे हैं, जिन्हें पकड़कर मैं भी बड़े आराम से दीवार से बाहर की ओर लटककर, नीचे उतर जाती हूं. जिस्म को कोई खरोंच नहीं आती, बस तारों को हाथ से थामकर निचली मंजिल पर पहुंच जाती हूं, लेकिन यह निचली मंजिल भी बाहर जाने का रास्ता नहीं है—किले का ही कोई हिस्सा है. वह कहता है—"बस एक मंजिल नीचे और, फिर बाहर जाने का रास्ता मिल जायेगा." वह मेरे साथ चलता है, भला-सा आदमी लगता है, पूछता है, "जो पहरेदार तुम्हें पहले मिला था, उसने तुमसे कुछ कहा था?" मैं हंस-सी देती हूं, लेकिन उसे कुछ नहीं बताती. सिर्फ मन में घबराती हूं—वह कहीं फिर न मिल जाये. इतनी देर चलते-चलते बाहर निकलनेवाला दरवाजा दिखाई दे जाता है—छोटा-सा, पुराना-सा, और उसमें से बाहर का उजाला दीख रहा है—मैं मन में सुख की सांस लेती हूं. . . और अपने आपको अब सुरक्षित समझकर सोचती हूं—यह पहरेदार असल में कौन है? और अपने आप ही बहुत स्पष्ट होकर समझ जाती हूं—पहला फ्रायड था, दूसरा जुंग है. . . और इस खयाल के साथ ही मेरी आंख खुल जाती है. . .

2 जनवरी, 78 रात तीन बजे

इन कुछ महीनों में एक नयी रिअलाइजेशन आयी है कि मुझे इमरोज का अस्तित्व सिर्फ साथ के लिए नहीं, अपने एकांत के लिए भी जरूर चाहिए—सिर्फ वही दूर अपने कमरे में बैठे, मेरे एकांत की रक्षा कर सकते हैं. हर घंटी, हर टेलीफोन, और हर बाधा से मुझे वही बचा सकते हैं. . . उसके बिना मेरे एकांत में, एकांत के टूटने का भय इस तरह शामिल रहता है कि मेरा एकांत भी मेरा एकांत नहीं होता. . . वह भय-मुक्त सिर्फ उनके अस्तित्व से होता है. . .

साथ के लिए तो कइयों ने किसी न किसी को चाहा होगा, लेकिन किसी ने अपने एकांत की खातिर भी किसी को चाहा हो, पता नहीं. मैंने जरूर चाहा है. . .

21 मई, 78

17 तारीख को नया उपन्यास शुरू किया था—49 दिन, जिसमें संजय कई दिन बेहोश रहा और करीम प्रेस से छुट्टी लेकर, उसके पास बैठा रहा. परसों के चैप्टर में संजय रोग-मुक्त हुआ था. आज सवेरे तड़के ही सोचा—नया चैप्टर लिखूंगी, आज करीम बहुत दिनों बाद काम पर जायेगा.

सुबह का रसोई का काम निबटाकर चैप्टर शुरू करना था, जिसके लिए सारे छोटे-छोटे काम खत्म करते वक्त भी जेहन में करीम के बारे में सोचती रही. . . अचानक रसोई की खिड़की से बाहर नजर गयी—देखा जोर से मेंह बरस रहा है. मैं चौंककर सोचने लगी, 'इतनी बारिश में करीम आज कैसे जायेगा? उसे तो साईकिल पर जाना . . .'

फिर मेरे जोर से हंसने की आवाज सुनकर इमरोज आ गये, उन्हें बताया कि अभी एक पल हुआ—मेरी सारी चेतना न जाने कहां चली गयी थी, अभी मैं घबरा गयी थी कि ऐसे बरसते हुए मेंह में मेरा करीम कैसे जायेगा? अपने पात्रों से एकजान हो जाने का तजुर्बा भी अजीब तजुर्बा होता है. . .

24 जून, 78

आज एक स्वप्न पर हैरान-सी होकर जागी हूं—न जाने कौन-सी जगह है, पर वहां पाताल में उतरने वाली सीढ़ियां हैं. बताया जाता है—नीचे पाताल में एक झरना है. . . फिर बताया जाता है—आज मेरा विवाह है, वहां झरने के किनारे पर. . . पिता को देखती हूं, कहीं बहुत दूर से थके हुए आये हैं, कह रहे हैं, "बड़ी मुश्किल से यह जगह तलाश की है, लेकिन आना था, आ गया हूं." ताया को भी देखती हूं—बहुत ही सफेद कपड़े में सजे हुए हैं, और मुझसे विवाह का जोड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे ज्ञानपीठ पुरस्कार बहुत पहले मिल जाता, मगर. . .

'अमृता प्रीतम को ज्ञानपीठ पुरस्कार' की घोषणा के एकदम बाद वीरेंद्र जैन द्वारा किए साक्षात्कार के कुछ अंश. . .

▣ अमृताजी, सुना है आपकी रचनाओं पर पंजाब प्रदेश में पाबंदी लगा दी गयी थी कभी?

—हां, बहुत पहले एक नज्म पर लगी थी यूनिवर्सिटी में. उसके बाद सिर्फ अखबारों में बातें होती रहीं, लेकिन अभी तक पाबंदी नहीं लगायी गयी. लेकिन मैं इससे घबराती नहीं. अगर वे कुछ किताबें जब्त कर लें तो इसका नुकसान उन्हीं को होगा, उनकी मानसिक स्थिति को, मानसिक विकास को होगा, मुझे नहीं.

▣ आपकी रचनाओं में कोई एक 'वो' है, जो बार-बार आता है. जिस पर आपको अगाध विश्वास है, जो आपका शुभचिंतक है, सहारा है, मार्गदर्शक है, प्रेरक है, अनुयायी है, जैसे आपकी एक कविता की इन पंक्तियों में है:—सोचा, अगर तू कहीं मिले/तो समुद्र की तरह इसे छाती पर रखकर/हम दो किनारों की तरह हंस सकते थे/और नीची छतों/—और संकरी गलियों के शहर में बस सकते थे'—कौन है यह जिसके साथ आप विषम परिस्थितियों में भी जीते रहने को तैयार हैं? क्या यह आपके कल्पना लोक की ईजाद है या वास्तव में कोई शरीरधारी है ऐसा?

—जी हां, पहले कल्पना से ही बात शुरू होती है, अपने कल्पना लोक से, जिसे हम यथार्थ की हद में लाना चाहते हैं. उसी की तलाश में नज्में लिखते हैं, कहानियां लिखते हैं. उसको मैंने जिंदगी में भी पाया, बहुत वर्षों की तलाश के बाद—इमरोज के रूप में.

▣ आपको इस वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला है आपकी पुस्तक 'कागज ते कैनवस' पर. कहीं इस पुस्तक के शीर्षक का अर्थ भी यह तो नहीं—कागज यानी कवयित्री अमृता प्रीतम और कैनवस यानी चित्रकार इमरोज?

—नहीं, कागज लिखने से ताल्लुक रखता है और कैनवस—मेंटलविजन के लिए यह शब्द इस्तेमाल किया है.

▣ आपने पद्य से कहीं ज्यादा गद्य लिखा है. आपकी अब तक की 70 किताबों में पद्य रचनाएं कुलजमा 20 हैं, फिर भी पुरस्कार के लिए सदा पद्य ही चुना जाता रहा. वास्तव में पद्य में आप अपने विचार सशक्त ढंग से अभिव्यक्त कर पाती हैं, क्या आप ऐसा मानती हैं?

—मैं सोचती हूं कि लेखक जब चिंतन के मकाम पर पहुंच जाता है तो यह सवाल महत्त्व नहीं रखता कि वह अपने खयाल को नज्म में पेश करता है या कहानी में. इसका रूप खाली सफरनामा भी हो सकता है. सफरनामा लफ्ज मैंने खाली पर्यटन के लिए इस्तेमाल नहीं किया, यानी देशों की यात्रा के लिए नहीं. इसे मैं खयालों का सफरनामा भी कह सकती हूं. खयालों की सड़कों का सफरनामा.

▣ आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने वाली पंजाबी भाषा की पहली रचनाकार होने का गौरव प्राप्त हुआ है. आज चारों तरफ इसकी चर्चा है. आपने स्वयं भी स्वीकारा है कि इससे आपको संतुष्टि मिली, इस रूप में कि इससे आपका पाठकवर्ग बढ़ा. इन हालात में मैं एक और पहलू पर आपकी राय जानना चाहता हूं. सुना है कि पिछले कई वर्षों से आपकी यह पुस्तक पुरस्कार योजना में विचारार्थ आती रही, मगर हर बार पंजाबी भाषायी समिति ही इसे रद्द करती रही. यानी उसे निर्णायक मंडल तक विचारार्थ नहीं पहुंचाया गया. फिर यकायक इस वर्ष यह पुस्तक इतनी महत्त्वपूर्ण कैसे हो गयी कि न केवल प्रतियोगिता के अंतिम चरण तक पहुंची बल्कि सर्वश्रेष्ठ भी घोषित की गयी. . .?

—यह बात जहां तक मुझे मालूम है या पता चली है वह इस तरह है कि तीन-चार सालों से ऐसा चल रहा था. जो लोग पहले भाषा समिति में थे वे नहीं चाहते थे कि इसे पुरस्कार मिले. और चाहते थे कि मेरी जगह उनका नाम हो या उनके चहेतों का.

▣ ऐसी स्थिति में तो इस निर्णय को या पुरस्कार को ही निष्पक्ष कैसे कहा जा सकता है?

—यह निर्भर करता है इस बात पर कि जैसे इंसान होंगे, वैसा ही होगा. कमेटियों में ठीक लोग होंगे तो ठीक निर्णय होंगे और गलत लोग होंगे तो गलत. साहित्य अकादमी के साथ भी ऐसा ही हुआ. उनका मयार (स्तर) दिन-ब-दिन कम होता गया. सिर्फ इसलिए कि उन्होंने बहुत से ऐसे लोगों को, जिनका चिंतन बड़ा नहीं है, गहरा नहीं है, उन्हें कमेटियों में लिया तो उनका स्तर गिरा. ऐसा हर क्षेत्र में हो रहा है. इसमें जिम्मेदार लेखक खुद होते हैं, आलोचक खुद होते हैं.

लेकिन मैं एक बात और कहना चाहूंगी कि सही मानों में लेखक वही होता है जो वक्त के आगे चलता है. अपने छोटे-से 'स्व' से बहुत आगे. बाकी लोग तो वो होते हैं जो पीछे चलते हैं. समाज के पीछे, मजहब के पीछे, कुर्सियों के पीछे. तो ऐसे लोग हर युग में होते आये हैं, होते रहेंगे. □

पहनने के लिए कह रहे हैं. मैं सफेद रेशम की सलवार, अतलस-जैसे कपड़े की कमीज, और एक लाल चुनरी पहनने के लिए चुनती हूं. गहने भी बहुत सारे हैं, सब पहनती हूं. विवाह किसके साथ है? कुछ पता नहीं. मैं रेशमी कपड़ों में सजकर—अकेली पाताल की सीढ़ियां उतरने लगती हूं. . . न जाने कितनी हजार सीढ़ियां हैं, लेकिन रास्ते में अंधेरा नहीं है. मैं नीचे पाताल में पानी के किनारे पहुंच जाती हूं—चुल्लू भर-भर पानी पीती हूं. वहां झरने में देखती हूं—मेरे पिताजी नहा रहे हैं, कहते हैं—यह धरती का असली स्रोत है—जहां सारी दुनिया को पानी मिलता है. . .

सीढ़ियां उतरकर पाताल के पानी तक पहुंचना—जैसे जुंग को पढ़ा है, उसके अनुसार ऐनालाइज कर सकती हूं उस पानी को छूने और पीने की तसल्ली स्वप्न से जाग कर भी—मेरी रगों में है, लेकिन जो समझ की पकड़ में नहीं आ रहा है—वह सपने वाले विवाह का जोड़ा है, और मेरे पिता और ताया की रूह है जिनके वजूद प्रत्यक्ष देखे हैं. . . यह शायद बहुत जल्दी होने वाली मेरी मौत की सूचना है. . . शायद कुछ ही दिनों में ही, पता नहीं. लेकिन अगर मौत की सूचना है, तो उससे किसी तरह की घबराहट नहीं हो रही है. . .

ठीक है—अगर धरती से जाने का वक्त आ गया है—तो तैयार हूं. . .

25 अक्तूबर, 1978 सवेरे तड़के □

पंजाबी से अनुवाद : बी. एस. भटनागर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार

यदि हम पुराने नियम का ही आग्रह करते तो इन साहित्यकारों का क्या होता...

पुरस्कार चयन की अंतिम प्रक्रिया क्या है? आखिर कैसे दिया जाता है यह नोबेल पुरस्कार जैसा ही सम्मानित पुरस्कार? इस पुरस्कार को लेकर कैसे-कैसे विवाद उठते हैं और क्यों? इन विवादों के मूल स्वर के पीछे कारण क्या हैं? यह पुरस्कार राजनीति से कितना अलग है? और ऐसे ही अनेक सवालों के जवाब तलाशती पुरस्कार प्रवर परिषद के सदस्य श्री लक्ष्मीचंद्र जैन से वीरेंद्र जैन की तथ्यपरक बातचीत——

▣ ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए पुस्तक चयन की अंतिम प्रक्रिया क्या है?

अंतिम निर्णय के समय प्रवर परिषद की दो बैठकें होती हैं. पहली बैठक में भाषा परामर्श समितियों की संस्तुतियों की समीक्षा होती है और तीन-चार कृतियों को अंतिम निर्णय के लिए सामने रखा जाता है. और दूसरी में निर्णय. इस बीच पहली बठक में जो पुतस्कें विचारार्थ छटती हैं उन पर और कार्रवाई हो चुकी होती है. और फिर उन पर विचार होता है.

▣ ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए पुस्तक का चयन करते समय पहले होता यह था कि एक अवधि तय कर दी जाती थी और उस अवधि के दौरान प्रकाशित पुस्तकों में से ही सर्वश्रेष्ठ का चयन होता था. ऐसा करने से प्रायः बहुत महत्वपूर्ण रचनाकार भी पुरस्कृत होने से रह जाते थे. लेकिन यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता था कि पुस्तक (जो पुरस्कृत की गयी) पुरस्कार के सर्वथा योग्य थी, लेकिन इधर पिछले दो-तीन वर्ष से ज्ञानपीठ ने पुरस्कार के लिए पुस्तक का चयन न करके लेखक का चयन करना शुरू किया है. इस बदलाव से क्या यह सोचने का अवसर नहीं आ गया है कि अब ज्ञानपीठ जिसे चाहे, पुरस्कृत कर सकती है?

पहले भी व्यक्ति ही सामने था, व्यक्ति कौन है, पुस्तक कौन-सी है, दोनों देखे जाते थे. यह नहीं कि हमने गणदेवता चुना, बल्कि ताराशंकर का गणदेवता चुना. अब लेखक का समस्त कृतित्व सामने रखा जाता है. अठारहवें पुरस्कार से यह प्रक्रिया प्रारंभ हुई है. पुरस्कार वर्ष से पांच वर्ष पूर्व तक का सारा साहित्य सामने रखा जाता है और लेखक के निर्णय के बाद दो या तीन पुस्तकों का विशेष उल्लेख किया जाता है. यह भी सरल नहीं है. लेखक भी कई हैं, उनमें चुनना आसान बात नहीं है. मान लीजिए आज हम हिंदी को ही पुरस्कार देना चाहें तो किसे दें——जैनेंद्र को दें, नागर को दें, या बच्चन को दें. यह चुनना अपने आप में बहुत कठिन है.

▣ इस परिवर्त्तन से ऐसा लगने लगा है कि ज्ञानपीठ ने अपना काम बहुत सरल और अपनी पकड़ में कर लिया है. अब ज्ञानपीठ चाहे तो अगले बीस पुरस्कार पानेवाले लेखकों की सूची अभी से तैयार कर सकती है. क्या इसीलिए यह सरलीकरण किया गया है या कुछ और वजह रही? क्योंकि जहां तक आपका पुस्तक की जगह लेखक को सामने रखने के नियम का सवाल है यह परिवर्त्तन नियमावली में भले ही कर लिया गया हो, प्रचारित यही किया जाता है कि फलां पुस्तक को——महादेवीजी की 'यामा' या मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार के 'चिक्कबीर राजेंद्र' को पुरस्कृत किया गया है.

ऐसा नहीं है. दरअसल यह मतिभ्रम में हुआ. महादेवीजी का सारा कृतित्व सामने था. यामा और दीपशिखा का विशेष उल्लेख किया गया. मास्तिजी के भी संपूर्ण कृतित्व को पुरस्कृत किया है. हां 'चिक्कवीर राजेंद्र', 'नवरात्रि', 'भाव' (आत्मकथा) को विशेष रूप से उल्लिखित किया है. यों मास्तिजी अपने साहित्य में एक उपन्यासकार के रूप में नहीं बल्कि एक मूर्धन्य कहानीकार के रूप में सुविख्यात ही नहीं, उन्हें तो आधुनिक कन्नड़ कथा साहित्य का जनक माना जाता है. यह पुरस्कार चिक्कवीर राजेंद्र को मिला, यह धारणा भ्रामक है. लिखने, कहने में कहीं कोई विपर्यय हुआ है.

अगर पुस्तक और अवधि की बंदिशें रही होतीं तो महादेवीजी या मास्तिजी पुरस्कार क्रम में आ ही नहीं पाते. और यही क्यों, प्रायः सभी मूर्धन्य साहित्यकार एक लंबे समय से कुछ नया नहीं लिख रहे हैं, और जिस दौर में, समय के जिस काल खंड में उन्होंने लेखन किया है, हमारी पुरस्कार चयन प्रक्रिया के लिए वह समय बहुत पहले गुजर चुका है. ऐसे में यदि हम पुराने नियम का ही आग्रह करते तो इन साहित्यकारों को उनके कृतित्व के लिए सम्मानित हो पाने का अवसर ही न आता.

▣ पहले ज्ञानपीठ पुरस्कार की राशि थी एक लाख रुपया. अब यह है डेढ़ लाख रुपया. इस राशि में परिवर्त्तन की वजह क्या है? यह राशि महज प्रतीक है या मुख्य वस्तु ही रकम है? दूसरे यह राशि अनुदान है, सहायता है या प्रोत्साहन है जो इसे महंगाई के साथ-साथ बढ़ा दिया गया, या यह इनाम है?

ज्ञानपीठ पुरस्कार देता है, सहायता नहीं. राशि में वृद्धि सिर्फ इसलिए की गयी कि हम पुरस्कार को मूल्य की दृष्टि से भी और महत्त्व की दृष्टि से भी विशिष्ट मानते हैं. राशि बढ़ाने का निर्णय लेते समय कुछ हद तक इसकी विशिष्टता के आर्थिक पक्ष को सम-सामयिक बनाने का विचार भी मन में था.

▣ पुरस्कार के लिए पैसा कहां से आता है? क्या आप दान इकट्ठा करते हैं (क्योंकि ज्ञानपीठ एक ट्रस्ट है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

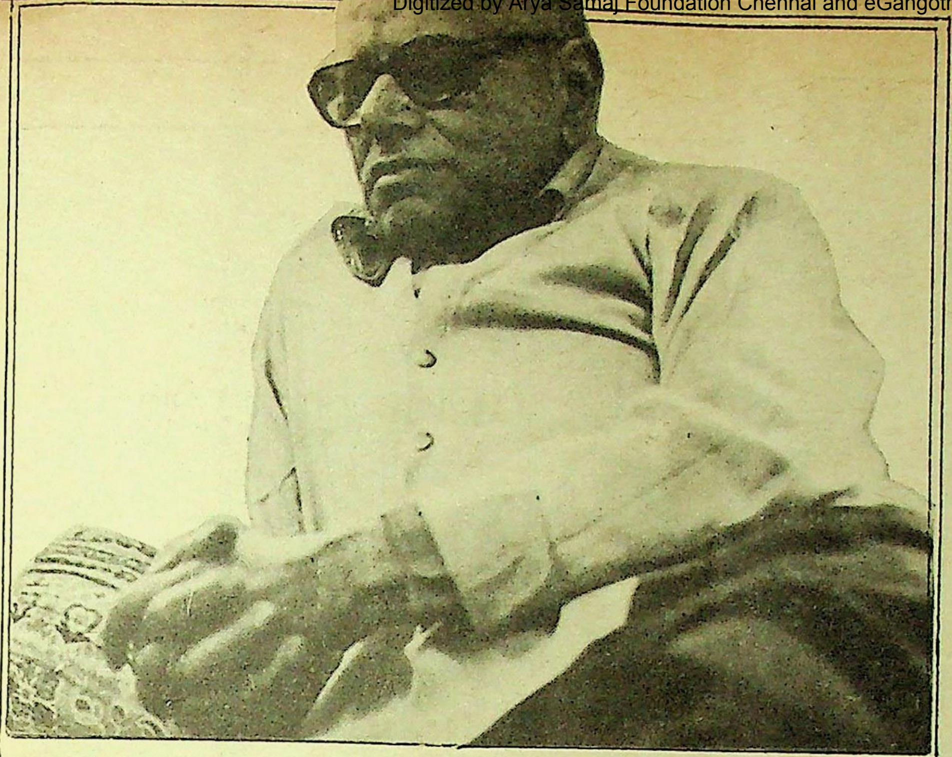

● लक्ष्मीचंद्र जैन : पुरस्कार का महत्व और मूल्य हर दृष्टि से विशिष्ट है. . .

या पुस्तकों की बिक्री से; या कोई फंड है?

पुस्तकों से इतनी आय! वहां तो घाटा होता है. दान का तो प्रश्न ही नहीं है. ज्ञानपीठ की जो पूंजी है, वही हमारी आय का मूल स्रोत है. इस पूंजी के निवेश से जो आय होती है, उसी में से पुरस्कार दिया जाता है.

▣ पुरस्कार योजना पर और पुरस्कार पर कुल कितना खर्च आता है?

हम डेढ़ लाख रुपये का पुरस्कार तो देते ही हैं, लगभग इतनी ही राशि उसकी प्रक्रिया पर भी खर्च होती है. लेखक को नकद राशि को अलावा एक कांस्य प्रतिमा-वाग्देवी की अनुकृति भी भेंट की जाती है. (जिसे प्रसिद्ध मूर्तिकार रामसतार बनाते हैं) और एक प्रशस्ति पत्र (जो अष्ट धातु का पट्ट होता है, जिसमें कलात्मक स्वस्तिक शुभ चिह्न आदि अंकित होते हैं) भी भेंट किया जाता है.

▣ भारतीय ज्ञानपीठ भारत की पंद्रहों मान्य भाषाओं में से एक पुस्तक चुनकर उन्हें पुरस्कृत करता है. ज्ञानपीठ की अपनी एक योजना भी है 'राष्ट्र-भारती ग्रंथमाला' जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं की पुस्तकें हिंदी में अनूदित करके प्रकाशित की जाती हैं. ज्ञानपीठ का दावा है कि वह भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठतम साहित्य को प्रकाशित करता है. पिछले उन्नीस पुरस्कारों में से सत्तरह पुरस्कार हिंदीतर भाषाओं को मिले, लेकिन उनमें से एक भी पुस्तक ऐसी नहीं थी जो पुरस्कृत होने से पूर्व ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई हो. तो कौन-सा दावा पूरा सच नहीं है? पुरस्कृत रचना अपनी भाषा की श्रेष्ठ पुस्तकें नहीं रहीं या ज्ञानपीठ श्रेष्ठतम साहित्य नहीं छापता रहा?

इसका सीधा-सीधा तो उत्तर कोई नहीं है. जो पुस्तकें हमने छापी हैं वे क्या अच्छी नहीं हैं? पुस्तक का चयन करते समय हम यह ध्यान नहीं रखते कि वह ज्ञानपीठ पुरस्कार के योग्य ही हो. और पुरस्कार देते समय यह ध्यान नहीं रखते कि वह कहां से प्रकाशित है. खांडेकरजी की पुस्तक 'ययाति' पुरस्कृत होने से पूर्व ही हिंदी में प्रकाशित हो चुकी थी. हमारे यहां से प्रकाशित अज्ञेयजी की पुस्तक 'कितनी नावों में कितनी बार' पुरस्कृत हो चुकी है. (यह पुस्तक लोकोदय ग्रंथमाला की है). दरअसल जो प्रस्ताव आते हैं, उन्हीं को ध्यान में रखकर पुरस्कार दिया जाता है. इधर हमने उर्दू की एक लेखिका कुर्तुल एन हैदर की पुस्तक 'निशांत के सहयात्री' इसी ग्रंथमाला के अंतर्गत प्रकाशित की है. बहुत संभव है यह नाम कभी पुरस्कारजयी कृतिकारों की सूची में सम्मिलित हो जाये. यह हिंदी प्रकाशन की श्रीवृद्धि का प्रमाण है कि अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियां एक ही जगह केंद्रित नहीं हैं. अच्छे प्रकाशकों की (और संभवतया अब सामान्य प्रकाशकों की भी)' दृष्टि ऐसे साहित्य पर रहती है.

▣ ज्ञानपीठ सर्जनात्मक या रचनात्मक साहित्य पर पुरस्कार देता है और इस श्रेणी में केवल कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास को ही मान्य समझता है. इनमें से भी कहानी और नाटक को अब तक पुरस्कार पाने का सौभाग्य नहीं मिला. तो क्या साहित्य की अन्य विधाओं में लिखा गया या लिखा जा रहा साहित्य रचनात्मक लेखन नहीं है? जैनेंद्रजी की एक पुस्तक 'समय और हम' (विचार प्रधान लेख) इसीलिए पुरस्कार के लिए विचारार्थ स्वीकृत नहीं की गयी.

विचार प्रधान लेखन भी रचनात्मक लेखन हो सकता है, अगर उसमें साहित्यकता है; शैली शिल्प है और आवश्यकतानुसार कल्पना प्रवण रचनाधर्मिता है. जैनेंद्रजी की जिस पुस्तक का तुमने जिक्र किया, उसमें लेखक की साहित्यिक सौष्ठव और रचनाशिल्प की दृष्टि नहीं विचार ही मुख्य था. प्रस्ताव पत्र तो बहुत आते हैं. प्रश्न यह है कि संबंधित भाषा परामर्श समिति किस कृति को प्रस्तावित करती है.

▣ ज्ञानपीठ अच्छे साहित्य को प्रकाशित करता है, पुरस्कृत करता है, मगर अपने समारोहों में राजनेताओं को प्राथमिकता देकर समारोह की गरिमा को कम कर लेता है, ऐसा आरोप भी प्रायः लगाया जाता रहा है. और इधर पिछले समारोह में तो ब्रिटेन की प्रधान मंत्री श्रीमती मार्गेट थैचर को निमंत्रित करने पर लेखकों की एक संस्था ने सुना है, कड़ा विरोध भी किया था?

ज्ञानपीठ समारोह अपनी गरिमा बनाये हुए है. इसी गरिमा को ध्यान में रखते हुए हम गणमान्य राजनेताओं को भी आमंत्रित करते हैं. और हर समारोह में राजनेता ही मुख्य अतिथि हों ऐसा भी नहीं है. हमारे तीन-चार समारोहों की अध्यक्षता प्रवर परिषद के ही अध्यक्षों ने की. तो एक में स्वनामधन्य महादेवीजी मुख्य अतिथि थीं, तो एक में कलाविद रुकमणि अरुंडेल. और जो विरोध की बात तुम कर रहे हो तो मेरी जानकारी में तो किसी संस्था का कोई विरोध नहीं था. जहां तक लेखकों का व्यक्तिगत प्रश्न है पिछले समारोह में तो हमारे पास लेखकों की ओर से बराबर यह आग्रह आते रहे कि उन्हें निमंत्रण पत्र नहीं मिला है, निमंत्रण पत्र भजें और सामान्य से कुछ अधिक संख्या में भेजें.

▣ एक कुतूहल शांत करना चाहता हूं. यदि आपको यह अधिकार दिया जाये कि अगले पांच पुरस्कारों के लिए व्यक्तियों का चयन केवल आप करें और अभी, तो वे व्यक्ति कौन होंगे?

यह तो मुश्किल है. ऐसा तो सोचा ही नहीं कभी. ज्ञानपीठ पुरस्कार के साथ इस प्रकार का मजाक मैं करूंगा! मुझे ज्ञानपीठ की प्रवर परिषद के गठन और उसके सदस्यों की सदाशयता तथा निष्पक्षता पर पूरा विश्वास है. आप चाहें तो प्रत्येक सदस्य से अलग-अलग इस प्रकार का प्रश्न कर देखें. उत्तर मैं भी जानना चाहूंगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसा होता है यह मोड़ जो जीवन-धारा की दिशा ही बदलकर रख देता है? . . . . और कैसी होती है नारी की वह दिव्य शक्ति जो पुरुष को निराशा के अंधेरे से उबार लेती है. . . . ? आखिर वह कौन-सा मोड़ है जिस पर आकर आदमी अपने सार्थक होने का एहसास पाता है? क्या शक्ति पाने के लिए किसी सहारे की जरूरत होती है?

बसेरा

अखिलन

मद्रास शहर की प्रसिद्धि चरम सीमा पर है. उसे जरा-सा जुकाम हो या सिर-दर्द, पलक झपकते यह खबर एक सनसनीखेज समाचार के रूप में सारे देश में फैल जाती है. यह सच है कि मद्रास महानगर के गली-कूचे, उसकी झोंपड़ियों और फुटपाथों आदि को निरंतर यह शोहरत नहीं मिलती, किंतु जब मिलती है, तो इनके भी भाग्य चमक उठते हैं.

यह बात सबको मालूम है कि बरसात न होने से सारे शहर में पानी का अभाव है. नल बूंद-बूंद आंसू बहा रहे हैं. दूधवाले बेचारे इसलिए परेशान हैं कि उन्हें दूध में मिलाने के लिए पानी नहीं मिल रहा है, ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण खबरें छापकर अखबारवालों ने उनके दुख-दर्द पर आंसू बहाये, किंतु शहर में पानी की तंगी है, इस समाचार से बेखबर धनी-मानी प्रतिष्ठित लोग अखबारों के माध्यम से ही यह जान सके. कल तक अखबार अकाल और दुर्भिक्ष का राग अलापते रहे और आज लोगों को समाचार दे रहे हैं बरसात के आगमन का.

आंधी, वर्षा, बिजली और मेघों का गर्जन-तर्जन देखकर अखबारवाले फूले न समाये. उस दिन सांध्य-संस्करण और प्रभात-संस्करण, दोनों के मुखपृष्ठ वर्षा की खबरों से रंग उठे. पिछले दिन रात में आकाश विश्राम कर रहा था, परंतु अगले दिन दोपहर से उसने विकराल रूप धारण कर लिया. बिजली कड़क उठी.

पिछली पीढ़ी के लोगों में अपने-अपने घर के सामने चबूतरा बनाने की आदत थी. लेकिन आज की शहरी सभ्यता में ऊंची-ऊंची चहारदीवारी से घिरे मकान और बंगलों का एक कंपाउंड चाहिए. चाहे वर्षा हो, बिजली कड़के या बादल गरजे, कहीं किसी पथिक को बसेरा न मिलेगा. ठहरने को वहां चबूतरा कहां. वहां तो मिलता है घिरा कंपाउंड, उसके भीतर भौंकते कुत्ते और पहरेदार.

मइलापुर की ओर जानेवालों में वेलैसामी भी था. दिन भर का समय इधर-उधर बिताकर रात में वह पेड़ के नीचे फुटपाथ पर सोता था, लेकिन अब फुटपाथ जलमग्न था. अब यदि रात को लेटने के लिए कहीं जगह न मिले तो कम से कम उकड़ूं बैठने के लिए तो जगह चाहिए ही.

वेलैसामी बीस वर्ष का होगा. उसे रामनाथपुरम जिले से यहां आये कुल दो महीने हुए थे. वह मजदूर था, परिश्रम से जी चुरानेवालों में न था. जो भी काम हो, करने को तैयार रहता था. कोतवाल सावड़ी में माल ढोना, बोझ उठाना, लकड़ी काटना, मुसाफिरों के बोरी-बिस्तर ढोना आदि, कुलीगिरी और मजदूरी से अपना पेट पालता था. उसके मंडी से मइलापुर आने का एक कारण था. बोझे की गाड़ी खींचनेवाला करुप्पन मइलापुर में कूवम नदी के किनारे एक गंदी बस्ती में रहता था. वह एक दिन करुप्पन के साथ वहां जाकर भोजन-छाजन कर आया था. यद्यपि वह जानता था कि करुप्पन से उसकी मामूली दोस्ती है, फिर भी उसे विश्वास था कि वहां पर वह इनकार न करेगा. रात गुजारने को टट्टी-लगा वह चबूतरा उसके लिए पर्याप्त है, यही सोचकर वह निकल पड़ा था. मंडी से मइलापुर बस में आने पर उसे तीस पैसे टिकट के देने पड़ते थे. उसके पास कुल नब्बे पैसों की पूंजी थी. अच्छे-खासे दिनों में चालीस लातें खाने के बाद छटांक भर दूध देनेवाली दुधारू गाय के समान उसका धंधा भी बड़ा अजीब था. तिस पर तीन दिनों से लगातार बरसात की झड़ी के कारण वह और भी निढाल हो गया था.

रायपेट्टै रोड से होकर वह मइलापुर तक आया और वहां से उस गंदी बस्ती का पता लगाकर पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा. वह बरसते पानी में चार मील पैदल चलकर आया था. सामने चाय की एक छोटी-सी दूकान थी. उसमें बैठने की जगह बिल्कुल न थी, फिर भी वह ठिठक गया और खड़े-खड़े ही दस पैसेवाले तीन 'बन' और दो केले लेकर उसने खाये. कुल चालीस पैसे हुए. मगर सर्द हवा के कारण शरीर बुरी तरह कांप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था. एक सिंगल चाय के लिए तरस उठा. तत्काल उसने दूकानदार की ओर दस पैसे बढ़ाये और गरम-गरम चाय की चुस्की लेने लगा. चाय की गरमी ने उसे बेहद तसल्ली पहुंचायी.

गंदी बस्ती के मोड़ पर आते ही उसका दिल धक् से रह गया. वहां न तो कोई झोंपड़ी थी और न कोई आदमी. वह कीचड़ और गंदे पानी से ढ़की पगडंडी पर चलने लगा. कुछ दूर आगे बढ़ने पर देखा, दो-तीन झोंपड़ियां धराशायी हो गयी थीं. मन में एकदम निराशा उभर आयी. विचार करने लगा, वह इतनी दूर कैसे चला आया? फिर भी लैंप पोस्ट को लक्ष्य बनाकर उसने करुप्पन की झोंपड़ी पहचान ली. चबूतरे की टाटी

गिरकर कीचड़ में लुंठित पड़ी थी. भीतर ढिबरी की टिमटिमाती रोशनी दरवाजे की दरार से झलक पड़ी. रह-रहकर कड़कती बिजली की चमक में झोंपड़ी के भीतर का दृश्य स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था. बाहर खड़े-खड़े उसने ध्यान से देखा, छत से टपकते पानी से फर्श को बचाने के लिए इधर-उधर कई मटके रखे हुए थे. उसके बावजूद सारा फर्श कीचड़ में लथपथ था. एक कोने में दो आकृतियां एक दूसरे से लिपटी सिकुड़ी-सिमटी दिखलाई पड़ीं, दोनों ही औरतें थीं. एक थी करुप्पन की बूढ़ी मां, दूसरी उसकी बेटी. करुप्पन की पत्नी मर चुकी है, यह उसे मालूम था.

बाहर खड़ा वेलैसामी सोच रहा था, दस-पंद्रह दिन पहले जब वह आया था, तब उसके लिए वहां ठहरना मुश्किल हो गया था, क्योंकि झोंपड़ी के पीछे एकत्र 'कूवम' के कीचड़ को भैंसे और सूअर और गंदा कर रहे थे. बदबू के मारे दम घुटा जा रहा था. दोपहर का समय था, फिर भी मच्छरों ने उसे चैन न लेने दिया. लेकिन आज बरसाती रात में कहीं जगह न मिलने के कारण वह यह सब जानते हुए भी यहां चला आया था. झोंपड़ी में करुप्पन का पता नहीं था. खुद उसमें रहनेवालों को सिर छुपाने की जगह न थी. उसने सोचा, ऐसे छप्पर के नीचे बसेरा लेने की अपेक्षा खुला मैदान बेहतर है. ओह, इतनी दूर पैदल चलकर बेकार ही यहां चला आया वह. अपने आपको धिक्कारता हुआ वह पीछे की ओर मुड़ने ही वाला था कि उसी समय एक अप्रत्याशित घटना घटी.

"दादी मां! दादी मां! बप्पा आ गया!" कहती हुई वह लड़की दौड़ी आयी और उसने दरवाजा खोल दिया. सामने खड़े व्यक्ति की ओर आंख उठाये बिना वह फट पड़ी, "आखिर रास्ता मालूम हो गया." उसकी आवाज में गुस्सा था और अधीरता थी.

वेलैसामी चौंक पड़ा. बोला, "मैं तो . . . . ."

आगंतुक के मुंह से निकले दो शब्दों से ही वह युवती पहचान गयी कि आने वाला कौन है. उसकी घबराहट कुछ कम हुई, मगर चेहरे की उदासी न मिटी.

"मैं तो उन्हीं की तलाश में आया हूं." वेलैसामी ने कहा, "वह अभी तक घर नहीं लौटे?"

"घर? घर से उनको क्या लेना-देना है?" झुंझलाकर वह बोली, "यहां मुंह दिखाये दो दिन हो गये. उन्हें मालूम है कि दादी बीमार है, बुखार में पड़ी है. हूं, कहीं चोरी की शराब पीकर लोट रहे होंगे. . ."

उसकी बातों पर विश्वास करना वेलैसामी के लिए कठिन जान पड़ रहा था क्योंकि वह पूरा मद्रासी न बन पाया था. उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि ऐसी मूसलाधार वर्षा में बिना मां की बेटी और बूढ़ी बीमार मां को भला कोई भूल सकता है, छिः, वह भी कोई मनुष्य है. उलटे पांव लौटने का उसका मन हुआ, मगर पांव न उठे. उन्हें वैसी असहाय स्थिति में छोड़कर खिसक जाना उसे अच्छा न लगा. मगर यह भी समझ न आया कि क्या करे, क्योंकि वह स्वयं बे-घरबार था.

चणबकम ने वेलैसामी से झोंपड़ी के अंदर आने को कहा, तो वह अंदर गया. पांव रखने की जगह न थी. सारी फर्श कीचड़ से भरी थी. जिस पटरे पर बुढ़िया बैठी थी, उसे उठाकर चणबकम ने उसके लिए रख दिया और उससे बैठने को कहा, मगर वह बैठा नहीं. छत का टपकता पानी उसके सिर को भिगो रहा था. इस बीच चणबकम ने अपनी दादी मां को यह समझाने की कोशिश की कि वह कौन है और क्यों आया है.

एक तो बुढ़ापा, फिर दरिद्रता और तिस पर रोगग्रस्त बुढ़िया को न तो कुछ दिखलाई पड़ता था और न सुनाई. उकड़ूं बैठी उस बुढ़िया ने उसे किसी बीमार मुर्गी की याद दिलायी.

वेलैसामी ने पूछा, "दूसरे लोगों की तरह आप लोग भी शरण के लिए और कहीं क्यों नहीं चले गये?"

"दादी चल नहीं सकती. इसे अकेला छोड़कर मैं कैसे जा सकती थी!"

"अगर इस तरह बैठे भीगती रहोगी, तो दोनों सर्दी से ठिठुरकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1975 के भारतीय ज्ञानपीठ के साहित्य-पुरस्कार से सम्मानित तमिल कथाकार पे. वें. अखिलंदम, 'अखिलन' नाम से सुपरिचित हैं. 'चित्तरप्पावै' (चित्रित प्रतिमा) इनका बहुचर्चित उपन्यास है जिसे 1959-1968 के बीच प्रकाशित सर्जनात्मक साहित्य में सर्वश्रेष्ठ घोषित करते यह पुरस्कार प्रदान किया गया.

मर जाओगी, समझी."

"लेकिन हम जायें कहां?"

'जायें कहां!' जैसे चाबुक की तीखी मार से वह तिलमिला उठा हो, सैकड़ों-हजारों शानदार बंगलों, ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं से भरे तमिलनाडु की राजधानी में रहते हुए भी उसने यह प्रश्न कैसे किया? प्रश्न के जवाब से बचने के विचार से उसने पूछा, "आप लोगों ने कुछ खाया?"

उत्तर मिला, "हां."

लेकिन चूल्हे ने यह साफ बतला दिया कि वह झूठ बोल रही है. वहां भी पानी जमा था. टहनियों की सिरकियां गीली पड़ी थीं. इधर-उधर टपकते पानी के लिए मटके रखे थे. पर भर सोचने के बाद वह बोला, "तब तो आप दोनों मेरे साथ चलिए. कहीं चलकर बसेरा ले लें."

चणबकम सोच में पड़ गयी. उसके मन में आया कि वह उसी क्षण उसके साथ निकल जाये. मगर साथ ही यह भी विचार उठा कि उसके साथ जाने से इनकार कर दे. वह द्विविधा में पड़ गयी. दादी की हालत देखते हुए इस भयंकर बरसाती रात में उसके साथ अकेले रहने में उसे डर लग रहा था, लेकिन एक अपरिचित युवक के साथ रात के वक्त निकलने का उसे साहस भी न हो रहा था.

"चिंता किस बात की? यहां रहोगी, तो दोनों ठंड में मर जाओगी." उसे चुप देखकर वेलैसामी ने कहा.

"दादी चल नहीं सकती."

"मैं संभाल लूंगा." और उसने बुढ़िया की बांह पकड़कर धीरे से उसे उठाया. बुढ़िया का शरीर तवे सा जल रहा था. चणबकम का मन उस अनजान युवक के साथ बाहर निकलने में घबरा रहा था, तो भी उसे लगा, भगवान ने समय पर उसे सहायता के लिए भेजा है.

उसे युवक पर विश्वास करना पड़ा. उसकी स्नेहपूर्ण बातें और आवाज की दृढ़ता ने उसकी आशंका और भय को दूर कर दिया. झोंपड़ी में ऐसी कोई वस्तु न थी, जिसे साथ ले जाने की जरूरत होती. ढिबरी बुझाकर उसने दरवाजा बंद कर दिया.

वेलैसामी हाथों का सहारा देकर बुढ़िया को बाहर लाया. तीनों चलने लगे. वे बिल्कुल भीग गये. इससे अधिक भला बरसात उनका क्या बिगाड़ सकेगी. चाय की दूकानवाला अपनी दूकान बंद कर रहा था. वेलैसामी ने उसे आवाज दी और चार 'बन' बांध देने को कहा. अब उसे तसल्ली देने के लिए उसकी जेब में केवल पांच पैसे बच रहे थे. दूकान छोटी-सी थी, जो दूकान के मालिक नायर और उसके नौकर के लिए भी काफी न थी, इसलिए वेलैसामी ने उससे पूछा, "रात भर बसेरा लेने को जगह कहां मिलेगी?"

नायर ने कहा, "सांतोम में समुद्र के किनारेवाले रोड पर कारपोरेशन का एक स्कूल है. वहां जाकर देखो. सुना है, उसे खोल दिया गया है."

"वह कहां है?"

"मैं जानती हूं. . .आइये!" चणबकम ने कहा और आगे बढ़ी. आधा मील की दूरी तय करने के बाद मालूम हुआ कि वहां जगह नहीं है. जो लोग वहां से निराश होकर लौट रहे थे, उन्होंने बताया कि वहां भारी भीड़ लगी है और जगह के लिए लोगों में मार-पीट चल रही है.

सुनकर वेलैसामी को गुस्सा भी आया और रोना भी. बुढ़िया के लिए एक कदम भी आगे रखना दूभर जान पड़ रहा था. वह रोने लगी थी. लैंप पोस्ट की रोशनी में वेलैसामी ने देखा, चणबकम भी चुपचाप आंसू बहा रही है. तीनों चकित-भ्रमित खड़े रहे. मिनट पर मिनट गुजरते गये.

इतनी रात बीत जाने पर उस ओर से कई मोटरें गुजरीं. प्राणहीन, चेतनाशून्य इन यंत्रों के लिए भी धूप और वर्षा से बचने के लिए शेड थे. बड़े यत्न से इनका खयाल किया जाता है. मगर जीवित प्राणियों की चिंता किसे है? वे भाड़ में जायें, किसी को क्या पड़ी है!

तीनों उल्टे पांव लौट पड़े. बायीं ओर फुटपाथ से लगी एक लंबी चहारदीवारी थी. उस चहारदीवारी के भीतर कोई मकान, बंगला या इमारत न दीख पड़ी. वेलैसामी ने उचककर देखा, चहारदीवारी से सटे दो-तीन टीन के शेड थे, उन्हें छोड़कर सारा मैदान सूना पड़ा था. उन शेड को देखते ही वेलैसामी को आशा बंधी. उसने ध्यान से देखा, एक शेड में कुछ लोग लेटे थे, दूसरे में भेड़ बकरियां और गायें खड़ी थीं. शायद उन्होंने वर्षा से बचने के लिए वहां बसेरा लिया था और तीसरे शेड में अकेले एक गधा खड़ा था.

ओह! आखिर भगवान ने रास्ता दिखला ही दिया. वेलैसामी फूल उठा. वह सोचने लगा, इस लंबी चाहरदीवारी में कहीं न कहीं फाटक अवश्य होगा. मगर कौन जाने, वह खुला है या बंद. उसने सोचा, दीवार लांघकर भीतर जाना ही एकमात्र उपाय है. पहरेदार होगा भी, तो इस बरसाती रात में जागता न होगा. और यदि जागता होगा और उसने मना किया तो भी उसके हाथ-पांव पड़कर गिड़गिड़ा लेगा. इसके सिवा दूसरा चारा ही क्या है.

उसके विचार जानने पर चणबकम कांप उठी. उसका चेहरा फक पड़ गया. उसने उसे मना किया, "न. . .न, मेरा कहना मान लो. इस चहारदीवारी के अंदर हमें नहीं जाना है. . .!"

"क्यों नहीं जाना है?" वेलैसामी क्रोध में चिल्ला उठा.

"मेरा कहना मान लो. वहां मत चलो. . .!"

"तुम्हारी दादी अब मर रही है. अब मुझमें दम नहीं है. अगर यहां नहीं जाना है, तो सीधा समुद्र मार्ग दिखा दो. . .चलकर तीनों डूब मरें."

चणबकम ने कुछ कहने के लिए मुंह खोला, लेकिन उसके क्रोध ने उसे कुछ चुप कर दिया. वह बाहर का आदमी है, यहां की बातों से अपरिचित है, इसलिए सच्चाई बतलाकर वह उसे रोकने के लिए विह्वल हो उठी. मगर उसके गुस्से ने चणबकम को इतना डरा दिया कि वह चुप रही. उसने सोचा यदि अब वह कुछ कहेगी, तो वह उनको छोड़-कर चला भी जा सकता है. ऐसी भयानक बरसाती रात में चणबकम उसका साथ छोड़ने को तैयार न थी.

बुढ़िया को नीचे बैठाकर उसने पहले चणबकम को दीवार पर चढ़ा दिया. उसके मजबूत हाथों में चणबकम का भय कुछ कम हुआ. फिर चणबकम की मदद से बुढ़िया को दीवार के उस पार कर दिया और अंत में उसने स्वयं भी दीवार पार की.

गधा जिस शेड में था, उनके पहुंचते ही वह वहां से खिसक गया. वेलैसामी ने बुढ़िया को जमीन पर लिटा दिया. बीमारी और कमजोरी और थकावट के कारण बुढ़िया का बहुत बुरा हाल था. जमीन पर इधर-उधर ढेर सारी राख बिखरी पड़ी थी. वेलैसामी ने राख को पांवों से एक तरफ हटा दिया. चणबकम एक कोने में जाकर, अपने भीगे वस्त्रों निचोड़कर बालों को पोंछने लगी. फिर उसने दादी के शरीर पर साड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम पर पड़े गीले चिथड़े को निचोड़ा. वेलैसामी ने भी अपने शरीर को पोंछ लिया.

शेड एक छोटा-सा, लंबा और चौकोर था. सीमेंट के एक चबूतरे ने आधे शेड को घेर रखा था. जिसका एक भाग वर्षा से गीला था. बाकी जगह तीन आदमियों के लिए काफी न थी. फिर भी उस समय उनके लिए वह स्वर्ग था. वेलैसामी ने धोती की गांठ से चारों बन निकालकर उनकी ओर बढ़ाये. वर्षा में वे गीले हो चुके थे. बुढ़िया बेहोश थी, फिर भी मुंह में बन के टुकड़े पड़ते ही चबाने लगी. पूरा एक बन और दूसरे का आधे से ज्यादा भाग वह निगल गयी.

"तुम नहीं लोगे?" चणबकम ने एक बन उसकी ओर बढ़ाया.

"मैंने पेट भर खा लिया है. अब एक टुकड़ा भी नहीं. चाहिए." भूखा होते हुए भी वह जान-बूझकर झूठ बोला. उसके पेट में चार तो क्या, छह बन की भी गुंजाइश थी. चणबकम को खाते देखकर उसका दिल हलका हुआ. खाने में अपने प्रिय जन को खिलाने में जो अपूर्व आनंद मिलता है, उसे केवल वे लोग ही पूरी तरह समझ सकते हैं, जिन्हें खाना पेट भर नहीं मिलता. बिजली की बत्तियों से सुशोभित महानगर की दूर खड़ी शानदार इमारतों को देखकर वेलैसामी पुलकित-सा हो उठा.

"मद्रास आते ही मैंने क्या सोचा, जानती हो?"

"क्या सोचा?"

"सोचा था, मंजिल-पर-मंजिल. . .यह शहर इतना ऊंचा होता जा रहा है, सड़कों पर मोटरों की इतनी कतारें बनी रहती हैं, बाजारों में ऐसी-ऐसी चीजें भरी पड़ी हैं कि आंखें चौंधिया जाती हैं. ढेर-के-ढेर माल भरे पड़े हैं हर कहीं इस महानगरी में. फिर इस कुबेरपुरी में मुझे कोई काम-धंधा क्यों न मिलेगा? पेट को अन्न और सिर छिपाने को एक छाया तो मिलनी ही चाहिए."

"हां. . .कुबेरपुरी है यह. यहां कोई एक समय का भोजन पंद्रह रुपये में करता है, कोई एक गज कपड़ा ज्यादा कीमत पर खरीदता है. कुबेरपुरी को तो तुमने देखा है. . .मगर. . ."

वेलैसामी ने टोका, "दूसरी पुरी को भी मैंने देखा लिया है."

"तुमने ठीक तरह से नहीं देखा. हमारी झोंपड़ियों की राजपुरी को देखना है, तो तुम्हें कूवम नदी के किनारों का चक्कर लगाना होगा. . . और इधर-उधर जो नयी-नयी बस्तियां जन्म ले रही हैं, उन्हें भी देखना होगा."

"ओह, बाबा, मैं तो तंग आ गया. जब से आया, मेरा कचूमर निकल गया. कुत्ते-सा मारा-मारा फिरा मैं. . .!" वेलैसामी आगे न बोल सका, उसका गला भर आया.

"पैसेवालों के लिए यह इंद्रपुरी है. मगर हम जैसों के लिए तो यह . . ." और चणबकम ने होंठों तक आये आगे के शब्दों को पी लिया. एकाएक मौन हो गयी. उसकी इस चुप्पी ने वेलैसामी की उत्सुकता बढ़ा दी.

"कहो न! चुप क्यों हो गयीं?"

"कहने की बात नहीं है वह!"

"नहीं, मैं छोड़ूंगा नहीं. . .कह दो!"

"न. . .न!"

"बतला दो, नहीं तो मुझे गुस्सा आ जायेगा. मेरा मन दुखी हो जायेगा."

मजबूर होकर रुक-रुककर वह बोली, "हम लोग जहां बैठे हैं, यह जगह तो. . ."

"हां, बोलो, हम कहां पर हैं?"

वह बोली नहीं. हिचकिचाती रही. वेलैसामी ने फिर पूछा, "बतलाओ न, हम कहां पर हैं?"

"अब तक समझ नहीं सके?"

"समझा होता, तो क्यों पूछता?"

"हम. . .श्मशान भूमि में हैं."

"क्या कहा?"

"हां, जिस शेड में लाशों को जलाते हैं, वहीं पर हैं. उसी स्थान पर बैठे हैं हम. तुमने जिस राख की ढेरी को पांवों से परे हटाया, वह और कुछ नहीं, लाशों की अस्थि-भस्म है."

सुनकर वेलैसामी को मानो कोई सांघातिक चोट लगी. अब उसकी समझ में आया कि चणबकम उसे यहां आने से क्यों रोक रही थी. फिर भी उसने अपनी विह्वलता और भय को प्रकट न होने दिया. जोर का ठहाका मारकर बोला, "अच्छा, तब तो कुबेरपुरी के कुबेर भी आखिर में जहां आते हैं, हम वहीं पर आ गये हैं. है न यही बात!"

"लेकिन तुम्हें डर नहीं लगता?" चणबकम ने कांपती आवाज में पूछा.

"डर? किस बात का डर? जेब भरी रहे, तो डर रहता है. मेरे पास धरा ही क्या है डरने को?"

"गांव में कोई . . .?

"घर-बार, मां-बाप, कोई नहीं! इसीलिए भाग आया."

"भाग आये. . .क्यों?"

"और करता भी क्या? भूमि ऊसर है, खेती की गुंजाइश नहीं. दूसरा कोई काम-धंधा नहीं. धोखा-धड़ी करके जीना आता नहीं. शहर की चमक-दमक के धोखे में यहां चला आया. लेकिन यहां भी पेट पालने का कोई चारा नहीं दीखता! वेलैसामी का गला भर आया. अभी कुछ क्षण पहले ही तो उसने कहा था कि उसे कोई भय नहीं, वही अब अपनी जिंदगी के भविष्य पर विचार कर कांप उठा. उमड़ते आंसुओं को रोकना उसके बस की बात नहीं रही. सजल आंखों से बोला, "अब मैं कोन-सा मुंह लेकर गांव लौटूं? वहां जाकर भी क्या करूंगा?"

"चिंता न करो. जवान आदमी को इतना निराश नहीं होना चाहिए." चणबकम उसे दिलासा देती उसके निकट खिसक आयी. बिजली की चमक में उसका गोल मुखड़ा उसकी ओर लगी मंद-भरी दृष्टि और उसकी आंखों को उसने स्पष्ट देख लिया. चणबकम का रंग गोरा नहीं, काला है, लेकिन उसका मुखड़ा कितना लुभावना और आंखें कितनी सुंदर हैं.

एक युवती से इस तरह दिल खोलकर सहज भाव से बातें करना वेलैसामी के लिए नया अनुभव था. गांव की स्त्रियां छेड़-छाड़ करतीं, मजाक करती रहतीं, मगर उनसे उसकी इतनी निकटता न थी.

"जब हम लोग यहां अपना पेट पाल लेते हैं तो तुम्हें कोई काम-धंधा क्यों न मिलेगा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोध...
जिससे आपको अच्छी तन्दुरुस्ती, स्वास्थ्यलाभ तथा दूसरा बच्चा आने से पहले कुछ समय मिल सके

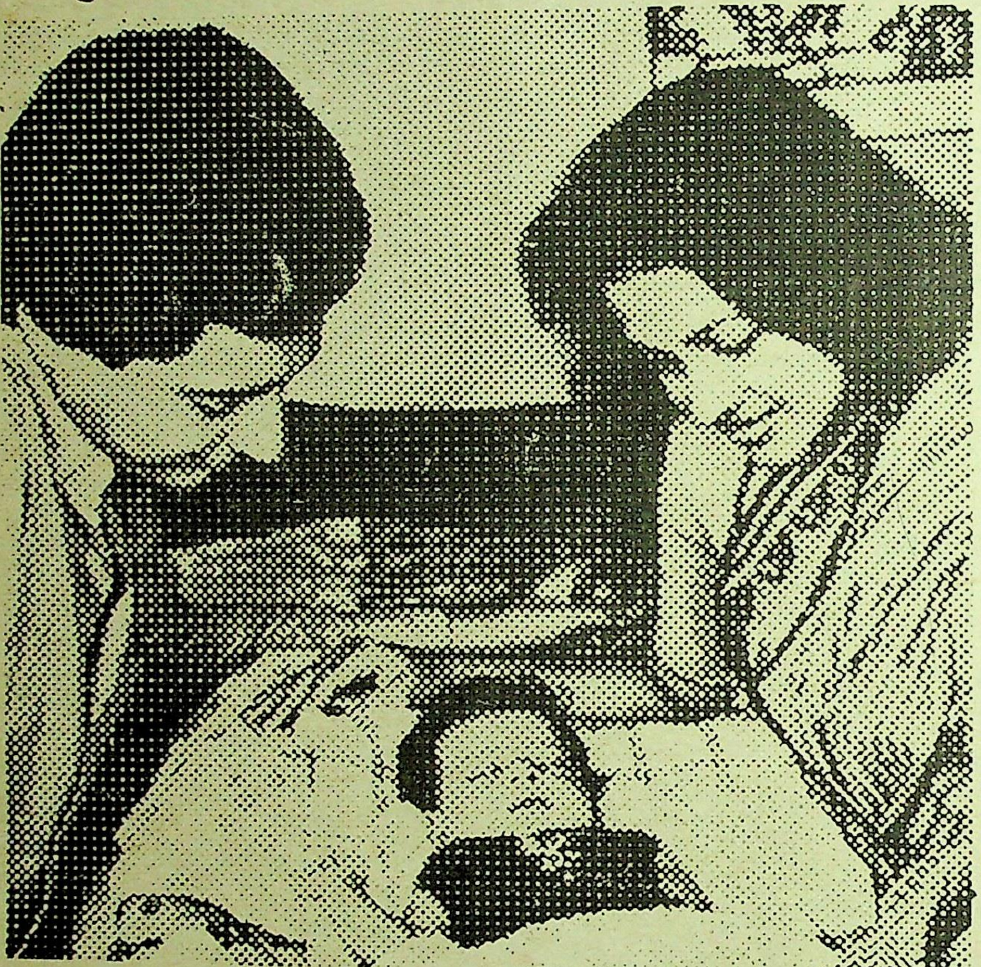

पहले बच्चे के जन्म के बाद दूसरे बच्चे के जन्म के लिए आपको समय का काफी अन्तर रखना चाहिए। और इसमें निरोध आपकी सहायता करता है ताकि आप अगला कदम सोच समझ कर उठा सकें।

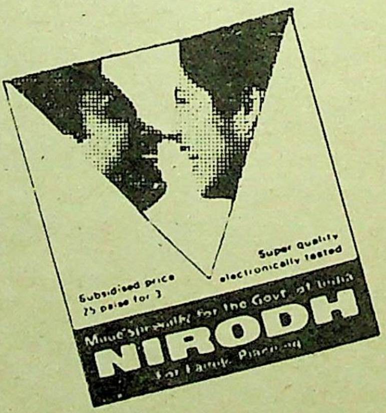

सुखी और निश्चिन्त वैवाहिक जीवन के लिए—

निरोध का प्रयोग कीजिये

वितरक : ब्रुक बॉण्ड, लिपटन, हिन्दुस्तान लीवर, आई.टी.सी., टाटा ऑयल मिल्स, यूनियन कारबाइड, आईडीपीएल, स्मिथ स्टैनिस्ट्रीट, इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और आरामन मैच इण्डस्ट्रीज़

davp 84/43

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह भी कोई काम-धंधा है?" वेलैसामी क्रोध में उबल पड़ा, "जी करता है, जिसने मुझे जन्म दिया, उसका और तुम्हारे बाप का... दोनों का गला घोट दूं. जिनके पास खाने को कुछ नहीं, पास में काम-धंधा नहीं, उन नालायकों को बाप बनने का क्या हक है? रहा न गया, तो बाप बन गये. बोलो, अब तुम्हारा बाप कहां गुम हो गया?"

अपने बाप की निंदा उसे पसंद न आयी, फिर भी उसने महसूस किया कि उसकी भर्त्सना करने का उसे हक है. वह अंदर-ही-अंदर घुट रही है.

"अच्छा, काफी समय हो गया...नींद आती हो तो लेट जाओ. आधी रात को तुम इस तरह की निराशा भरी बातें करोगे, तो मुझे रोना आ जायेगा...!"

"अच्छा, तुम निश्चिंत होकर सो जाओ." वेलैसामी मुस्कराया.

उन दोनों के बीच में बुढ़िया निश्चेष्ट पड़ी थी. वेलैसामी को लगा कि उसे आज नींद न आयेगी. शरीर थकावट से चूर-चूर हो रहा था. फिर भी दिल में विश्वास और उल्लास की भावना उमड़ रही थी. एक अनजान अपरिचित युवती उसके लिए आंसू बहा रही है...यह याद आते ही वह मन-ही-मन हंस पड़ा.

चणबकम के लेटने के थोड़ी ही देर बाद वह भी जरा हटकर निढाल हो गया. अधिक दूर हटने की गुंजाइश न थी. एक लाश को जलाने के लिए बना वह तंग शेड था. इसके सिवा बरसात की बौछारों ने भी उसे अधिक न हटने दिया. चणबकम अपनी दादी के गले में हाथ डालकर सो रही थी. उसने भी आंखें बंद कर लीं.

आकाश थोड़ी देर शांत रहता, फिर उमड़-घुमड़कर बरसने लगता. वह आंख-मिचौनी का खेल दिखा रहा था. टीन का शेड होने के कारण बूंदों का टपाटप करना जोरों से प्रतिध्वनित हो रहा था. सांतोम का समुद्री किनारा अधिक दूर न था. गरजते बादलों के साथ लहरें ताल दे रही थीं. गीली हवा में सड़ी लाशों की दुर्गंध घुल-मिलकर चारों ओर फैल रही थीं. नींद आंखों में उतरती भी कहां से.

वेलैसामी का मन बेहद परेशान था, उसे लगा, वह अप्रत्याशित रूप से एक अजीब चक्कर में आ फंसा है. उसके भरोसे पर दो स्त्रियां निश्चिंत सो रही हैं. इस खयाल ने उसके पुरुषार्थ को जाग्रत कर दिया. इस समय वह अपने को अकिंचन, बेकार या निरर्थक नहीं मान रहा था. सोच रहा था, वह जवान मर्द है. मेहनत-मजदूरी करके अपना ही नहीं, अपने आश्रय में आये लोगों का भी भरण-पोषण कर सकता है. यह विश्वास, यह साहस जिसने जगा दिया था, उसकी ओर वह लपक निहारता आकर्षक मुखड़ा, अल्हड़ जवानी, निखार पर आये अंग और स्नेह और ममता से भरा दिल...उस श्मशान भूमि में जिस चबूतरे पर लाशों को जलाते हैं, उस चबूतरे पर वह ऐसी निश्चिंत पड़ी सो रही थी, मानो मखमल की सेज पर सुंदर नींद का आनंद ले रही हो.

वेलैसामी के अधरों पर पर एक अनजान मुस्कराहट फैल गयी. उसका थका शरीर धीरे-धीरे नींद के आलिंगन में समा गया.

तीसरा या चौथा पहर रहा होगा, एकाएक टीन के शेड पर जैसे पत्थरों की बौछार होने लगी. टपा-टप की आवाजें होने लगीं. ओह, ओलों की वर्षा. बिजली की ऐसी चमक उठी, मानो सारा मैदान धू-धूकर जल उठा हो आंखों में चकाचौंध और दिल दहला देने वाला गर्जन-तर्जन...सारी धरती और आकाश कांप उठा. चणबकम हड़बड़ाकर उठ बैठी और दादी को हिलाने लगी. उसे जोर-जोर से हिलाने लगी. दादी का शरीर अकड़ गया था. चणबकम चीखती हुई वेलैसामी के पास आयी. उसका हाथ पकड़ लिया. फिर भी सारा शरीर बुरी तरह कांप रहा था. वेलैसामी की नींद उचट गयी. चणबकम की आंखें उसके मुख पर टिकी थीं. लगा, सारी दुनिया का भय उसकी काली-काली पुतलियों में समा गया है.

"ओह...मुझे डर लगता है...! सुनो, मुझे डर लगता है!" वह फफक पड़ी, "उठो, हम यहां से और कहीं चलें...नहीं...नहीं, यहां हम नहीं रहेंगे." वह गिड़गिड़ायी.

वेलैसामी ने उसे धीरे-से बांहों में भरकर अपनी गोद में लिटा लिया. चणबकम ने प्रतिरोध न किया. शीत की ठंड और मृत्यु के भय से त्रस्त उस अबला को उसने अपनी सुपुष्ट छाती से चिपका लिया.

"डरो मत...! मैं पास हूं...! डर किस बात का...?" वेलैसामी उसके कानों में रह-रहकर फुसफुसाता रहा. उस श्मशान की गोद में, मृत्यु देवता की भूमि में, मृत शरीरों की राख की ढेरियों पर वे दोनों आत्म-विस्मृत गहरे आलिंगनबद्ध पड़े थे.

पानी बरसता रहा. बिजली चमकती रही. मेघ गरजते रहे. सर्द हवा चलती रही. सागर हिलोरें लेता रहा. किंतु चणबकम का सारा डर न जाने कहां चला गया. झट अपना चेहरा दूसरी ओर फिराकर अपने मोती-से दांत दिखाती वह किलक पड़ी. उस अंधकार के बीच चार आंखों में नयी चमक कौंध गयी. चणबकम ने अपने कोमल हाथों से उसे अपनी ओर झुका लिया. उन हाथों के मधुर स्पर्श से वेलैसामी के अंदर की झिझक दूर हो गयी.

"ऐसे ही...इसी स्थान पर हम दोनों साथ मर जायें तो कितना अच्छा हो...!" मीठी, चहकती आवाज में चणबकम बोली. आगे वह कुछ न बोल सकी. उसके अधरों ने उसके कोमल होंठों को बंद कर दिया.

बिजली, वर्षा, शवों की सड़ांध, श्मशान, मृत्यु, भूख की ज्वाला निर्दयता, लालच, नीचता आदि से दूर एक अद्भुत अनोखे संसार में वे

पानी बरसता रहा. बिजली चमकती रही. मेघ गरजते, सर्द हवा चलती रही. सागर हिलोरें लेता रहा. किंतु चणबकम का सारा डर न जाने कहां चला गया. झट अपना चेहरा दूसरी ओर फिराकर अपनी मोती से दांत दिखाती वह किलक पड़ी. उस अंधकार के बीच चार आंखों में नयी चमक कौंध गयी...

दोनों अपने को खोकर संचरित हो रहे थे. वह प्यार-भरा स्नेह और आनंदपूरित संसार था.

धनकुबेरों और करोड़पतियों को उस रुद्र-भूमि में पल भर में मुट्ठी भर राख की ढेरी बना देनेवाले, अपने विनाशकारी संहार-कार्य के विरुद्ध दृष्टि-कर्म में लेने दो अनाथों की तन्मयता रुद्रदेव से छिपी न रही होगी. एक दिन जिसने कामदेव को भस्म कर दिया था, उसी को आज उसे पुनर्जिवित करना पड़ा.

संहार-भूमि के गर्भाशय में संहार का नाश करनेवाले मानव-वीर्य की एक बिंदु रूपी शक्ति सीपी के अंदर मोती के रूप में प्रविष्ट हो गयी. इस महान सत्य से उस क्षण वे दोनों ही बेखबर थे. कुछ देर पहले उन दोनों ने अपने को इस धरती पर लाने के लिए उन्हें कोसा था, जिनकी निंदा की थी, वे ही पल भर में एक नये जीव के सृष्टि-कर्ता के रूप में बदल गये हैं, इस विलक्षण सत्य से वे अनजान थे.

पानी जोरों से बरस रहा था. बारिश की बूंदें टीन के शेड पर गिरती रहीं.

बादल गरजे.

बिजली चमकी.

सागर की लहरें उठती और गिरती रहीं.

लहरें जन्म लेतीं, बढ़तीं, किनारे से टकराकर ऊपर उठतीं, फिर मिट जातीं.

मिटती लहर-सी दादी मरी पड़ी थी. उठती लहर के बीच बिंदु को पाती अपनी कोख में समेटे वहां पड़ी थी.

इन दोनों महान सत्यों का साक्षी बना टीन का वह शेड मौन खड़ा था. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहारा

वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य

सुबह उठकर माकण ने पूजाघर में सिर नवाकर प्रार्थना की. "प्रभु, मुझे मौत दे दे. मुझे मारकर अपने पास क्यों नहीं बुला लेते प्रभु."

सिर का सिंदूर मिटने के दिन से वह रोज इसी तरह प्रार्थना करती आयी है. आज भी कर रही है. वैसे आज उसके मन में भगवान के प्रति खास रोष था. इतनी ज्वाला यंत्रणाओं से उद्धार का पथ यदि सर्वशक्तिमान भगवान नहीं दे सकता है तो कौन देगा? लोग तो उसकी उपेक्षा ही करते हैं. खाली घर में उसके सहारे का कोई नहीं है, ऐसा सहृदय पड़ोसी भी नहीं है, जिसकी सहानुभूति पर वह जी लेती. घर के अलावा जमीन भी नहीं है, जिस-तिस के घर से एक मुट्ठी मांगकर लाती है तो चूल्हा जलता है. दिन का अधिकांश भाग काटती है बापुकण गोसाईं के घर. उन्हीं के घर थोड़ा-बहुत काम कर देती है तो पैसा या सामान मिल जाता है. इसी तरह उसकी जिंदगी बीत रही थी दो साल से. दो साल से वह विधवा जिंदगी जी रही है.

प्रार्थना करती-करती माकण की आंखों से आज आंसुओं की धार बहने लगी. उसकी आंखों से झर रही बूंदों से जमीन भीग गयी थी. फिर भी उसके अंदर का शोक कम न हुआ. बार-बार वह विनती करती रही, "प्रभु, मुझे मौत दे दे, इस अभागिन को उठा ले प्रभु."

किंतु उसकी प्रार्थना व्यर्थ हुई, क्योंकि बार-बार बापुकण गोसाईं की प्रतिच्छवि उसका ध्यान भंग करती रही.

बापुकण गोसाईं!

सुंदर, सुडौल, गौरवर्ण, रोबदार चेहरे का बापुकण गोसाईं, देखने पर मन पुलकित हो उठता है. बातें करते हैं तो लगता है मधुमक्खियां गुनगुना रही हैं. गांव-जवार के लोग बापुकण गोसाईं को मानते हैं. उस पर श्रद्धा रखते हैं. गुरु दक्षिणा देने, दीक्षा लेने आये हुए शिष्यों से उनका घर-आंगन हरदम भरा रहता है, दिनभर कीर्तन-भजन चलता रहता है उनके घर, लेकिन बरसात के दिनों में लोगों की भीड़ कम रहती है, क्योंकि लोग खेत जोतने में लग जाते हैं.

कल भी उनके घर पर कोई नहीं था. गोसाइन मैके गयी थी. शाम को लौटने वाली थीं. माकण शाम के समय 'माताजी, माताजी' पुकारती हुई उनके ढेंकीघर तक पहुंच गयी थी, किंतु माताजी की जगह गोसाईंजी ने आवाज दी, "कौन? अरी माकण, आओ, यहीं चली आओ." गोसाईंजी का मधुर कोमल स्वर सुनकर माकण का दिल धड़क उठा. गोसाईंजी निश्चिंत मन से एक चटाई पर बिस्तर लगाये विश्राम कर रहे थे. माकण सप्रतिभ होकर अंदर गयी तो देखा, गोसाईंजी उसकी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं. यह मुस्कान उसे अजीब-सी लगी.

हाय भगवान! वह शर्म से सिर झुकाती हुई ठिठककर रह गयी. मुंह से कुछ न बोल पायी.

"माकण, तू तो इस घर की एक सदस्य जैसी है. फिर इतनी शर्म क्यों? आ, मेरे पास ही बैठ, तेरे पति की बातें सुनाऊंगा—हम दोनों बचपन में . . ."कहकर बापुकण गोसाईं रुक गये.

माकण लौटना चाहती थी. बापुकण गोसाईं धीरे से खड़े हो गये. बोले, "रुको तो माकण, सुनो. . ." माकण रुक गयी.

"क्यों आयी थी, बोलो तो, तेरी माताजी घर में नहीं हैं."

"माताजी कुछ चावल देने वाली थीं, लेने आयी थी." किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर माकण खड़ी रही.

"ठीक है, मिल जायेगा चावल. मेरे रहते तुम क्यों फिक्र करती हो? तेरा पति मरते समय मुझे ही कह गया था तुझे देखने को. . ."

माकण ने जैसे कुछ सुना ही नहीं. उसने अनुभव किया कि बापुकण गोसाईं की आंखें अनसमझे इशारों में उसे कुछ और ही कहना चाहती हैं. उसका दिल धड़क उठा, पर जाने किस आकर्षण में पड़कर वह स्थिर दृष्टि से बापुकण गोसाईं के मुख-मंडल पर प्रस्फुटित कामनाभरी इंगितों की ओर देखती रही.

थोड़ी ही देर में वह अपने घर लौट गयी. आते समय बापुकण गोसाईं ने कहा था कि वे कल सुबह माकण के घर जायेंगे.

सारी रात वह सो न सकी. आंखें झपकते ही उसके पति की गुस्से में जलती हुई आंखें उसे जला डालने के लिए दौड़तीं. बापुकण गोसाईं के सामने यह सब क्या हो गया. उसने स्वयं तो पाप को नहीं बुलाया था, बापुकण गोसाईं ही उसे. . .

क्या भगवान उसे क्षमा करेंगे? नहीं, लोग सुनेंगे तो क्या उसे माफ करेंगे? वह अपने आपको क्षमा कर सकेगी? नहीं, किंतु बापुकण गोसाईं जादू जानते हैं. उन्हें देखने से, उनकी मुस्कराहट से लोग मुग्ध हो जाते हैं.

सुबह नहा-धोकर वह इसीलिए पूजा-घर में बैठकर प्रार्थना कर रही थी, "बापुकण गोसाईं के आने से पहले ही मुझे मौत दे दे प्रभु. उस मायावी गोसाईं के हाथ मुझे न सौंपना प्रभु."

लेकिन बापुकण गोसाईं के आने तक उसके जीवन में कुछ न घटा. गोसाईंजी उसके घर पहुंच गये. बापुकण गोसाईं की सुंदर, सुडौल, मनोरम देह की ओर देखकर माकण एकबारगी फिर स्तब्ध रह गयी. बापुकण गोसाईं ने मुस्कराकर उससे कहा, "क्या हुआ चीनीचंपा, इस तरह क्यों ठिठक गयी."

बापुकण गोसाईं के स्वर में अथाह स्नेह था. माकण तो स्नेह की भूखी ही थी. गोसाईंजी की इस बात से उसके अंदर कुछ न होने पर भी वह कुछ न बोल सकी. निश्छल मूर्त्ति की तरह वह बापुकण गोसाईं को देखने लगी.

बापुकण गोसाईं खुद ही एक चटाई डालकर बैठ गये. निरुत्तर माकण का मनोभाव न समझकर वे धीरे-धीरे बोले, "तेरा घर तो गिरता जा रहा है."

"हां, कौन खयाल रखे घर का."

"तू तो मेरी ही जमीन में घर बनाकर रह सकती है. मेरे ही घर में खा लिया करना, क्यों?

"नहीं प्रभु, इसी घर में मरना चाहती हूं. मुझ अभागिन को और कुछ नहीं चाहिए."

"खयाल तो तेरा ठीक ही है, मगर अबला औरत हो. सहारे के बिना रहोगी कैसे?"

"मेरे साथ भगवान जो है, पूजाघर में."

"अच्छा, अच्छा." व्यंग्य करते हुए गोसाईंजी पूजाघर की ओर झांकने लगे. पूजाघर के अंदर नजर पड़ते ही बापुकण गोसाईं गंभीर हो उठे. बोल पड़े, "तेरे यहां यह कौन है?"

"जल नारायण."

"कहां से लायी थी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देरगांव शहर से".

"कितने दिन से शालिग्राम को नहलाया नहीं?"

"दो वर्ष."

"इस तरह क्यों रखे हो शालिग्राम?"

"अकेले घर में मुझे डर लगता है."

"हूह." कहकर बापुकण गोसाईं ने कुछ सोचा और बोले, "कल मैं खुद आकर भगवान को नहलाऊंगा. इस तरह अनादर करोगी तो नरक में पड़ोगी, समझी!" सावधान वाणी सुनाकर गोसाईंजी चल दिये. माकण अनुतप्त हुई. दो वर्ष से भगवान को नहलाया नहीं; तो फिर उसके प्रति भगवान कैसे प्रसन्न होंगे? असंतुष्ट भगवान उसकी प्रार्थना सुनेंगे ही क्यों? बापुकण गोसाईं के प्रति श्रद्धा से उसका सिर झुक गया. कितना खयाल रखते हैं वे!

दूसरे दिन पौ फटते ही उसने अपने घर के बाहर बापुकण गोसाईं की आवाज सुनी. वह आश्चर्य से भर उठी. इतनी सुबह गोसाईंजी भगवान को नहलाने आये हैं? शायद शुभमुहूर्त देखकर ही आये होंगे. नहीं तो दो वर्ष का पाप कैसे मोचन होगा.

जल्दी-जल्दी द्वार खोलकर वह बाहर निकली तो देखा, छुट-पुट अंधेरे में गोसाईंजी का चेहरा दमक रहा है. ईश्वर का तेज है उनके चेहरे में. स्थिर नेत्रों से वह उनकी ओर देखती रही.

गोसाईंजी ने प्यार से पुकारा उसे, "मेरी प्यारी चीनीचंपा".

माकण स्तंभित हुई. खासकर 'प्यारी' और 'चीनीचंपा' शब्दों को सुनकर. भौंचक्क हो वह गोसईंजी की ओर देखती रही.

"तू अचंभे में पड़ी है न? मैं एक सपना देखकर चला आया."

"कैसा सपना?"

"तेरे जल-नारायण ने उन्हें यहां से ले जाने के लिए मुझे कहा है."

"झूठी बात."

"सच है रे." मुस्कराये बापुकण गोसाईं."

"मैं ले जाने नहीं दूंगी."

"मैं जानता हूं, तू भगवान के बिना रह नहीं सकती. भगवान के साथ भगतिन को भी जाना पड़ेगा."

"मैं नहीं जाऊंगी."

"नहीं जायेगी तो भगवान का कोप पड़ेगा तुझ पर."

माकण का कलेजा कांप उठा, "नहीं, नहीं. ऐसा नहीं हो सकता." वह पूजा-घर की ओर दौड़ गयी.

क्षणभर के लिए चकित बापूकण गोसाईं भी उसके पीछे-पीछे गये. देखा, शालिग्राम शिला को गले में गमछे से बांधकर माकण पूजाघर में पड़ी है.

उजाला हो चुका था. गोसाईंजी चिल्लाये, "अरी ओ अधर्मी, यह क्या कर रही है? नहाये-धोये बगैर शालिग्राम को छू दिया?"

"मेरे भगवान को आप नहीं ले जा सकते."

बापुकण गोसाईं ठिठक गये. उन्हें लगा, यह कल वाली माकण नहीं है. परसों जिस माकण से भेंट हुई थी, यह वह भी नहीं है. यह एक दूसरी ही माकण है. अपरिचिता. इस हालत में इसे वश में लाना दुष्कर है.

फिर भी कुछ देर तक बापुकण गोसाईं रुके रहे, लेकिन माकण पूजा-घर से न निकली. अंततः वे धीरे-धीरे अपने घर की ओर चल पड़े.

चार दिन के बाद अपनी पत्नी के मुंह से गोसाईं को मालूम पड़ा कि माकण चार दिन से उपवास कर रही है. केवल शालिग्राम को गले में बांध कर भगवान का जप कर रही है. सिर्फ

क्या नारी सिर्फ भोग्या ही है? क्या उसकी अस्मिता, उसकी इच्छा उसके संस्कार आदमी की मांसल भूख के आगे घुटने टेक देते हैं? क्या उसकी मजबूरी ब्लैकमेल किये जाने का आधार होनी चाहिए? ये सारी स्थितियों तब और भयावह रूप में सिर उठा लेती हैं, जब किसी नारी का पति भरी जवानी में ही चल बसता है. तब सहारे के नाम पर उसे कैसी-कैसी यातनाओं के दौर से गुजरना पड़ता है? उस स्थिति में आस्था और विश्वास क्या उसके रक्षा कवच बन पाते हैं?

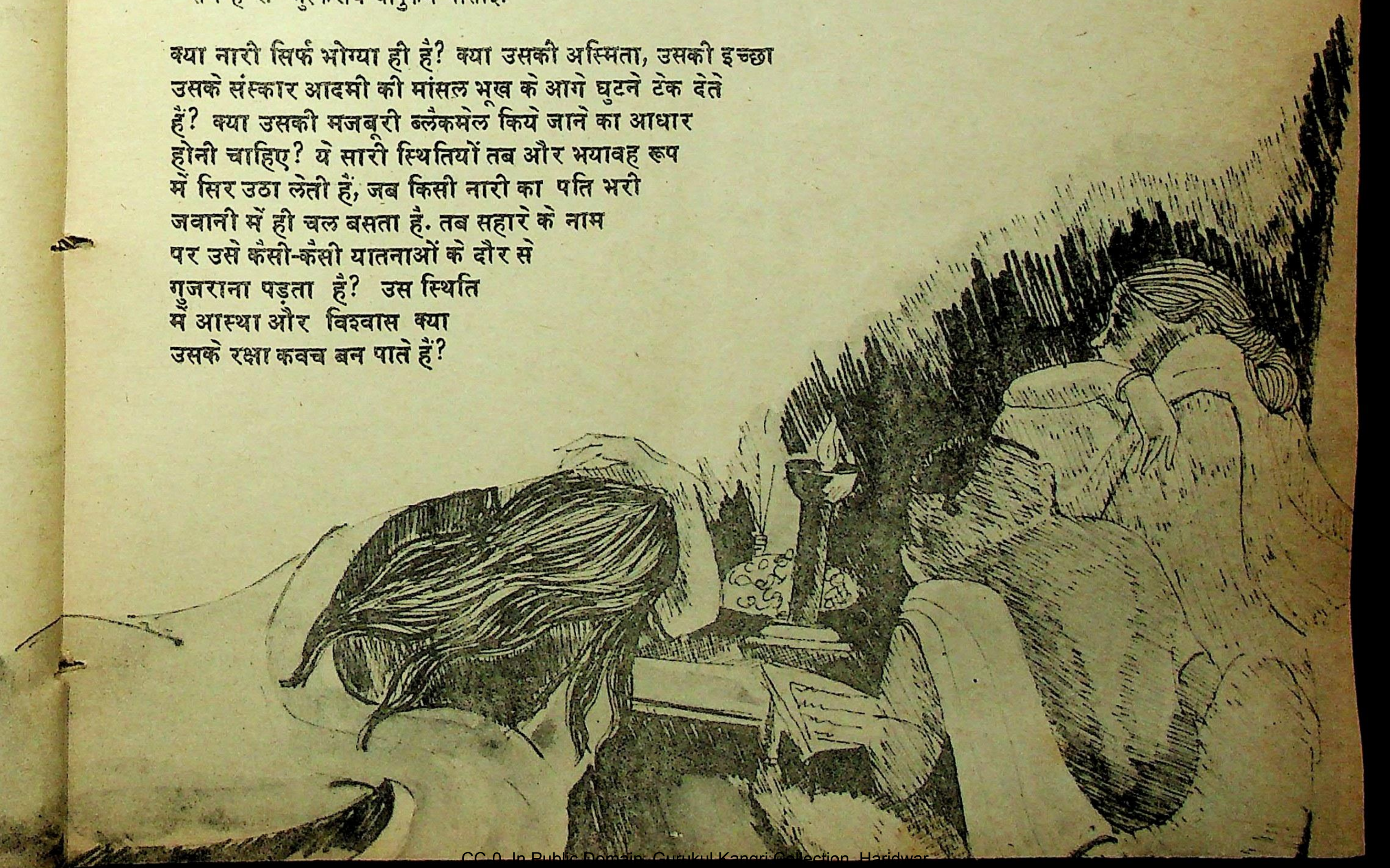

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नानादि के लिए ही बाहर निकलती है. सोती भी है पूजा-घर में. उसकी हालत ठीक नहीं है.

यह सुनकर भी बापुकण गोसाईं कुछ न बोले तो गोसाइन खुद माकण को देखने चल पड़ी.

माकण के घर में कई लोग बैठे थे. गोसाइन किसी की ओर न देखते हुए सीधे पूजा-घर गयी. माकण को पुकारा, "माकण"!

माकण पूजा-घर में अधमरी-सी पड़ी थी. वह कुछ बोली नहीं. गोसाइन के दुबारा पुकारने पर बोली, "माताजी आयी हैं क्या?"

"हां, तू यह क्या कर रही है?"

"माताजी मुझे भगवान ने बुलाया है." माकण बोली.

"नहीं, नहीं, इतनी छोटी उम्र में मरना चाहती हो? छोड़ यह सब, चल मेरे साथ."

"नहीं आप चली जाइये. मुझ अभागिन को मरने दीजिए."

गोसाइन उसे कुछ खिलाने का प्रयत्न कर हार गयीं. माकण का मरण-व्रत कोई तोड़ न सका.

घर लौटकर गोसाइन ने बापुकण गोसाईं को माकण के घर न जाने के कारण एक प्रकार तिरस्कार ही दिया. बापुकण गोसाईं के सिवा माकण और किसी की नहीं मानेगी. गोसाइन ने उन्हें यह भी सुझाया.

"मेरे जाने से क्या फायदा."

"आप लोग बड़े निर्दयी हैं." गोसाइन भर्राकर बोलती गयी, "उसे अगर कुछ हो गया तो मैं भी मर जाऊंगी. हमारे सिवा उसका और है ही कौन?"

अचरज भरे नयनों से बापुकण गोसाईं गोसाइन की ओर देखते रहे. क्या जवाब दें. दोष तो उन्हीं का था. वे माकण के घर की ओर चल पड़े.

दोपहर का समय था. माकण के घर में उस समय कोई नहीं था. गोसाईंजी सीधे पूजा-घर गये और अचेत पड़ी माकण के सिर पर हाथ रखकर बोले, "माकण, सुन रही हो?"

माकण ने एकबारगी अवसादग्रस्त आंखें उठाकर उनकी ओर देखा. बोली, "क्या?"

"यह व्रत छोड़ दे. तेरे भगवान को अब कोई तुझसे छीनकर नहीं ले जायेगा."

बड़े कष्ट के साथ माकण ने जवाब दिया, "नहीं, अब मैं एक क्षण के लिए भी इस संसार में जीना नहीं चाहती. भगवान मुझे इन यंत्रणाओं से मुक्त कर उठा ले जाये, यही इच्छा है."

माकण के नीरस और अवश चेहरे की ओर देखकर बापुकण गोसाईं किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर चुप रह गये. इतने में गोसाइन एक कटोरी में थोड़ा-सा जलपान लेकर वहां आ पहुंची. गोसाइन को देखकर गोसाईं जी कुछ आश्वस्त हुए और माकण से बोले, "माकण देख तो, तेरी माता तेरे लिए क्या लायी है?"

माकण ने आंखें खोलकर गोसाइन की ओर देखकर धीमे स्वर में कहा, "माता, क्या लायी है ये सब? खाकर जीने से तो मरना ही अच्छा है."

आकुलभाव से गोसाइन बोली, "भगवान की कसम है तुझे, तू मर जायेगी तो मैं भी नहीं जीऊंगी, समझी."

माकण ने अपनी जिद नहीं छोड़ी. बापुकण गोसाईं के प्रति उसका रोष था. और रोष था इस निदय संसार के प्रति. बापुकण गोसाईं उसे बेसहारा पाकर उससे अपनी कामना की पूर्ति करना चाहते थे. यह बात वह किसी को कह नहीं सकती, सच को झुठला भी नहीं सकती थी. धीरे-धीरे वह समझ गयी थी कि उसका शालिग्राम को ले जाने का अर्थ है उसे गोसाईंजी की मुट्ठी में करना. एक बार भी उनकी मुट्ठी में गयी तो फिर वह अबला कहां बच पायेगी?

सिर्फ यही क्या? बापुकण गोसाईं परिवार के सहारे के बिना वह जीयेगी भी कैसे? किसके घर धान झाड़ेगी, किसके घर मांगने जायेगी? बापुकण गोसाईं ने ठीक ही कहा था. सहारे के बिना अबलाएं जी नहीं सकतीं, खासकर उस जैसी विधवाएं.

बापुकण गोसाईं की समाज में प्रतिष्ठा है; लोग उन्हें मानते हैं. उसका क्या है? यह समाज भी उसका दुख समझनेवाला नहीं है. बापुकण गोसाईं की कामनाओं की बलि होकर घृणित जीवन जीकर अपने को नाश करने से तो मर जाना ही उचित है. ये बातें वह व्यक्त करना नहीं चाहती.

विधवा माकण की दृढ़ता के विरुद्ध लड़कर जब गोसाईं-गोसाइन हार गये, तब अचानक बापुकण गोसाईं ने एक संकल्प ले लिया. बापुकण गोसाईं ने घोषणा की कि माकण के ऊपर शनि का कोप पड़ा है. इस कोप से उसे बचाने के लिए चंडीपाठ का आयोजन करना जरूरी है. माकण के व्रत-शय्या पर ही चंडीपाठ किया जायगा.

दूसरा कोई उपाय न देखकर गोसाइन ने भी अपनी सहमति दी और आयोजन में जुट गयी.

उसी दिन शाम से चंडीपाठ शुरू हो गया. गोसाईंजी एक अद्भुत मनोबल के साथ एकाग्रचित होकर चंडीपाठ महात्म्य पढ़ने लगे.

सारी रात माकण के घर दिया जलता रहा. गोसाइन सामने बैठकर पाठ सुनते-सुनते नींद में झूमने लगी तो एक चटाई पर पसर गयी. लेकिन बापुकण गोसाईं का वह चंडीपाठ अविराम गति से चलता रहा. मध्यरात्रि को अपनी तन्मयता भंगकर उन्होंने जब माकण की ओर ध्यान दिया तो देखा, माकण की आंखें उनकी ओर लगी हैं.

गोसाईंजी ने क्षणभर के लिए चंडीपाठ रोककर धीमे स्वर में पूछा, "माकण, अब ठीक लग रहा है न?"

माकण ने हामी भरी. बापुकण फिर चंडीपाठ में मग्न हो गये.

सुबह बापुकण गोसाईं ने पाठ करना बंद कर गोसाइन को जगाते हुए कहा, "अरी, उठा तो, देवी मां की कृपा हुई है. नहाने-धोने से पहले उसे कुछ अन्नजल खिला दे."

गोसाइन उठकर एक कटोरी में दही-चीनी मिलाया हुआ जलपान लायी और माकण के मुंह में डाल दिया.

माकण तब भी तन्मय थी. उसके मन का सारा कलुष, पीड़ा, भय दूर हो गया था. थी केवल देवी के प्रति आत्मसमर्पण की भावना.

कब जलपान खा गयी, आत्मविभोर माकण को पता न चला. कटोरी का जलपान समाप्त हो जाने पर जब गोसाइन ने पूछा, "और खायेगी?" तब उसे ज्ञान हुआ कि बापुकण गोसाईं के जादू ने उसका मरण-व्रत तोड़ दिया है.

"नहीं." कहकर माकण ने अपना मुंह फेर लिया. उसके मन में कोई पश्चाताप नहीं हुआ. मन ही मन अनुभव किया कि उसके मरण-व्रत का प्रभाव बापुकण गोसाईं पर पड़ा है.

उजाला फैलने पर जब गोसाइन अपने घर चली गयी, तब वह बापुकण गोसाईं की ओर देखकर बोली, "प्रभु, देवी आपको ज्ञान दें."

बापुकण गोसाईं ने उसकी बात का बुरा नहीं माना, बल्कि एक संतोष का श्वास छोड़ते हुए बोले, "मेरी शपथ है तुझे, तू अच्छी हो जा. तेरे प्रति अगर मेरी कोई बुरी भावना थी, उसे आज से बिल्कुल छोड़ रहा हूं. तुझे असंतुष्ट करने का मतलब है देवी को असंतुष्ट करना. आज से तू मेरे धर्मपथ की सहयोगी है."

माकण इस बार उठकर बैठ गयी. बोली, "प्रभु, हमारी तरह कीड़े-मकोड़ों जैसी बातें आप जैसे लोगों के मुंह में शोभा नहीं देतीं. आप लोग देवता हैं?"

बापुकण गोसाईं एक दीर्घ श्वास छोड़ते हुए वहां से चले गये.

संतोष का श्वास लेते हुए माकण ने अपने गले में तब भी लटक रहे शालिग्राम को एक बार फिर सीने से लगा लिया. शायद इस दुनिया में भगवान के सिवा और कोई सहारा नहीं है—उसे ऐसा दृढ़ विश्वास हो गया था. □

● अनुवाद : विष्णुकमल डेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य के साथ ए. के. मित्तल की बातचीत

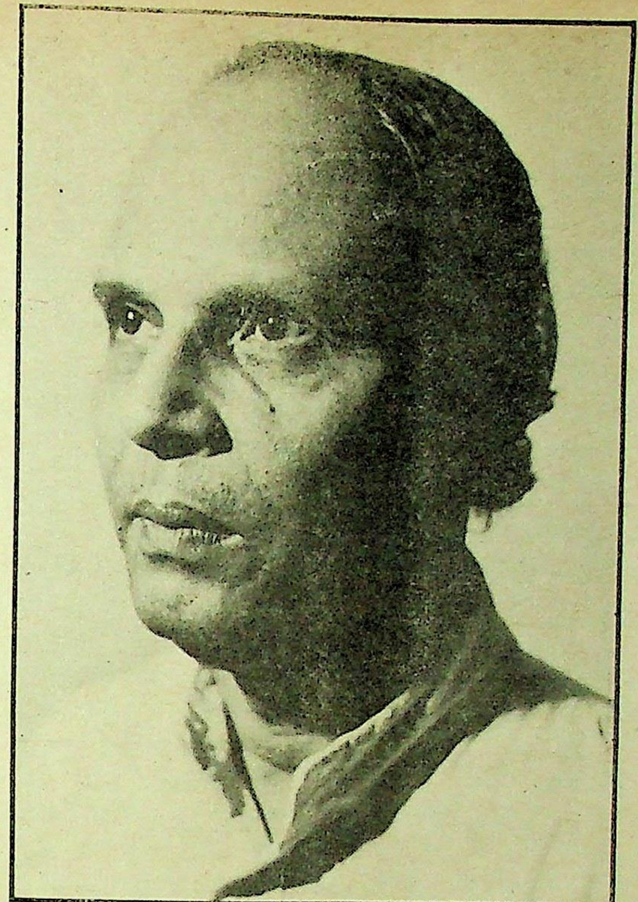

मुझमें निरंतर आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया चलती रहती है!

■ वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य

असम के पूर्वी अंचल के एक चाय बागान परिसर में १४ अतूबर, १९२४ में जन्मे और बीस से अधिक उपन्यासों के सृजेता वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य, जिन्हें उनके बहुर्चाचित उपन्यास 'मृत्युंजय' पर १९७९ का ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला, इस बातचीत में बता रहे हैं कि यह उपन्यास लिखते समय उन्हें किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा और यह भी कि आत्म विश्लेषण से कैसे वे अपनी कमजोरियों पर विजय पाते हैं——

■ जब आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला, तब आप कहां थे और यह पुरस्कार मिलने की सूचना पर आपकी तात्कालिक प्रतिक्रिया क्या थी?

मैं अपने कुछ साहित्यिक मित्रों के साथ बैठा था. हम लोग असम आंदोलन के हल के लिए कुछ व्यावहारिक उपायों पर बात कर रहे थे. शाम के करीब नौ बजे मैं अपने घर के लिए चला और साढ़े-नौ बजे छोटी-सी पहाड़ी के ऊपर बने अपने घर पहुंचा. वहां पहुंचने पर ही मेरी बेटी ने मुझे यह खबर सुनायी. उससे पहले तो इस ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया था. किसी भी लेखक के काम को जब मान्यता मिलती है तो उसे खुशी तो होती ही है, पर सफलता के क्षणों में भी अपनी क्षमताओं और सीमाओं के प्रति मैं हमेशा सचेत रहता हूं. अपनी रचनाओं और सीमाओं को लेकर मैं भरपूर आत्मविश्लेषण करता हूं.

■ अपने ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता उपन्यास 'मृत्युंजय' में आपको किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा?

यह उपन्यास 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' पर आधारित है, जबकि लिखा यह गया है 1968 में. अतः मुझे मानसिक रूप से 26 वर्ष पीछे जाना पड़ा. इसके लिए मुझे उसी तरह का भौतिक तथा मानसिक पर्यावरण भी बनाना पड़ा. मैंने अपने आपको एक घटना और एक ही परिवेश में सीमित रखा. मुझे वहां के स्थानीय जीवन तथा उस घटना के साथ वहां के लोगों के मानसिक एवं आध्यात्मिक जुड़ावों को व्यंजित करना पड़ा था. और इसके साथ ही मुझे उस काल के वातावरण को वर्तमान पर भी प्रक्षेपित करना था, क्योंकि अतीत में आप अधिक समय तक नहीं ठहर सकते. इतना ही नहीं, भविष्य के प्रति प्रगतिशील दृष्टि भी जरूरी थी, क्योंकि अधिकतर क्रांतियों (फ्रांस, रूस, चीन और भारत की क्रांतियों की तरह) का उद्देश्य समाज के एक नये ढांचे को तैयार करना तथा मनुष्य के लिए बेहतर वातावरण तैयार करना होता है. मैं समझता हूं कि उस आंदोलन के पक्षधरों ने भी मनुष्य के संदर्भ में एक अपनी छवि बनायी होगी. यह अलग सवाल है कि उनके उद्देश्य कहां तक पूरे हुए.

■ आपके खयाल से क्रांति के पक्षधरों के क्या सपने रहे होंगे?

कामू ने अपने 'द रिबेल' (जिसने मुझे प्रभावित भी किया.) में एक दिलचस्प सिद्धांत का प्रतिपादन किया है. उसका विचार है कि कई बार क्रांतिकारी भी भूलवश किताबों से दूर रहना बेहतर मानने लगते हैं. कामू का कहना है कि क्रांति को भी एक दिन सौंदर्य की आवश्यकता होगी, उसे भी न्याय तथा समता के मूल्यों के साथ अपने को जोड़ना होगा. कामू यह भी कहता है कि जीवन एक अराजकता है और यथार्थ की कोई सीमा नहीं है. इसलिए कलाकार का यह दायित्व हो जाता है कि वह अराजकता में से एकता को खोजे और इसे एक पद्धति दे.

■ तो फिर इसे व्यावहारिक रूप कैसे दिया जाये? क्या यह गांधीवादी तरीके से हो सकता है?

गांधीजी के विचारों से मैं काफी प्रभावित हूं. मैं समझता हूं कि यदि आपके साधन अनुचित नहीं हैं तो एक दिन आप अपने लक्ष्य को पा ही लेंगे.

■ अभी आपने अपने और अपनी रचनाओं को लेकर होने वाले निरंतर आत्मविश्लेषण की बात कही थी. इस प्रक्रिया ने आपकी कमजोरियों को दूर करने में कहां तक सहायता की?

कमजोरियों के दूर होने की प्रक्रिया तो चलती ही रहती है. जो आदमी आत्मविश्लेषण की आदत ही बना चुका हो, मेरे खयाल से उसके लिए यह बताना बहुत कठिन होगा कि उसने अपनी कमजोरियों पर पूरी तरह से काबू पा लिया है. मुझे हमेशा यह लगता है कि आगे मैं जिस भी विषय पर लिखूंगा, पिछली रचना की अपेक्षा उसमें विषय को बेहतर ढंग से उठाया गया होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आदमी अपना जादूगर आप बन सकता है!

▣ रामधारीसिंह दिनकर

डायरी आदमी की अच्छाइयों-बुराइयों, जिंदगी, शरीर या मन की घटनाओं-दुर्घटनाओं, सोच-प्रति सोच और क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का आईना होती है. वह उसकी अंतरंग और निजी संपत्ति है. जब वह निजी संपत्ति प्रकाशित होकर सार्वजनिक बन जाये तो. . .? देखें, राष्ट्रकवि और ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता दिनकरजी के वे अंतरंग क्षण क्या और कैसे हैं?

18 अप्रैल, 1972 (दिल्ली)

आज इंदु ने एक छोटी-सी किताब पढ़ने को दी. नाम है 'आर्ट आव लिविंग'. उसमें से कितने ही वाक्य नोट कर लेने योग्य हैं.

कोई भी जीवधारी अपने को बदल नहीं सकता. केवल आदमी अपने आप को बदल सकता है. इसलिए वह अपने भाग्य का निर्माता कहा जाता है.

आगम भी सर्वथा त्याज्य नहीं हैं. पूजा-भवन में जो बाहरी प्रतीक रखे जाते हैं, उनसे उपासना का वातावरण तैयार होता है.

मैं जो हूं, वही होने का अधिकार स्वतंत्रता है. यह गलती करने का अधिकार है, असफल होने का अधिकार है और फिर से प्रयास करने का अधिकार है.

जीवन की गति को तेज करना ही सब कुछ नहीं है. कभी-कभी ठहरना भी चाहिए फूल सूंघने के लिए, बच्चों से खेलने के लिए, गाय की पीठ थपथपाने के लिए.

ठहर जाओ और मन को शांत कर लो. खिड़की पर जाओ और आकाश के सितारों को देखो.

निरुद्देश्य घूमने के लिए जो समय निकाल सकता है, वह ज्ञानी मनुष्य है.

जिसे क्रोध आता है, उसका कुछ न कुछ नुकसान जरूर हो जाता है.

हममें से हर एक यदि शांति की कला का अभ्यास करे तो घर, परिवार, दफ्तर और कारखाना, सर्वत्र शांति हो सकती है.

मधुमक्खी न काटे और हम मधु निकाल लें, इसे 'टैक्ट' कहते हैं.

टहलना पूरे मनुष्य का व्यायाम है. सृष्टि के प्रति भय के भाव में भरकर घूमो, आश्चर्य और विनम्रता के भाव में भरकर घूमो. अकेले घूमना ज्यादा अच्छा है, मगर साथी की जरूरत ही आन पड़े तो ऐसे व्यक्ति को चुनो, जो मौन की महिमा को समझता हो.

समानानुभूति (एंपेथी) के जरिये आदमी सभी आदमियों का दुख-दर्द समझ सकता है, उनसे तदाकार हो सकता है.

जब मैं ऊंची बातें बोलता हूं, सबसे सुंदर बात बोलता हूं, तब असल में मैं ईश्वर को भाषा में रखता हूं.

मृत्यु बूढ़ी और रहमदिल धाई है. किसी-न-किसी दिन वह हमें गोद में हलराकर सुला लेगी. अतएव जब तक हम जीवित हैं, हमें एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए.

अपनी अवस्था सुधारने का मनुष्य के भीतर दुर्दांत संकल्प है. यही संकल्प उसकी प्रगति है. गैलीलियो ने लोहे की पाइप से आकाश को रात में देखा था, आज भीमाकार लेन्स से हम करोड़ों प्रकाश-वर्ष तक देखते हैं. राइट बंधु धरती से 100 फुट ऊपर उड़े थे और केवल दस सैकेंड तक. आज हम सारे विश्व का चक्कर लगाते हैं.

संत वह पापी है, जो बराबर पाप से निकलने का प्रयास कर रहा है.

जीवन का सबसे बड़ा उपयोग उसे किसी ऐसे काम में लगाना है,जो जिंदगी के बाद तक ठहर सके.

गंभीर चिंतन, ऊंची से ऊंची भावनाओं की अनुभूति और सत्कर्म संपादन, यह सफल जीवन का लक्षण है.

हर आदमी के भीतर कोई बात है, जिसे सुनने से हमारा भला हो सकता है, हम कुछ सीख सकते हैं. अतएव उसे बोलने दो.

अपनी अभिलाषाओं को सुनो, उच्च आकांक्षाओं को सुनो. तुम्हारे भीतर जो तुमसे भी श्रेष्ठ मनुष्य है, उसकी आवाज सुनो.

1 मई, 1972 (पटना)

श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा मुक्त अपने सुपुत्र श्री आनंदवर्धन के साथ आये. उनसे काफी देर तक साहित्यालाप करता रहा. जब वे चले गये, श्री नरसिंहैया के एक लेख पर दृष्टि पड़ी, जिसे उन्होंने भारतीय बुद्धिजीवियों पर लिखा है.

नरसिंहैया ने यह बात बड़ी सफाई से कही है कि मनीषी जब सरकार से सटने लगता है, तब जनता उस पर संदेह करने लगती है और जब वह सरकार का अंग बन जाता है, तब जनता उस पर विश्वास करना छोड़ देती है.

मेरे जीवन से इस उचित का समर्थन भी होता है और खंडन भी. समर्थन इस प्रकार होता है कि जब मेरे बारे में यह अफवाह उड़ने लगी कि मैं मंत्री बनने वाला हूं, तब जनता की आंखों से मैं गिरने लगा. और खंडन इस प्रकार होता है कि मैं जब अंग्रेजों की नौकरी में था, मैं जनता का लाड़ला था. यहां तक कि जब मेरा तबादला युद्ध-प्रचार विभाग में हुआ, तब भी जनता के प्रेम में कोई कमी नहीं आयी.

असली स्थिति शायद यह है कि जनता चाहती है कि मनीषी ऐसा हो कि वह राजा और प्रजा, दोनों को डांट सके. जब तक मनीषी इस धर्म का पालन करता है, तब तक जनता उसके साथ रहती है.

स्वराज्य के पूर्व तक मनीषियों का इस देश में बड़ा सम्मान था, क्योंकि मनीषी शासकों के खिलाफ आवाज उठाते थे, मगर अब मनीषियों का आदर बहुत कम हो गया है. जो मनीषी लेखक और कवि हैं, वे कला की सेवा तो करते हैं, लेकिन समय के जलते प्रश्नों पर अपना विचार व्यक्त नहीं करते. स्पष्ट ही, यह सुरक्षा की राह है और जो सुरक्षा खोजता है, जनता उसकी खोज नहीं करती. हम लोग सुरक्षा की खोज में ही मारे गये हैं.

मनु ने ब्राह्मण की जो कल्पना की थी, वह इसी मनीषी की कल्पना थी. ब्राह्मण संचय न करे. ब्राह्मण किसी एक आदमी के दान न जिये (नहीं तो वही आदमी उसका मालिक हो जायेगा.) ब्राह्मण सम्मान से उस प्रकार भागे, जैसे आदमी सांप को देखकर भागता है. चूंकि ब्राह्मण को न धन का लोभ था, न प्रतिष्ठता का, इसलिए समाज उसका आदर करता था और राजा भी उससे डरता था.

आज तो स्थिति यह है कि जिस समाज में हम जीते हैं, उसका प्रोप्राइटर राजनीतिज्ञ है, मैनेजर अफसर हैं और मनीषी मजदूर हैं. कुछ मनीषी अध्यापक और प्राध्यापक हैं, कुछ लेखक, कवि और पत्रकार हैं. मगर वे हमेशा चौकन्ने और सतर्क रहते हैं कि कहीं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई ऐसी बात मुंह या कलम से न निकल जाये, जिससे सरकार या विश्वविद्यालय के अधिकारी नाराज हों. जिस समाज के मनीषी असुरक्षा से इतने चकित और भयभीत हों, उस समाज का नेता राजनीतिज्ञ ही रहेगा, मनीषी नहीं बन पायेगा.

सरस्वती और लक्ष्मी में वैर है, यही सिद्धांत ठीक था. हमने इस वैर को बुझाने की कोशिश की, यही हमसे बड़ी भारी भूल हो गयी.

सफलता की चाह मनीषी को क्षीण करती है. 'प्रोफाइल इन करेज' में केनेडी ने जिन लोगों का चरित्र-चित्रण किया है, उनमें से कोई भी सांसारिक दृष्टि से सफल मनुष्य नहीं था. जो ध्येय हमें सत्य दिखाई देता है, उसका पक्ष हमें लेना चाहिए, भले ही जनता उस ध्येय के खिलाफ हो, भले ही राजा उससे नाराज हो. हम लोगों का प्रभाव समाज पर इसलिए नहीं रहा कि हम सत्य बोलने की कीमत चुकाने में आनाकानी करने लगे.

23 नवंबर, 1972 (पटना)

आज दिल्ली से लौटा, तब 'स्काला' मैगजीन मिली. इस अंक में इस विषय पर एक नोट है कि कोई साहित्यकार लिखता क्यों है.

गेटे ने कहा था, "लेखन का धंधा करते मैंने कभी अपने आप से यह नहीं पूछा कि जनता चाहती क्या है और किस प्रकार मैं जनता की सहायता कर सकता हूं. बल्कि मैं तो बराबर अपने आपको पहले से अच्छा बनाता रहा हूं, अपने व्यक्तित्व की सघनता बढ़ाता रहा हूं, जिसे मैं शिव और सत्य मानता हूं, इसी बात को सुंदरता से लिखता हूं."

एक लेखक का मत यह है कि मैं जीने के लिए लिखता हूं. जब मैं लिखता रहता हूं, तब मुझे एहसास होता है कि मैं जीवित हूं.

एक अन्य लेखक कहता है कि मेरे लिखने का उद्देश्य यह होता है कि मैं अपने भीतर के सत्य को पकड़ना चाहता हूं.

एक लेखक यह सोचता है कि लेखक की प्ररणा यह है कि वह कुछ संप्रेषित करना चाहता है, कोई बात कहना चाहता है, जो उस युग में किसी और आदमी को सूझ नहीं रही है अथवा अगर सूझी है तो वह उसे कह नहीं पाया है, अगर कह चुका है तो उस शैली में नहीं, जिसमें उसे कोई खास लेखक कहना चाहता है. लेकिन एक ही शैली और एक ही युग में अगर वह बात कह दी गयी है, तब भी लेखक को अपनी भाषा में उसे दुहराना चाहिए, क्योंकि एक सत्य का आख्यान एक ही व्यक्ति करे, यह काफी नहीं है.

मेरी लुई ने कहा है, "आप मुझ पर तरस भले ही खायें, किंतु लिखते वक्त मुझे दूसरों की चिंता जरूर होती है, पाठकों का खयाल जरूर आता है."

एक दूसरे लेखक ने लिखा है, "मैं अपने पाठकों की शांतिभंग करना चाहता हूं, मैं उससे कहना चाहता हूं कि तुम संतुष्ट मत रहो, सोचो, चिंता करो, दिमाग पर जोर दो."

किंतु, यह पाठक कौन है? क्या लेखक उसे जानता है? गुंटर ग्रास कहते हैं, 'मैं यह मान-कर चलता हूं कि मैं पाठक को नहीं जानता. कम-से-कम यह तो फिजूल बात है ही कि कोई अपने पाठक की कल्पना करके लिखे.' लगभग यही बात सिजफ्रिड लेंज ने भी कही है; "पाठक निराकर जीव है. वह नेवुला है. इस निराकार जंतु पर आंख गड़ाकर लिखना संभव नहीं है. हर समय अपने पाठक का ध्यान करके लिखने से लेखक की स्वतंत्रता मारी जाती है. मैं तो उसी बात को लिखता हूं, जिसकी मुझे अनुभूति होती है."

एक अन्य लेखक का मत है कि अधिकांश चीजें मैं इसलिए लिखता हूं कि उनके लिखने में मुझे आनंद आता है. शब्द मुझे आनंद देते हैं, भाषा के घुमाने-फिराने में मुझे आनंद मिलता है. कभी-कभी तो मुझे शब्दों के साथ महज खेलने में आनंद आता है.

नयी पुस्तक की रचना नये आनंद का भोग है, नये सत्य का अनुसंधान है.

5 दिसंबर, 1972 (पटना)

अगस्त का 'अमेरिकन रिव्यू' आज पहुंचा.

'संस्कृति के चार अध्याय' जैसे विचार-पूर्ण ग्रंथ के लेखक और 'कुरुक्षेत्र', परशुराम की प्रतीक्षा' तथा 'उर्वशी' जैसी काव्यकृतियों के रचयिता श्री रामधारी सिंह दिनकर.

इन्हें 'उर्वशी' पर 1972 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया. इनकी कृतियों की संख्या पचास से अधिक है, जिनमें से अधिकांश काव्य-कृतियां हैं, पर गद्य पर भी इनकी कलम अधिकारपूर्वक चलती थी.

एक वैज्ञानिक का मत है कि आदमी अगर पृथ्वी की सीमाओं से बाहर नहीं निकला तो ये सीमाएं उसे मार डालेंगी. पोल्यूशन और जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न विपत्तियों से मनुष्य तभी बच सकता है, जब वह अन्य ग्रहों पर अपना आवास बना सके.

लारेन ईसले नामक एक लेखक ने इसके विरुद्ध कोई निबंध लिखा है. उसका कहना है कि पृथ्वी मनुष्य का विनाश नहीं करेगी. लगता है, आदमी ही धरती को जीने योग्य नहीं रहने देगा. आदमी की ताकत जिस दिशा की ओर लगनी चाहिए, उस दिशा की ओर वह लग नहीं रही है. अपरिमित धनराशि का व्यय करके और अथक परिश्रम के बाद वह सूर्य-मंडल के स्पेस में थोड़ी दूर तक जा सका है, किंतु मनुष्य-मनुष्य के बीच जो दूरी है, उसे वह जरा भी कम नहीं कर सका है.

टेक्नालाजी का जितना ही विकास होता है, मनुष्य की अपने वातावरण को दूषित करने की शक्ति उतनी ही बढ़ती जाती है और साथ-साथ जनसंख्या भी बढ़ी जा रही है. इन दोनों संकटों से निकलने का मार्ग यह है कि आदमी उस पहली दुनिया में लौट जाये, जिससे निकलकर वह वर्तमान जगत में पहुंचा है.

यह दूसरी दुनिया आदमी के दिमाग से निकली है. यह दुनिया आदमी को जितना भी आगे ले जाये, आदमी प्रकृति से बाहर नहीं निकल सकता. सूर्यमुखी फूलों के जिस वन को लूटकर और तहस-नहस करके उसने अपना विकास किया है, उस वन में उसे फिर से वापस जाना होगा, अन्यथा उसका जीना मुश्किल हो जायेगा. अगर नयी दुनिया का आदमी पुरानी दुनिया में वापस पहुंच जाये तो दोनों संसारों के योग से एक तीसरा संसार उत्पन्न हो जायेगा. तभी प्राचीन जगत के उन चिंतकों का सपना सच होगा, जो मनुष्य नहीं, उसकी आत्मा के स्रष्टा थे और जो बराबर यह कहते आये थे कि मनुष्य को अपने आप का अतिक्रमण करना चाहिए.

चीनी, भारतीय, यूनानी और यहूदी मसीहाओं की कहानी उस मनुष्य की कहानी है, जो औजारों से नहीं, आंतरिक शक्ति से विकास पाता है. औजार तो मन से ही निकले हैं. मन पर आदमी का अधिकार हो जाये तो वह औजारों पर भी काबू पा सकता है. आदमी अपना जादूघर आप बन सकता है. उसे केवल अपने घर की राह पकड़ने की जरूरत है.

भाषा यह पश्चिम की है, किंतु भाव यहां मुझे गांधी और श्री अरविंद के भासित होते हैं. मनुष्य अगर मन पर विजय पा ले, कामनाओं को अपने अधीन कर ले तो इतने से ही वह विज्ञान का स्वामी हो जायेगा, उसका दास नहीं रहेगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

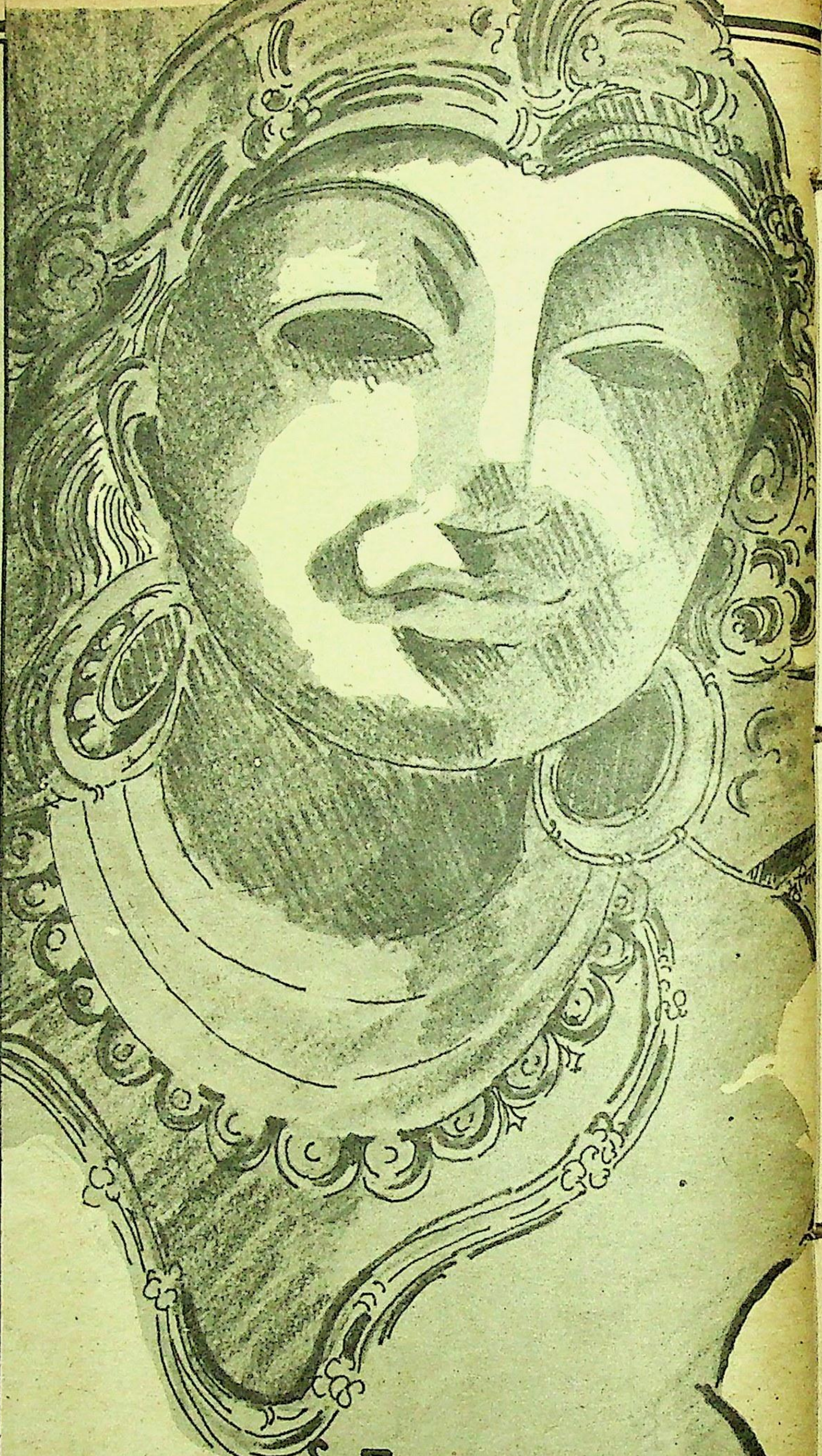

उर्वशी

▣ रामधारीसिंह दिनकर

दिनकरजी की कविता की ऊंचाई मापनी हो तो निर्विवाद रूप से 'उर्वशी' पढ़नी पड़ेगी, यह संशय और द्विधा से आक्रांत एक ऐसा काव्य है; जो कालसत्य को ही नहीं, कालातीत सत्य को भी रूपायित करता है. प्रस्तुत है उसी कालजयी कृति का एक महत्वपूर्ण अंश—

उर्वशी

रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी,
क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करती है.
निरी बुद्धि की निर्मितियां निष्प्राण हुआ करती हैं,
चित्र और प्रतिमा, इनमें जो जीवन लहराता है,
वह सूत्रों से नहीं, पत्र-पाषाणों में आया है,
कलाकार के अंतर के हिल्कोरे हुए रुधिर से.

श्रुतिपुट पर उत्तप्त श्वास का स्पर्श और अधरों पर
रसना की गुदगुदी, अदीपित निश के अंधियाले में.
रस-माती, भटकती उंगलियों का संचरण त्वचा पर;
इस निगूढ़ कूजन का आशय बुद्धि समझ सकती है!

उसे समझता रक्त, एक कंपन जिसमें उठता है,
किसी दूब की फुनगी से औचक छू जाने पर भी.

तुम निरूपते हो विराग जिसकी वीथिका सुनाकर,
मेरे लिए सत्य की वाणी वही तप्त शोणित है.
पढ़ो रक्त की भाषा को, विश्वास करो इस लिपि का,
यह भाषा, यह लिपि मानस को कभी न भरमायेगी.
छली बुद्धि की भांति, जिसे सुख-दुख से भरे भुवन में
पाप दीखता वहां, जहां सुंदरता हुलस रही है,
और पुण्य-चय, वहां, जहां कंकाल कुलिश, कांटे हैं.

पुरुरवा

द्वंद्व शूलते जिसे, सत्य ही, वह जन अभी मनुज है,
देवी वह, जिसके मन में कोई संघर्ष नहीं है.
तब भी, मनुज जन्म से है लोकोत्तर, दिव्य तुम्हीं-सा,
मटमैला, घर, बटुल धार निर्मल, प्रशांत उद्‌गम की.

रक्त बुद्धि से अधिक बली है, अधिक समर्थ, तभी तो
निज उद्‌गम की ओर सहज हम लौट नहीं पाते हैं.
पहुंच नहीं पाते उस अव्यय, एक पूर्ण, सविता तक
सोये हुए अचेत माधवी किरणों के कलख में.

दाह मात्र ही नहीं, प्रेम होना है अमृत-शिखा भी,
नारी जब देखती पुरुष को इच्छा-भरे नयन से.
नहीं जगाती है केवल उद्वेलन, अनल रुधिर में,
मन में किसी कांत कवि को भी जन्म दिया करती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि, प्रेमी एक ही तत्व हैं, तन की सुंदरता से
दोनों मुग्ध, देह से दोनों बहुत दूर जाते हैं,
उस अनंत में, जो अमूर्त धागों से बांध रहा है
सभी दृश्य सुषमाओं को अविगत, अदृश्य सत्ता से.

जगता प्रेम प्रथम लोचन में, तब तरंग-निभ मन में,
प्रथम दीखती प्रिया एकदेही, फिर व्याप्त भुवन में.
पहले प्रेम स्पर्श होता है, तदनंतर चिंतन भी,
प्रणय प्रथम मिट्टी कठोर है, तब वायव्य गगन भी.

मुझमें जिस रहस्य-चिंतक को तुमने जगा दिया है,
उड़ा चाहता है वह भावुक उस निरभ्र अंबर में,
घेर रहा जो तुम्हें चतुर्दिक अपनी स्निग्ध विभा से
सभा रहीं जिसमें अलक्ष्य आभा-ऊर्मियां तुम्हारी.
वह अंबर, जिसके जीवन का पावस उतर चुका है,
चमक रही है धुली हुई जिसमें नीलिमा शरत् की.

ऊपर जो द्युतिमान, मनोमय जीवन झलक रहा है,
उसे प्राप्त हम कर सकते हैं तन के अतिक्रमण से.

तन का अतिक्रमण यानी इन दो सुरम्य नयनों के
वातायन से झांक देखना उस अदृश्य जगती को,
जहां मृति की सीमा सूनेपन में बिला रही है.

तन का अतिक्रमण यानी मांसल आवरण हटाकर
आंखों से देखना वस्तुओं के वास्तविक हृदय को,
और श्रवण करना कानों से आहट उन भावों की,
जो खुलकर बोलते नहीं, गोपन इंगित करते हैं.

यह अतिक्रांति वियोग नहीं, अलिंगित नर-नारी का,
देह-धर्म से परे अंतरात्मा तक उठ जाना है.

पर, कैसा दुःसाध्य पथ! कितना उड्डयन कठिन है!
पहले तो मधु-सिक्त भ्रमर के पंख नहीं खुलते हैं,
और खुले भी तो उड़ान आधी ही रह जाती है,
नीचे उसे खींच लेता है आकर्षण मधुवन का.

देह प्रेम की जन्म-भूमि है, इस शैशवस्थली की
ममता रखती रोक उसे अति दूर देश जाने से.
बाधक है यह प्रेम आप ही अपनी ऊर्ध्व प्रगति का.

अपने स्वप्न की व्याख्या कवि स्वयं नहीं कर सकता!

▣ दिनकर

दिनकरजी की दो महत्वपूर्ण कृतियों—'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' को मिलाकर देखने की उत्सुकता स्वाभाविक है. यहां प्रस्तुत है दिनकरजी की टिप्पणी कि इन दोनों में किसकी ऊंचाई कितनी है?

कविता युग के संचित ज्ञान का आख्यान नहीं है. कविता का क्षेत्र ज्यों-ज्यों नवीन होता जाता है, कवि त्यों-त्यों अधिक गहराई में उतरता जाता है. और ज्यों-ज्यों वह गहराई में उतरता जाता है, त्यों-त्यों यह बताने में वह अधिक असमर्थ होता जाता है कि यह सत्य है और वह सत्य नहीं है. कविता की जो यात्रा गहराई की ओर है, वही उसे अनेकांत की ओर लिये जा रही है. कवि यह जान गया है कि कोई भी बात जोर से बोलने के योग्य नहीं है. इसीलिए अब वह निश्चित और अनिश्चित, ज्ञान और अज्ञान के संधि-स्थल पर काम करता है.

मनुष्य इतनी बार धोखा खा चुका है कि उसे अब किसी भी ज्ञान पर विश्वास नहीं रहा और सत्य को उसने इतनी बार बदलते देखा है कि वह कहीं भी दुराग्रहपूर्वक अड़ने को तैयार नहीं है. इसका प्रभाव कविता पर पड़ना स्वाभाविक था, कविता अब सत्य का उद्घोष नहीं, उसके अनुसंधान का प्रयास है. मैं भी 'उर्वशी' में सिखाने के बदले अनुसंधान के काम में ज्यादा लग रहा हूं. यह ठीक है कि 'उर्वशी' बहुत-से संचित ज्ञान का कथन बड़े ही उत्साह के साथ करती है, किंतु वह सब का सब सच है या नहीं, यह बात मुझे भी मालूम नहीं है.

कविता में एक स्थिति वह भी आती है, जब कवि को अपने अहं का लोप करना पड़ता है अथवा समाधि की स्थिति में देर तक टिके रहने से कवि के अहं का आप से आप लोप हो जाता है. तब तो भूमि रिक्त रह जाती है, वहां कहीं से त्रस्त होकर कविता खुद-ब-खुद उतर आती है. 'उर्वशी' में ऐसे कई स्थल हैं, किंतु उनके बारे में अधिकारपूर्वक बोलना मेरे लिए संभव नहीं है, क्योंकि जहां-जहां ऐसे स्थल आये हैं, मेरा अस्तित्व विलुप्त हो गया है. वहां जो है, वह कविता है, मैं नहीं हूं.

इस प्रसंग में 'उर्वशी' को 'कुरुक्षेत्र' से मिलाकर देखने की उत्सुकता स्वाभाविक है. 'कुरुक्षेत्र' में प्रकाश है, 'उर्वशी' में द्वाभा और गोधूलि है. कुरुक्षेत्र की वाणी विश्वास की वाणी है, उर्वशी की वाणी संशय और द्विधा से आक्रांत है. कुरुक्षेत्र में मैं धृष्टतापूर्वक गुरु के पद से स्वयं बोल गया हूं. 'उर्वशी' की ऊंचाई पर पहुंचकर मुझे ऐसा लगा कि काश, कोई गुरु मिल जाता तो उससे पूछ लेता कि असली रहस्य क्या है.

अपने स्वप्न, अपनी कल्पना की व्याख्या कवि स्वयं नहीं कर सकता, न यह काम करने की उसे कोशिश करनी चाहिए. कविः करोति काव्यानि रसं जानंति पणिता! फिर भी मैंने यह विवर्जित कार्य इसलिए किया कि मुझे लगा कि इससे आपका किंचित मनोरंजन हो जायेगा. यह वह युग है, जिसमें माध्यम प्रमुख, संदेश गौण हो गया है. लोग कविता कम, कविता के बारे में अधिक सुनना चाहते हैं. कवि की जीवनियां आज ज्यादा बिकती हैं, उनकी कविताओं की बिक्री कम हो गयी है. कवि की कविता से अधिक महत्त्व अब कवि के साथ की गयी भेंट-वार्ता को दिया जाता है. □

(ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह में दिये गये अभिभाषण से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़ कहानी

वह अज्ञात वीर

कु. वें. पुट्टप्प

पल-पल आतंक में जीते हुए लोगों की जिंदगी कैसी होती है... और कैसे उबर पाते हैं वे आतंक के माहौल से? कन्नड़ के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि-कथाकार द्वारा लिखित बाढ़ के आतंक में डूबते-उतराते लोगों की मार्मिक व्यथा-कथा...

आषाढ़ का मास, रात के लगभग आठ बजे का समय, घना अंधेरा आंखों को चुभ रहा था. वर्षा की बौछार शरीर में फुरहरी उठा रही थी. सुब्बण्णा गौड़ा ओसारे में एक दरी पर बैठे लैंप के प्रकाश में कुछ हिसाब-किताब देख रहे थे.

बाहर से लिंगा हाथ में एक लालटेन थामे आकर बोला, "मालिक, नदी का पानी सातवीं सीढ़ी तक चढ़ आया है."

सुब्बण्णा गौड़ा घबराकर एकदम उठ खड़े हुए और "चलो जरा देख आयें" कहकर कंबल की ओट बनाकर चल पड़े.

सुब्बण्णा गौड़ा लिंगा की ओर मुड़कर बोले, "कल पानी कहां तक चढ़ा था?"

लिंगा बोला, "कल इतना पानी नहीं आया था. आठवीं सीढ़ी तक ही वह रहा था. फिर भी, सुना है कि सारा केरेहल्ली बह गया है. निचले घर वाले रंगप्पा गौड़ा का लड़का मिला ही नहीं. बड़ा अनर्थ हो गया."

गौड़ा के मुख पर भी भय के चिह्न दिखाई पड़े. वे गंभीर होकर बोले, "आज ऊपर कैसी वर्षा है, तुम्हें कुछ पता है?"

"सुना है ऊपर बड़े जोर की वर्षा हो रही है. शृंगेरी की तरफ तो वर्षा एक मिनट को भी नहीं थम रही." यह कहकर लिंगा लालटेन की ओर देखकर बोला, "मालिक, इधर देखिए, पानी पांचवीं सीढ़ी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी चढ़ा आ रहा है." गौड़ा ने नीचे देखा. उनका दिल दहल उठा. मुंह-काला पड़ गया. वे घबरा उठे. दोनों लौटकर घर पहुंचे.

सुब्बण्णा गौड़ा की पत्नी नागम्मा ने पूछा, "क्या है रे लिंगा, लालटेन लेकर बाहर गये थे? नदी बहुत चढ़ आयी क्या?"

"हां मांजी, नदी में बेहिसाब बाढ़ आ रही है, इसके साथ-साथ ऊपर जोरों की वर्षा हो रही है. सारा केरेहल्ली बह गया है. बेचारे निचले घर वाले रंगप्पा गौड़ा का रामू अभी मिला ही नहीं."

सुब्बण्णा गौड़ा ने ओसारे से पुकारा, "लिंगा." लिंगा को कम सुनाई देता था. उसने सुना नहीं. उन्होंने फिर से पुकारा. तब नागम्मा बोली, "ऐ लिंगा, देख बाहर वे पुकार रहे हैं, जा." तब लिंगा अपने लंगड़े पांवों को टेढ़े-टेढ़े रखता चल दिया. बेचारा. उसका सीधा पांव उसके बायें से थोड़ा छोटा और पतला था!

लिंगा ने ओसारे में जाकर पूछा, "क्या है मालिक. क्यों पुकारा?"

गौड़ा बोले, "जरा देखकर तो आ, अब पानी कहां तक आ गया?"

लालटेन की बत्ती ऊंची करके कंबल की ओट डालकर वह नदी की ओर चल पड़ा. उसके जाने के थोड़ी देर बाद ही गौड़ा ने 'नागा' कहकर पुकारा. आठ साल का लड़का भट्टी के पास से भागा आया. खंभे की ओट खड़े होकर उसने पूछा, "क्या है मालिक."

गौड़ा ने पूछा, "सारे पशु बांध दिये न?"

"हां मालिक, सब बांध दिये हैं. तुंगा और नाटा बैल दोनों गोठ आये ही नहीं."

"जाने दे." कहते हुए गौड़ा तकिए के सहारे अधलेटे हो गये.

लिंगा अपने बेटे नागा के साथ गोठ में चला गया. तब तक नागम्मा ने पानी रखकर पत्तल लगा दिये. सुब्बण्णा ने उठकर लोटे के पानी से कुल्ला किया और खाना खाने गये. तिम्मू और सीता, दोनों बच्चे ओसारे में आकर लालटेन की रोशनी में गप्पें मारने लगे. थोड़ी देर में लिंगा और उसका बेटा नागा गोठ से आये. हाथ-पांव धोकर ओसारे में लकड़ी के फट्टे पर बैठ गये. लिंगा और नागा के साथ तिम्मू और सीता की बड़ी घनिष्ठता थी.

तिम्मू ने पूछा, "लिंगा, क्या नदी पूरी चढ़ आयी है?"

लिंगा बोला, "नहीं भैया, हमेशा जित्ती ही है?"

लिंगा के पास बैठी सीता ने उनकी बातों की ओर ध्यान ही नहीं दिया. उसका मन कहीं और ही था. वह एक बार लिंगा के पांव के गिट्ठों की तरफ देखती और दूसरी बार उसके हाथ के जोड़ों की ओर. अंत में ज्यादा कौतूहल हो जाने से उसने पूछ ही लिया, "लिंगा, यह निशान कैसे हैं, तेरे पांव और हाथ की गांठों पर?"

लिंगा का मुंह एकदम उतर गया. मुंह से कोई बात ही नहीं निकली. आंखों में आंसू भर आये. फिर अपनी कथा सुनायी.

लिंगा जैसे सीधे-सादे आदमी की जेल जाने की बात सुनकर तिम्मू के फूल जैसे दिल पर बिजली-सी गिरी. उसने पूछा, "क्या? तुम भी जेल गये थे? वह कौन-सा भला मानस था, जिसने तुम्हें जेल भेजा था?"

"मैं पहले माविनहल्ली में रंग नायक के घर का काम करता था. मैं वहीं पांच-छः साल मजूरी किया करता था. क्या करें भैयाजी. ऐसे-वैसे लोगों की संगत में पड़कर शराब पीना सीख गया था. एक दिन सुबह-सुबह चढ़ा ली. दिमाग को चढ़ गयी. पता नहीं कलाल ने उसमें क्या मिला दिया था, नशा तेज करने को. मालिक के बेटे का नाम शेष नायक है. उनको भी चढ़ी हुई थी. पीछे से कहीं से आकर जो मुंह में आया बकने लगे. मुझे भी नशे में पता नहीं चला कि वे मालिक के बेटे हैं. मेरे भी जो मुंह में आया बक गया. बाद में दोनों में हाथापाई हो गयी. उन्हें बहुत चोट लगी. उन्होंने रपट कर दी. मैं गरीब आदमी था. इसलिए जेल हो गयी."

अंतिम दो बातें कहते हुए उसका गला भर्रा गया. उसकी आंखों में आंसू आ गये और बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रो पड़ा. उसे देखकर उसका बेटा नागा भी रोने लगा. सीता की आंखें भी छलछला आयीं. तिम्मू कुछ सोचता हुआ चुप बैठा था. लिंगा का मन जरा शांत हुआ.

"तो कितने बरस की जेल हुई थी?" तिम्मू ने पूछा.

"दो साल की भैयाजी. क्या उसके बाद ही कुछ सुख मिला! वह भी नहीं. सारे रिश्तेदारों ने मुझे दुत्कार दिया. जेल जो काटकर आया था. मैं बेटे को साथ लेकर भटकता फिरा. बाद में किसी ने कहा, 'शिवनूर सुब्बण्णा गौड़ा के यहां चला जा.' सो यहां आ गया. तुम्हारे पुण्यात्मा पिता ने रोटी-कपड़ा देकर मुझे बचा लिया."

लिंगा के कहानी खत्म करते ही तिम्मू ने एक लंबी सांस लेकर कहा, "लिंगा, अब तुम हमारा घर छोड़कर कभी मत जाना. नागा भी यहीं रहेगा."

गरज, बिजली, आंधी, वर्षा रात भर इनका भैरवनाद-सा चलता रहा. घर में सब सो गये. केवल लिंगा और सुब्बण्णा ओसारे में जागते हुए बैठे थे. दोनों बीच-बीच में जाकर नदी का पानी देखकर आते थे. नदी का पानी चढ़ता ही आ रहा था. गौड़ा ने पूछा, "लिंगा, नाव कहां बांधी है? शायद घर छोड़ना पड़े."

लिंगा जरा घबराकर बोला, "उस खट्टे आम के पेड़ की जड़ से बांधी थी. पानी शायद वहां तक चढ़ आया होगा. अब वहां कैसे पहुंच पायेंगे?" यह कहकर वह लालटेन लेकर भागा. सुब्बण्णा भी उसके पीछे-पीछे भाग लिया. बाढ़ का पानी आम के पेड़ की जड़ तक आ चुका था. दोनों को कुछ देर कुछ भी सूझा नहीं. चुपचाप खड़े नदी की ओर देखते रहे. इतने में घर के पिछवाड़े कुछ गिरने की आवाज सुनायी पड़ी. दोनों इधर भागे. पिछवाड़े की दीवार गिर पड़ी थी. पानी आंगन में भर रहा था. गौड़ा को लगा, अब देर करने से सर्वनाश हो जायेगा.

हर कमरे में जाकर उन्होंने घरवालों को जगाया. वे सब आधी नींद में ही ओसारे में भागे.

हवा के तेज झोंकों के बीच लिंगा चिल्लाया, "मालिक, रस्सी पकड़ कर खींचिए." गौड़ा ने ऐसा ही किया. नाव किनारे पर आ लगी. तभी भीतर से सात-आठ लोग चिल्ला पड़े.

"लिंगा नाव को तुम दरवाजे पर लगाओ." कहते हुए भीतर घुस गये. वे फाटक से भीतर घुसने को ही थे कि देखा, नौकरानी सोमक्का मुंह बाये आंखें फाड़े हांफती भागी चली आ रही है.

गौड़ा को देखते ही वह चीखी, "ऊपर वाली दीवार गिर पड़ी है. ओसारे में पानी घुस रहा है."

गौड़ा ओसारे में आकर बोले, "तुम सब फाटक की तरफ भागो. जल्दी से, लिंगा नाव ला रहा है. ऐ नागा, तू इधर आ."

नागा गौड़ा के पास गया.

नागम्मा, तिम्मू, सीता, लोकम्मा, सोमक्का की बेटी दासम्मा सभी फाटक की ओर भाग लिये. सोमक्का तो बच्चे के लिए छोटी पोटली लाने गयी तो लौटी नहीं.

गौड़ा बोले, "नागा एक पेटी उठा." उसने एक पेटी उठा ली. दूसरी गौड़ा ने उठा ली. लिंगा सब को नाव में बिठाकर उसका सिरा थामे खड़ा था. गौड़ा ने भागकर दोनों पेटियां नाव में रख दीं और नागा को उठाकर नाव में बिठा दिया. बाद में स्वयं उसमें उछलकर चढ़ गये. लिंगा को भी नाव में चढ़ने को कह कर चप्पू लेकर एक सिरे पर बैठ गये. इतने में सीता नागम्मा से बोली, "मां सोमक्का कहां है?" तभी घर के ढहने से एक चीत्कार सुनायी पड़ा. उसकी बेटी दासम्मा ने भी सोमक्का की आशा छोड़ दी.

नाव बड़ी छोटी थी. सिर्फ पांच-छः आदमी बैठने भर को थी. बाढ़ के दिनों में तो सिर्फ दो को ही पूरी होती थी. इस समय उसमें सात भरे थे. ऊपर से दो पेटियां भी थीं. लिंगा के लिए जगह ही न थी. उसे समझ में ही न आया. वह खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि क्या वह नाव सुरक्षित पार पहुंच सकेगी?

लिंगा को देर करते देखकर गौड़ा ने घबराकर डांटा, "ऐ लिंगा ; देर काहे को कर रहा है, जल्दी चढ़."

लिंगा बोला, "मालिक जगह ही नहीं है. पहले ही नाव में भार ज्यादा है. अगर मैं भी बैठ गया तो नाव पार कैसे पहुंचेगी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. कुप्पल्लि वेंकटप्प पुट्टप्प कन्नड़ के सुविख्यात रचनाकार रहे हैं जिन्हें सन् 1968 के लिए गुजराती के सुविख्यात कवि उमा शंकर जोशी के साथ संयुक्त रूप से ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया. 'कुवेंपु' उपनाम से विख्यात यह रचनाकार 'श्री रामायण दर्शनम्' जैसी कृति के लिए सर्वद याद किये जायेंगे.

गौड़ा को गुस्सा आ गया. लिंगा को जोर से डांटकर नाव पर चढ़ने की आज्ञा दी. लिंगा चुपचाप नाव के दूसरे सिरे पर चप्पू संभालकर बैठ गया. गौड़ा ने अपनी बंदूक से दस-बारह गोलियां दाग दीं.

नाव चल पड़ी. वह वर्षा, वह हवा, वह अंधेरा, इसके बीच गोलियों की ढम-ढम ने मलेयेनाड के गंभीर पर्वतों के बीच प्रतिध्वनि उत्पन्न की. दूर के गांवों के लोग जाग उठे और बंदूक की आवाज सुनकर हैरान हुए.

शिवनूर से दो मील दूर के गांव नुग्गेहल्लि के घर में अपने ओसारे में सोये रामे गौड़ा और उनका भाई सिद्धे गौड़ा गोलियों की आवाज से जाग पड़े और हरान होकर उठ बैठे.

सिद्धे गौड़ा ने रामे गौड़ा से कहा, "भइया, बंदूक की आवाज सुनायी दी न?" रामे गौड़ा ने पूछा, "किधर से आयी होगी?"

"लाल मिट्टी के टीले की तरफ से आयी लगती है."

"शायद नहीं. देखो मुझे कुछ संदेह हो रहा है. लगता है यह आवाज शिवनूर की तरफ से आयी है."

"कहीं बाढ़-वाढ़ तो नहीं आ गयी. चार-छः आदमी साथ लेकर चलते हैं."

गौड़ा ने नाव में रखी दोनों कीमती पेटियां उठाकर नीचे डाल दीं. फिर भी भार कुछ कम न हुआ. लाख समझाने पर भी स्त्रियों और बच्चों ने 'राम राम' चिल्लाना बंद नहीं किया. दिशा भटके पागल की तरह नाव चक्कर खा रही थी. एक बार नाव डूबने-डूबने को हुई. थोड़ा पानी भी घुस आया. फिर से 'राम राम' की आवाज जोरों से उठी.

चप्पू चलाते हुए लिंगा का स्त्रियों और बच्चों की आवाज से दिल बैठने लगा. उसे निश्चय हो गया कि नाव भार से बैठ जायेगी. वह सोच में पड़ गया कि भार कैसे कम किया जाये. कुछ सूझा नहीं. कुछ देर बाद एक दम उसका मुख गंभीर हो उठा. उसने चप्पू चलाना बंद कर दिया. चारों ओर वर्षा के और अंधेरे के कारण किसी का मुख दिखायी नहीं दे रहा था. दीखने पर भी वह देख सकने की स्थिति में न था. उसने सोचा कि यदि वह नदी में कूद जाये तो भार कम हो जायेगा. और नाव सुरक्षित किनारे तक पहुंच जायेगी. जब दुनिया ने चोर कहकर दुत्कार दिया था, तब जिसने उसे खाना-कपड़ा देकर बचाया था, अब उसके घर को किसी तरह बचाना चाहिए. उसने मन में यह ठान लिया. धीरे से चप्पू नाव में रख दिया और नदी में कूदने को तैयार हो गया. अब कूदना ही था. बच्चे की याद हो आयी. दिल कांप उठा, पलभर को ठिठककर खड़ा रहा.

इतने में फिर नाव में 'हाय हाय' का रुदन शुरू हुआ.

लिंगा बिना आगा-पीछा सोचे 'राम राम' कहता नदी में कूद गया. उसका कूदना उस अंधेरे में, उस हवा, उस वर्षा में, उस शोरगुल में किसी को मालूम नहीं पड़ा. नाव का भार कम हो जाने से वह पहले की भांति आराम से चलने लगी.

गौड़ा बोला, "लिंगा, नाव जरा आराम से चलने लगी है. यह भगवान की कृपा है."

लिंगा की भी कृपा भगवान की कृपा के साथ जुड़ी थी यह उन्हें पता न था. इतने में स्त्रियां और बच्चे 'रोशनी, रोशनी' चिल्ला पड़े. सुब्बण्णा गौड़ा ने मुड़कर देखा तो पास ही नदी के किनारे पांच-छः लालटेन नजर आयीं. उनके प्रकाश में दस-पंद्रह आदमी दिखायी दिये. वहां से पांच-छः बंदूकें चलने की आवाज भी सुनायी दी. धीरे-धीरे नाव किनारे जा लगी.

नुग्गेहल्लि के रामे गौड़ा और सिद्धे गौड़ा दौड़कर आये और संभाल कर स्त्रियों और बच्चों को उतारा. सुब्बण्णा गौड़ा भी 'उफ' कहकर नाव से उतरे. सब किनारे लग गये. तो यही विचार आया 'चलो, बच गये.' खुशी के मौके पर लिंगा की याद न आना कोई खास बात नहीं. नागा रो रहा था. उसे देखकर नुग्गेहल्लि के सिद्धे गौड़ा ने पूछा, "क्यों बेटा, क्या हो गया?" वह बिलख-बिलखकर रोता हुआ बोला, "पिताजी."

सुब्बण्णा ने पूछा, "क्या बात है सिद्धे गौड़ा?"

वे बोले, "यह बच्चा पिताजी, पिताजी, कहकर रो रहा है."

सुब्बण्णा का चेहरा फक हो गया. झट से उठकर उन्होंने लिंगा को आवाज दी. जंगल में 'लिंगा, लिंगा' की प्रतिध्वनि हुई, पर लिंगा कहीं दिखायी नहीं पड़ा. वे नाव की तरफ भागे. वह वहां भी न था. घोर अंधेरा ओढ़े गंभीर भयंकर और विशाल होकर बहती क्रूर नदी की ओर उन्होंने देखा. उनका दिल कांप उठा. आंखों से आंसू बह निकले. वे 'लिंगा-लिंगा' कहकर फफक पड़े. नागा भी लोट-पोटकर रो रहा था. तिम्मू और सीता भी रोने लग गये.

"हमारे घर की एक रोशनी चली गयी." वहां खड़े लोगों से कहकर सुब्बण्णा गौड़ा विलाप करने लगे. लिंगा की आकस्मिक और अनिरीक्षित मृत्यु पर सबको दुख हुआ.

किसी की भी समझ में न आया कि लिंगा कैसे नदी का शिकार हो गया. सुब्बण्णा ने इस आशा से कि कहीं लिंगा का अता-पता लगे, सारा किनारा खोजने को चार छः आदमी भेजे.

रामे गौड़ा ने सबसे नुग्गेहल्लि चलने की प्रार्थना की. रास्ते भर लिंगा के एकदम गुम हो जाने की बात की ही चर्चा करते और हैरान होते हुए सभी नुग्गेहल्लि पहुंचे.

सुबह हुई. वर्षा अभी थमी न थी. रात की गड़बड़ी से थककर चूर हुए सुब्बण्णा गौड़ा बिस्तर पर लेटे-लेटे रामे गौड़ा और सिद्धे गौड़ा के साथ पिछली रात घटी घटनाओं पर बातचीत कर रहे थे.

इतने में आंगन में शोर मचा, "लिंगा आ गया, लिंगा आ गया."

सुब्बण्णा उठकर बाहर भागे. रामे गौड़ा आदि भी उनके पीछे-पीछे भागे. तिम्मू और सीता भी नागा को खींचते हुए उस ओर भागे. वास्तव में लिंगा आ गया था. नागा भागकर 'पिताजी!' कहते हुए उससे लिपट गया. लिंगा के सारे कपड़े भीगे थे. शरीर कीचड़ से लथपथ था. बहुत थक जाने से वह कांप रहा था. उसे भीतर ले जाकर दूसरे कपड़े दिये.

बाद में सुब्बण्णा गौड़ा ने उसके बिस्तर के पास बैठकर पूछा, "लिंगा यह कैसे हो गया?"

लिंगा ने धीमे स्वर में कहा, "चप्पू चला रहा था मालिक, एक बार नाव झकोला खा गयी थी न तब फिसलकर नदी में जा गिरा. नाव पकड़ना चाहता था कि वह आगे निकल गयी. मैं थोड़ी दूर तक तैरकर और बहकर आगे आया. भगवान की दया से पांव के नीचे धरती मिल गयी. खड़ा हो गया. पानी कमर तक था. वैसे ही खड़ा रहा. सुबह होने पर नदी उतर गयी. आप के अन्न का ऋण अभी भाग्य में बदा था."

इस पर गौड़ा बोले, "अरे चप्पू चलानेवाला जब फिसलकर गिरा तो चप्पू नाव में कैसे रह गया?"

"पता नहीं मालिक, भगवान ही जाने." □

● **अनुवाद : बी. आर. नारायण**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोणार्क की मृत्यु

विष्णु दे

उड़ीसा के सूर्य मंदिर, कोणार्क की यात्रा कवि ने लगभग 1958 में की थी. उस काल में कोणार्क की दशा-दिशा पर कवि को चिंता हुई थी, उसी को आधार मानकर इस संस्मरण की रचना हुई, जो बंगला की एक साहित्यिक पत्रिका में उसी साल छपी भी!

संप्रति मुझको कोणार्क जाने का सुअवसर मिला था. स्थापत्यमूलक प्रस्तर-मूर्ति-शिल्प के लिए यह कोणार्क जगत विख्यात है. पाठक-समाज को यह बताने की जरूरत महसूस होती है कि सरकार के पुरातत्त्व विभाग के कार्यों को देखकर किस तरह से निराशा हुई थी. कोणार्क कई बार गया हूं. पिछले दशकों में बार-बार गया हूं और प्रत्येक बार मन में यह जानने की प्रबल इच्छा हुई है कि कब पुरातत्त्व विभाग इस अपूर्व मंदिर का अपने इंजीनियरों द्वारा जीर्णोद्धार करायेगा. इस बार जाकर देखा कि सरकार की तरफ से इसकी मरम्मत का काम चल रहा है, लेकिन कार्य की पद्धति को देखकर लगा कि यह महमूद गजनवी काल के अथवा प्राकृतिक ध्वंसावशेष के उद्धार कार्य की तरह. अत्यंत शोचनीय है!

हम एकदम भोर रात में पुरी से निकल पड़े थे, जिससे कि सात बजते-बजते पहुंच जायें और शाम को अंधेरा छाने तक वहां रुक सकें. इंस्पेक्शन बंगलो में एक कमरा, यथासमय व ठीक पते पर, पूर्व पत्र लिखने के बावजूद हमें नहीं मिला. क्योंकि एक कमरे में तो केंद्रीय सरकार के एक कर्मचारी महोदय पहले से ही प्रायः स्थायी रूप से विद्यमान थे—इस आशय की जानकारी उन्होंने स्वयं हमें दी थी. हमें इस बात की भी ताकीद कर दी गयी कि हमारा दल भारी होने की वजह से बंगलो के पीछे स्थित बरामदे और रसोईघर का उपयोग हमारे लिए वर्जित होगा. कर्मचारी महोदय ने यह भी बताया कि मंदिर से वापस आकर बहुत सारी फाइलों से उन्हें उलझना है, अतः संभव है उनको हमसे दिक्कत होगी तथा कार्य में बाधा पहुंचेगी. बहरहाल, वे मंदिर की तरफ गये, चहारदीवारी के निकट एक पेड़ के नीचे आध घंटा सुस्ताये. मैंने उनके इस कार्यकलाप को अपने परिवार के साथ वहां से गुजरते हुए देखा. उस बंगलो में दूसरे कमरे के निवासी ने अपने स्नानागार का उपयोग करने की अनुमति हमें दे दी. उस पेड़ के पास से गुजरते समय कर्मचारी महोदय ने थोड़ा झुंझलाते हुए कहा कि यह बंगलो हमें मिले, इसकी संभावना नहीं है, क्योंकि वे तथा एक दूसरे निवासी भी उसमें पहले से हैं और अभी रहेंगे. जब मैंने उन्हें बताया कि उस दूसरे निवासी ने हमें स्नानागार का उपयोग करने की अनुमति दी है तो उन्होंने साहिबाना अंदाज में अपनी बात समझाने की चेष्टा की.

अतः जून महीने की उस चिलचिलाती धूप में बंगलो की तरफ गया. फिर उसी तेज झुलसा देनेवाली गर्मी में लौटकर पिपली-कोणार्क के रास्ते के किनारे बने झोपड़ीनुमा होटल के कमरे तक आना पड़ा. सौभाग्य से उस होटल में कमरे, हमें केवल उसी दिन के लिए भाड़े पर मिल गये थे.

खैर, जब इस बंगलो के स्नानागार में बच्चे नहा रहे थे, तभी पुरातत्त्व विभाग की मूर्ति लेकर वे उपस्थित हुए. थोड़ी देर तक आराम फरमाकर उन्होंने अपने कमरे के दरवाजे, खिड़कियां बंद कर लीं और संभवतः कमरे के अंधकार में अपनी फाइल में लीन हो गये, जिसे इतालियन बोलते हैं—'सियेस्ता' और बंगाली—'भातघूम'. लोग ऐसा न समझें कि मैं उन्हें कोणार्क की निर्जनता और सौंदर्य के उपभोग से थककर इस तरह से निवास करने के लिए दोष दे रहा हूं.

उपर्युक्त बातें मजेदार भले ही हों, लेकिन मुख्य नहीं हैं; फिर भी इस घटना से इतना तो स्पष्ट है कि जीर्णोद्धार का कार्य किस तरह चल रहा है. सरकार ने किसी को ठेके के आधार पर यह कार्य दे रखा है या नहीं, इसमें मेरी रुचि नहीं है, पर कार्य की पद्धति और परिणाम को देखकर क्षोभ होता है. बेहद बेवकूफ की तरह एक चौकोर चहबच्चे के आकार की चहारदीवारी बनायी जा रही थी, जो तेज झंझावात को कतई रोक सकने में असमर्थ होती, जबकि इसके निर्माण में खर्च कम नहीं हो रहे. मंदिर की नींव बनाने के लिए यह बेमाना-बेमतलब निर्माण था. मंदिर की जिस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा में ज्यादा नुकसान हुआ था, उस तरफ पूरी खुदाईवाले पत्थर फेंककर उस जगह को चौकोर पत्थर से भर दिया गया था. अतः बहुत सारी टूटी मूर्तियां तथा खुदाई के पत्थर चहारदीवारी के बाहर ढेर करके रखे हुए थे.

यही तौर-तरीका कमोबेश हर तरफ दिखाई पड़ रहा था. यहां तक कि दूसरे मंदिर की भी, जैसे नाटमंदिर की यही दशा है. इस मंदिर के दोनों तरफ की अनावश्यक सीढ़ियों को देखकर आश्चर्य होता है. पुरानी सीढ़ी रहने के बावजूद व्यर्थ ही दूसरी सीढ़ी का निर्माण हुआ है, जिसका परिणाम यह हुआ कि दीवार की अधिकतर मूर्तियां उसके नीचे दब गयी हैं. ध्यान से देखने पर पता चला कि सरकार बहादुर ने बहुत सारी जगहों पर बड़े-बड़े पत्थर तथा लगातार टंकित मूर्तियों को पूरी तरह ढंक रखा है, जिससे कि व्यर्थ व अनावश्यक सीढ़ी के नीचे मूर्तियों तथा प्रस्तर आकृतियों की श्रृंखला का आधा हिस्सा बेतरतीब बाहर निकला हुआ है. श्रेष्ठ मूर्तिशिल्प के कई बेहतरीन अंशों के साथ सुंदर मूर्तियां भी धूप और समुद्र के झंझावात में बेकार पड़ी हैं, अजायबघर में भी इनके लिए कोई स्थान नहीं है. हरे मूंगे से जड़ित, एक दुर्लभ पत्थर, जो प्रवेश द्वार का अंश है—पेड़ के नीचे औंधा होकर पड़ा है, माथा नीचे तथा पैर ऊपर करके. इस तरह बहुत सारी मूर्तियों को उनके निर्दिष्ट, उपयुक्त स्थान से खींचकर इस तरह अन्यत्र फेंक दिया गया है कि भविष्य में कोई उनके अस्तित्व के बारे में निर्णय नहीं ले सकता और जिन्हें उठा-उठाकर चहारदीवार के बाहर फेंका गया है, उनका परिचय तक मिलना असंभव दीखता है!

उड़ीसा का शिल्प तथा शिल्पगत नमूनों का पूरे भारत में आदर-विस्तार हो, इसमें हमें आपत्ति नहीं है. कुछ लोग इनके आयात-निर्यात पर रोकथाम के बावजूद इस व्यापार से अपनी जीविका चलायें, यह भी चिंता का विषय नहीं है. उनकी तरफ से यह तोड़-फोड़ उनके व्यापार के लिए भले ही लाभजनक हो, लेकिन जो हम इस स्थापत्य तथा मूर्तिशिल्प को चाहते हैं, पसंद करते हैं और उन पर गर्व करते हैं, हमारे लिए बेहद कष्टदायक हैं.

पुराने स्थापत्य व प्रस्तर मूर्तिशिल्प के प्रति सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए कभी हमने जॉर्ज नैथनिअल कर्जन को बताया था, देशप्रेमी सरकार का आसरा लिया था, क्योंकि मरम्मत होने के नाम पर मंदिर में तोड़-फोड़ का काम चल रहा था. अब तो सर्वदा के लिए मंदिर को तोड़-फोड़ दिया गया और भविष्य में किया जायेगा. सर्वदा के लिए ही क्योंकि जिन सब मूर्ति शिल्प का नमूना नष्ट करके फेंक दिया जा रहा है, उसका फिर से कभी निर्माण करना संभव नहीं है. मूर्तिशिल्प के इन नमूनों के अतुलनीय पत्थर ज्यादा टूट-

हरे मूंगे से जड़ित एक दुर्लभ पत्थर, जो प्रवेश द्वार का अंग है, पेड़ के नीचे औंधा होकर पड़ा है, माथा नीचे तथा पैर ऊपर करके. इस तरह बहुत सारी मूर्तियों को उनके निर्दिष्ट स्थान से खींचकर इस तरह अन्यत्र फेंक दिया गया है कि भविष्य में कोई उनके अस्तित्व के बारे में निर्णय नहीं ले सकता!

फूट गये हैं, ऐसा अगर कार्यकर्त्ता महसूस करते हों तो उपयुक्त रसायनिक पदार्थों से अथवा जो अंश टूट गया है, उन जगहों पर पत्थर व सीमेंट लगाकर उनको सहज ही बचाया जा सकता है. ऐसा नहीं करके उन्हें फेंक दिया जा रहा है, यह दुखद है. ड्रीलिंग मशीन तथा ग्राइंडिंग मशीन की कर्कश आवाज से तो पता चलता है कि कितने मेहनत से लगकर इनका पुनरोद्धार किया जा रहा है.

इस तरह के मरम्मत की वजह क्या है, इस पर दो तरह की धारणाएं पक्की हो सकती हैं—सर्वप्रथम यह कि संभव है सरकार बहादुर सम्राट द्वितीय जॉर्ज की तरह अथवा काला पहाड़ की तरह मूर्तिशिल्प व चित्रकारी एवं उनके शिल्प को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, या नहीं तो वे सोचते हैं कि विशाल निर्माण तथा स्थापत्य कला के लिए कोणार्क मंदिर प्रसिद्ध है, इन दीवारों पर लगी मूर्तियों का कोई मूल्य नहीं है.

स्वयं अपनी नजर से देखने पर कोई भी समझ सकता है कि मनुष्य के सोच व कल्पना के अभाव में समुद्र तथा सूर्य का यह प्रतीक कोणार्क एक पत्थर का स्तूपमात्र है; जीवन और जीवन-दृष्टि को मूर्त करनेवाले चित्र वहां पर थे, वे सब शीघ्र ही कपोल-कल्पित कथा का रूप ले लेंगे. नाचनेवाले नहीं नाचेंगे, बजानेवाले नहीं बजायेंगे. प्रेमी अपने में डूब जायेंगे. जीवन का वह विशाल चित्र, मनुष्य, जानवर, पक्षी, पेड़-लता, सब के सब मेरी तरह आदमी की स्मृतियों में रह जायेंगे. वही हाथी-घोड़ा, वही बराह, हंस, मयूर, ऊंट, जिराफ कहां रहेंगे तब? घर-छोड़ परिवार तथा शिकारी की तब क्या दशा होगी?

सुर-सुंदरियां और बाजारू कन्याएं क्या सुदूर काल तथा स्थान की तरफ इसी तरह अपलक पलक-पांवड़े बिछाये रखेंगी अपने देह-महात्म्य और सौंदर्य को लेकर? यह तो लगता है, केवल ईश्वर या सरकार को पता है.

और यही दुखांत दशा उस विख्यात विज्ञापित 'कैपिटल' अर्थात् इससे जुड़े भुवनेश्वर की है. राजारानी का नयन मनोहारी लाल रंग अब और नहीं, मटमैले रंग के काई भरे मंदिर को राजारानी नाम से पहचाना नहीं जाता. यहां भी खुदे पत्थर को हटाकर छोटे नये निर्मित फेंस के उस पार फेंक दिया गया है. उसकी जगह पर रखे गये हैं बहुतेरे टूटे-फूटे पत्थर. रवींद्रनाथ ने एक बार भुवनेश्वर देखकर लिखा था, "देखो, मंदिर की दीवारों पर जगह-जगह 'चित्रात्मक खुदाई'! कहीं भी खाली नहीं है. जहां भी नजर पड़ती है, अथवा नहीं पड़ती है, सब जगह शिल्पी ने अथक कोशिश करके इन्हें रचा है."

सरकारी कोशिश पर नजर जानेवाली बात निरंतर कम होती जा रही है. यह क्या हमारे जीवन की सारी दिशाओं का बचकाना तोड़-फोड़ और स्वेच्छा भाग-दौड़ का परिणाम नहीं है? □

● **अनुवाद : सिद्धेश**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी चंपा का वर

उमाशंकर जोशी

गुजराती कहानी

क्या हमारे समाज में संबंध केवल रिश्तों तक ही सीमित रहते हैं? क्या होता है तब जब रिश्ते और संबंध एक दूसरे के विरुद्ध द्वंद्व की स्थिति में आ खड़े होते हैं? मां, बेटी और दामाद के बीच के रिश्तों और संबंधों का टकराव प्रस्तुत कर रही है गुजराती के वयोवृद्ध रचनाकार उमाशंकर जोशी की यह कहानी.

इस कहानी के अतिरिक्त हम उनकी एक कविता 'हीरोशीमा' भी अगले पृष्ठों पर दे रहे हैं. यह कविता उन्होंने १९४६ में लिखी थी.

लक्ष्मी अभी उल्लासपूर्ण जीवन की देहरी पर पांव रख ही रही थी कि उसका भाग्य फूट गया. एक दिन अचानक उसके पति को बुखार आया और उस वैवाहिक जीवन को छोड़कर चल दिया, जिसका आनंद उसने पूरे दो वर्ष भी नहीं भोगा था. लक्ष्मी के लिए तो सारी दुनिया होनी-अनहोनी हो गयी. बस, उसके व्यर्थ हुए प्रफुल्ल सौंदर्य की कोंपल जैसी चार महीने की चंपा ही थी, जो उसे मृत्यु का आवाहन करने से रोकती थी.

हर कोई कहता कि लक्ष्मी का पति बिलकुल औंधी खोपड़ी का था. उसके नसीब में लक्ष्मी का रूप लिखा ही नहीं था. इस प्रकार लोग मृतक की निंदा के बहाने जीवित को प्रशंसा अर्पित करते थे. कोई वहमी आकर चुपके से यह भी कह जाता कि किसी दुश्मन ने 'मूठ' चलवा दी होगी, नहीं तो तेरे पति के तो नाखून में भी कोई रोग नहीं था. उसके सुख से कितने ही लोगों को ईर्ष्या थी.

चाहे कुछ भी हो, पर इतनी बात तो सच थी कि लक्ष्मी के विवाह से पहले गांव का हर छोटा-बड़ा आदमी अपनी योग्यता-अयोग्यता का विचार किये बिना लक्ष्मी का पति बनने को तैयार था. इसमें दोष किसी का नहीं था. दोष यदि था तो लक्ष्मी के सुनहरी झाईवाले घने-लंबे बालों का, आंखों के ठंडे तूफान का, और उस मुस्कान का जो यदा-कदा ही उसके होंठों पर खिलती थी, लेकिन इसीलिए दुर्दम्य उत्पात भी मचा देती थी.

फिर भी उसका अभागा पति असमय ही चल बसा. वे भरपूर घुंघराले बाल जिस दिन उसे मिले थे, उस दिन उन्हीं बालों की एक-एक लट से मानो फांसी की-सी यातना पाकर अनेक निराश हृदय टूट गये थे. लेकिन उस अभागे से खुद भी तो यह सुख नहीं सहा गया. और आज वे ही बाल लक्ष्मी के सिर से इस तरह काट डाले गये हैं, जैसे फल वाले वृक्ष पर छायी अमरबेल को नोचकर फेंक दिया जाये. उसके हाथों से कंगन उतार दिये गये हैं. पहले ये ही कंगन जरा भी खनक उठते थे तो लोगों के दिल इस तरह हाहाकर करने लगते थे, जैसे दो बड़े-बड़े हवाई गोले आ टकराये हों.

लेकिन यह सब समाप्त हो गया.

किसी को कुतुहल होता था कि लक्ष्मी इस वैधव्य को कैसे सह पायेगी तो नारी जगत का कोई जानकार प्राणी लक्ष्मी को वैंधव्य सहन करने के उपाय बताने को भी व्यग्र हो उठता. किसी हमदर्द विधवा से लक्ष्मी का शोक सहा न जाता तो कह उठती, "तू अपने लिए ये व्रत-उपवास करती है तो भले ही कर, लेकिन इस छोकरी ने क्या पाप किया है कि इसे भी साथ. . ."

"क्या तू ही एक अनोखी विधवा हुई है? औरत का जन्म लेने पर विधवा भी कभी होना ही पड़ता है. . ."

"और हां, दुख तो सभी को है. किसे नहीं है? देखती नहीं है, बहुत-सी सुहागिनें भी नरक जैसी आफत भोगती हैं और कोई-कोई विधवा होकर भी सुख से उमर बिताती हैं?"

"अब तुम लोग यह पंचायत बंद भी करोगी? विधवाओं और सधवाओं की तमाम दुनिया भर की बातें लेकर बैठ गयी हो? रुला-रुलाकर बेचारी को अधमरी कर दिया है!"

लक्ष्मी ने खुद भी जरा-सा घूंघट खोलकर देख लिया कि यह कहने वाली कौन है. फिर मन ही मन कहा—अच्छा हुआ कि इसने सबको चुप कर दिया.

"अच्छा बिटिया, इस छोकरी पर दया करना और ज्यादा रोना मत. सुख थोड़ा और जिंदगी पूरी होती है."

"अब जाओगी भी तुम काम-काजवालियो?" कहकर उस बहादुर औरत ने फिर से सबको डांटा और भगा दिया. और फिर, वे सब तो क्या रोयी थीं, रामी इस तरह लक्ष्मी के कंधे पर सिर रखकर हिचकियां ले-लेकर रोयी कि अपना रोना शायद खुद भी उसे अजीब लगा होगा. थोड़ी देर चुप रहकर उसने लक्ष्मी का घूंघट अपने हाथों से हटाया और उसके चेहरे को दोनों हथेलियों में भरकर एकटक उसकी ओर देखने लगी. लक्ष्मी व्याकुल होकर बोली, "उन सबको तो तुमने डांटकर चुप कर दिया और खुद इतना रो रही हो?"

"तू नहीं समझेगी लक्ष्मी." कहकर रामी कांपती पलकों से लक्ष्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर देखने लगी. वह खुद तीस साल से विधवा थी. उसके कोई बच्चा नहीं था. उसका पति भी बचपन में मर गया था.

"क्या देख रही हो?" लक्ष्मी ने पूछा और फिर जरा हुलसकर कहा, "इतने अचरज से तो वे भी मेरी तरफ नहीं देखते थे." और इतना कहते-कहते रामी की हथेलियों पर लक्ष्मी के चेहरे के स्नायु इस तरह कांपने लगे, जैसे उबल रहे हों. रामी ने हाथ हटाते हुए कहा, "इसीलिए तो कहती हूं लक्ष्मी, रो मत. देख, नहीं तो मैं भी फिर से रो पड़ूंगी." और फिर पल्लू से लक्ष्मी के आंसू पोंछते-पोंछते एकदम पुरुषों जैसी आवाज में बोली, "विधवा की गति विधवा जाने. तुझे तो अब ही अकेले जीना है, मैं तो कितने बरसों से अकेली जी रही हूं. तू घबराना मत."

तभी नन्हीं-सी चंपा ने पालने में कुनमुनाकर करवट बदली, इसलिए दोनों का ध्यान उधर चला गया.

"लोक निंदा? अरी लोग हैं कौन? हम ही तो लोग हैं. घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं. लक्ष्मी. धीरे-धीरे तुझे सबके बारे में मालूम हो जायेगा."

पालने में चंपा ने जरा ऊं-ऊं की. लक्ष्मी अब तक रामी की मुंहफट बातों से बेचैन होकर चुपचाप बैठी थी, अब उसने पालने की ओर इशारा किया और आंखें मींच लीं. जैसे चक्कर आ रहा हो.

चंपा की मां.

लोगों ने देखा और कहा, "भई विधवा तो आज तक एक लक्ष्मी ही देखी."

"पति मर गया तो लक्ष्मी भी मर गयी?"

"कहां वह पहलेवाली रूपरंग की अंबार लक्ष्मी, और कहां यह बुढ़िया!"

पुतलियों पर पलकों के पर्दे ढल गये और असली तेज उनके पीछे छिप गया. निरर्थक होंठ बेचारे इस तरह चुपचाप खेलते रहते जैसे उन्हें कभी पास नहीं आना चाहिए—जैसे भरी हुई बस में परायी पत्नी और पराया पति मन ही मन एक समझौता-सा करके पास-पास एकदम संकुचित होकर बैठे रहते हैं. शरीर के अणु-परमाणु पहले जहां एक थे, वहां अब जैसे जबर्दस्ती दो-दो, तीन-तीन समा गये थे और ऐसा लगता था मानों साड़ी में शरीर जैसा कुछ हो ही नहीं.

दुर्गा का किशोर दो-चार बार चक्कर लगा गया कि कोई कामकाज तो नहीं है. वे लोग भी जब-तब आते रहे, जिन्हें रामी ने लक्ष्मी की जिम्मेदारी सौंपी होगी. लेकिन लक्ष्मी अपने घर में बैठी या तो जानवरों का गोबर-कूड़ा साफ करती हुई मिलती, या चौका-बर्तन करती हुई, या अनाज फटकती हुई. और देखनेवाले को उसकी संपूर्ण आकृति में से केवल नापसंदगी ही जाहिर होती दिखाई देती. दिन-प्रतिदिन वह अपने मन को कोल्हू में पेरती रहती थी. काहे के पुरुष, काहे की स्त्रियां, काहे की दुनिया. लक्ष्मी को तो वह खुद भी भली और उसकी छोटी-सी चंपा भली. वह मानो चंपा की हम उम्र होकर उसके साथ जिया करती. चंपा जब तक दो-तीन साल की हुई, लक्ष्मी बीस-तीस बरस बूढ़ी हो गयी. रामी ने ही एक दिन नन्हीं 'चंपली' को लाड़ से चपत लगाते हुए कहा, "रांड, तू ही लक्ष्मी को खा गयी."

इसके बाद तो लक्ष्मी बाहर का काम भी करने लगी. घर में जानवरों के साथ जानवर बनकर गाय-भैंस के दूध से थोड़ा खर्च निकालती और बाहर मौसम के हिसाब से घास, लकड़ियां, महुए आदि बटोरकर बेच लेती और कुछ पैसा कमा लेती. दूस ों के घर कुटाई-पिसाई तो खैर करती ही थी.

इस तरह लक्ष्मी स्वयं टूटती-बिखरती रही, लेकिन चंपा को फूल की तरह खिलाने की चेष्टा बराबर करती रही.

एक के बाद एक वर्ष कैसे बीतते चले गये, उसे पता ही नहीं चला. अपनी सारी आशाएं उसने बेटी पर लगा रखी थीं. कभी-कभी तो लक्ष्मी ऐसे काम कर बैठती कि चंपा के सिवाय सबको लगे कि लक्ष्मी पागल है. किसी पुरुष के बारे में शायद ही कभी बात की हो उसने, लेकिन चंपा के होनेवाले पति के बारे में वह अकसर उल्लासपूर्वक बातें करने लगती. चंपा की सहेलियां एकांत में चिकोटियां काटकर चंपा को जितना सताती होंगी, उससे कहीं अधिक सखी-भाव से लक्ष्मी उसे सताती, और फिर संतोषपूर्वक कहती, "तेरी शादी हो जाये, बस इसीलिए जी रही हूं."

एक बार किसी ने कहा —"लक्ष्मी, चंपा है तो सचमुच तेरी ही बेटी. बिलकुल वैसा ही रंग-रूप निकला है, जैसा तेरा था."

चंपा सुन रही थी. वह अपनी मां की ओर देखने लगी और मां के साथ अपनी तुलना होते देख मन ही मन निराश भी हुई.

एक रात लक्ष्मी सोने से पहले अंधेरे में लेटी-लेटी चंपा को चिढ़ा रही थी—"हां-हां, काला. सत्तर बार काला. मैं भी काली हूं और तेरा बाप भी काला था. तू कहां से गोरी निकल आयी? याद रख, तेरे लिए मुझे कोई काला ही लड़का ढूंढ़ना है." पिछले पंद्रह वर्षों से बेचारी ने किसी पुरुष की ओर ठीक से देखा भी नहीं था, किसी से बात भी शायद ही कभी की हो. मगर अब, जबकि सभी लोग चंपा के होनेवाले पति की बात करते नहीं थकते थे, तो लक्ष्मी इस विषय में सोचे बिना कैसे रह सकती थी. और चंपा की तो वह सच्ची सहेली थी, इसलिए जब भी वे दोनों कामकाज से जरा भी फारिग होतीं, चंपा के भावी पति के बारे में गप्पें लड़ाने लगतीं. चंपा के लिए तो यह सब कुछ नया-नया, उमंग भरा, उल्लास भरा था, लेकिन लक्ष्मी के लिए ऐसा जैसा उसके जीर्ण-शीर्ण दुर्ग और अधिक क्षीण होते जा रहे हों.

चंपा वैसे बहुत उधमी थी, लेकिन मां के सामने जरा कम बोलती थी. एक रात मां-बेटी दीया बुझाकर सोने लगीं तो लक्ष्मी ने कहा, "उस बुड्ढे कुबेर ने भी अपने लड़के के बारे में पुछवाया था. . . . एं? हां बोल, क्या कहती है?" उत्तर न मिलने पर उसने चंपा के सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा और चंपा ने इनकार में सिर हिलाया तो लक्ष्मी मानो चिढ़ उठी. बोली, "ऐसे कहेगी तो क्या तेरे लिए कोई नया वर पैदा कराना पड़ेगा? जरा समझ से काम ले."

मां से मिलने आनेवाली औरतें चंपा से कहा करतीं, "ओ चांपली, ऐसी मां इस कलजुग में मिलनी मुश्किल है, हां. इसने तुझे अपनी जान जोखम में डालकर बड़ा किया है. इसने तुझे सारा रूप और घर-बार दिया है, खुद कष्ट उठा-उठाकर तेरे लिए सब अच्छा ही किया है. यह जैसा कहे, वैसा ही करना. ऐसी मां आज तक किसी को नहीं मिली. बेटी के लिए इसकी तरह कौन मरता है?"

चंपा भी समझदार और सयानी लड़की थी.

"तो मां, तुम ही बताओ न."

"मैं क्या बताऊं?"

"तो और कौन बतायेगा. तुम आखिर मां नहीं हो?"

"मुझसे ही कहलवायेगी? तो ठीक है. लेकिन मुझे छोटी उमर के अनपढ़ नौजवान से डर लगता है . . . वो गौरी थी न, उसका पति अभी-अभी रंडुवा हुआ है— समझदार है, इज्जतदार है, दुनियाभर में घूमा हुआ है और पैसेवाला भी है."

"इतना बड़ा?" चंपा के मुंह से निकल गया.

"बस, अब बोलूं तो कहना. . . तुझे छोटा ही चाहिए तो जा, सुंदर मौसी के देवर के यहां अभी कल ही लड़का हुआ है. उससे कर ले."

हंसी की बात न होने पर भी मां-बेटी दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं.

गांव के सब लोगों ने वाह-वाह की.

"मां हो तो ऐसी, और बेटी हो तो ऐसी."

"लक्ष्मी ने बेटी की जिंदगी सुधार दी."

"दूजिया वर को ब्याही है, बहुत सुख पायेगी."

"बेचारी लक्ष्मी अब अकेली पड़ गयी. अब क्या जिंदा रहेगी."

लेकिन लक्ष्मी अकेली नहीं पड़ गयी थी. अब उसे पैसा जोड़ने की जरूरत नहीं रह गयी. सुबह-शाम अपने घर का दूध वह मील भर दूर दामाद के घर पहुंचा देती थी. घी-मक्खन भी जब-तब भेजती रहती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

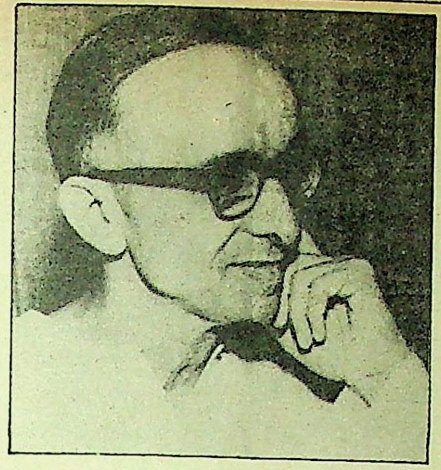

▣ उमाशंकर जोशी

1967 के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उमाशंकर जोशी मूलतः कवि हैं. यह पुरस्कार इन्हें इनके काव्य संग्रह 'निशीथ' के लिए ही दिया गया था. कविता और कहानियों के अतिरिक्त श्री जोशी ने नाटक उपन्यास, निबंध, आलोचना आदि भी लिखे हैं.

या खुद ही जाकर दे आती. कभी-कभी दामाद भी आकर ले जाता.

दामाद पूनमलाल अच्छा आदमी था. बहुत ही मिलनसार. और लक्ष्मी से तो उसका दो तरह का संबंध था. उसकी सास तो वह थी ही, लेकिन गौरी के बचपन की सबसे अच्छी सहेली भी थी. इसलिए गुजरी हुई गौरी के बारे में वे दोनों कभी-कभी घंटों बातें करते रहते. लक्ष्मी बार-बार गौरी के बचपन के मजेदार किस्से सुनाती और वह और पूनमलाल, दोनों गौरी के उस सुंदर अतीत में लीन हो जाते.

कभी-कभी गली में से गुजरता हुआ कोई पुकार लेता, "क्या गपशप हो रही है लक्ष्मी? कौन आया है?"

"अरे. . . "लक्ष्मी भरी-भरी आवाज में उत्तर देती, "मेरी चंपा का वर."

घर का कोई छोटा-मोटा काम होता तो पूनमलाल जब-तब आकर कर जाता था. लक्ष्मी अब फुरसत में रहती इसलिए उसे कोई न कोई नया काम सूझ भी जाता. पड़छत्ती टूट गयी थी, नयी डलवा ली, दरवाजा ठीक से बंद नहीं होता था, उसे ठीक कराया. पंसारी ज्यादा पैसे मांगता था, उसका हिसाब बराबर करा लिया. तीन ब्यांत वाली एक गाय थी, उसे ठीक-ठीक पैसों में अच्छी जगह बेच दिया.

"यह परछत्ती कब डलवायी, लक्ष्मी?"

"किसने लाकर दी?" दूसरी ने पूछा.

"और कौन लायेगा री? मेरी चंपा का वर."

"भाग्यवाली हो बहन. नहीं तो किसी के जमाई ऐसे नहीं होते."

कभी-कभी जब वे दोनों बातें कर रहे होते और कोई दरवाजों में से झांककर जरा मुस्कराता हुआ चला जाता तो लक्ष्मी को लगता, मैं कितनी खुश हूं. वह सपने में भी न सोचती कि कोई व्यंग्यपूर्वक हंसता होगा. क्यों सोचती? क्या उसे अपने दामाद के साथ भी खुलकर बातें करने का हक नहीं है? दुनिया ने परिवार-व्यवस्था में ऐसे कितने ही अधिकार स्थापित कर रखे हैं, जिनके लिए कोई कायदा-कानून नहीं है. और उन्हें लेकर बड़बड़ाने का अधिकार भी किसी को नहीं है. और क्या पिछले पंद्रह वर्षों तक लक्ष्मी ने किसी पुरुष से बात की थी? पूनमलाल तो उसका दामाद है—उससे तो वह बात करेगी और जरूर करेगी.

लेकिन यह तो कहता भी कौन है कि बात मत कर? और लक्ष्मी बातों में ऐसे खो जाती जैसे न जाने कितने वर्षों से, न जाने कितने जन्मों से उसने किसी से बात न की हो. बातों में उसे समय का ध्यान भी न रहता.

"अच्छा, अब अपनी बात पूरी करो. मुझे देर हो रही है. . . तुम कह रही थीं कि तुम और वह अमराई में गयीं." पूनमलाल ने खड़े होकर अंधेरा होने से पहले ही घर पहुंच जाने की तैयारी करते हुए अधूरी बात का सूत्र लक्ष्मी को पकड़ा दिया.

"देर तो हो ही गयी है. अंधेरे में कैसे जाओगे?"

"रोज ही जाता हूं, आज कोई नयी बात है? चलो, बात पूरी करो . . हां, तुम और वह अमराई में पहुंची फिर?"

"फिर . . . . मैंने एक पत्थर उठाकर आम के पेड़ पर फेंका. कोई कैरी तो नहीं गिरी, पर दो चूड़ियां आपस में टकराकर टूट गयीं."

"हां," जाने की उतावली में कहानी में कोई विशेष आनंद न आते हुए भी पूनमलाल ने हुंकारा भरा, "फिर?"

"फिर गौरी ने भी एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर फेंका. फेंका तो सही, लेकिन पत्थर फिका नहीं और धब्ब से नीचे गिर पड़ा. गौरी जोर से चिल्लायी-'हाथ उतर गया है रे!' और बाड़ की तरफ देखती हुई नीचे बैठ गयी. बाड़ के उस तरफ कोई लड़का जैसा जा रहा था, लेकिन उसने शायद सुना नहीं होगा. मैंने गौरी का हाथ चढ़ाने की कोशिश की, लेकिन ज्यों ही छूने लगूं कि गौरी चीख पड़े. अच्छा हुआ कि इतने में ही रघा किसान का लड़का उस तरफ आ निकला और उसने दो ही झटकों में हाथ ठीक कर दिया. साथ में चार कैरियां भी दीं. लेकर हम ज्यों ही चले कि मेरी बायीं कोहनी पर एक पत्थर आकर लगा. लगता तो गौरी को, लेकिन वह जरा चूक गयी. रघा किसान का लड़का तो तालाब की ओर जा रहा था और पत्थर आया था बाड़ के उस पार से. उस दिन मैं जितना रोयी, उससे ज्यादा गौरी रोयी. रोती जाये और बाड़ की तरफ देखती जाये. छोटी थी, लेकिन कैसी भली थी वह."

पूनमलाल स्तब्ध होकर खड़ा ही रह गया था. उसके मन में अपार वेदना हो रही थी . . . . इसका मतलब है, गौरी ने मुझसे झूठ बोला था? उसकी आंखों में सारी घटना फिर से कौंध गयी—पूनमलाल को बाड़ की तरफ जाते देखकर गौरी ने उसका खींचने के लिए झूठ-मूठ ही चीख-पुकार मचा दी थी. पूनमलाल समझ गया कि चीख-पुकार झूठी है और गौरी अकेली भी नहीं है, इसलिए वह कोई ध्यान दिये बिना आगे चल दिया. लेकिन मुड़कर देखे बिना भी रहा नहीं गया और देखा कि टीले पर घनी अमराई के पीछे सूरज बस डूबने ही वाला है और रंग-बिरंगे बादलों की पृष्ठभूमि में एक मामूली किसान के लड़के का हाथ पकड़े वही गौरी खड़ी है. जिसके साथ अगले वसंत में पूनमलाल की शादी होनेवाली है. पूनमलाल का खून खौल गया और उसे यही सूझा कि पत्थर मारकर वह उस हाथ को तोड़ डाले. पत्थर मारकर वह भाग गया. बाद में गौरी का हाथ सही सलामत देखकर मन ही मन सोचा था कि उसका निशाना चूक गया होगा इस बात की उसे खुशी भी हुई थी. बाद में जब वह गौरी से इस घटना के बारे में पूछता तो गौरी पीठ दिखाकर कहती, "पत्थर यहां आकर लगा था. अगर सिर में लगता तो कैसा अच्छा होता. दौड़े-दौड़े किससे शादी करने जाते?"

यह सब याद करते समय पूनमलाल गौरी के बारे में कम, लक्ष्मी के बारे में अधिक सोच रहा था. गौरी के बारे में वह इतना ही सोच पा रहा था कि गौरी ने यह बात क्यों छिपायी कि मैंने अनजाने में लक्ष्मी को पत्थर मार दिया था? उसे उन दिनों की लक्ष्मी याद आयी. यह भी याद आया कि उन दिनों लक्ष्मी की ओर देखने का साहस भी उसमें नहीं था. लक्ष्मी का अगर पता चल जाता तो यह मानिनी लड़की ब्याह कर डालती? उसने कल्पना की. गौरी उसके चित्त से हट गयी. . अरे, मैंने ऐसी सुंदर लक्ष्मी को पत्थर मार दिया था. . और मील भर दूर अपने घर में दीया जलाती हुई चंपा तो इस समय उसे याद भी न आयी. उसके दीये के उजाले में तो वह चाहे जितनी देर से घर लौट सकता था. . इस समय तो उसे यही लग रहा था कि यह बात वह कैसे कहे कि पत्थर मारनेवाला मैं ही था? बात मामूली-सी थी, लेकिन फिर तो ऐसी कौन-सी बात है जो महत्वपूर्ण हो? वह तो घटना में है. और घटना मामूली नहीं थी.

"झूठ बोलती हो तुम. पत्थर उसी को लगा होगा, इसीलिए वह रोयी होगी." कुछ न सूझा तो उसने जो मुंह में आया, कह दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्जक कलाकार ध्यान दें!

बाल विकास चिह्न प्रतियोगिता

समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 'समन्वित बाल विकास सेवा' योजना के लिए चिह्न (लोगो) प्रतियोगिता के लिए प्रविष्टियां आमंत्रित करता है।

अभी इस कार्यक्रम की 1100 परियोजनाएं देश में हैं। सातवीं योजना के दौरान इसके कार्यक्रमों का आशाजनक विस्तार किया जाएगा।

चिह्न (लोगो) का डिजाइन स्पष्ट, आकर्षक एवं अभिव्यक्तिशील हो ताकि पत्राचार के लिए प्रयोग में लाया जा सके तथा इसका बड़ा आकार पैनल आदि पर प्रदर्शित किया जा सके।

सबसे अच्छी प्रविष्टि को 5000 रु. का नकद पुरस्कार दिया जाएगा। इसके अलावा 1000 रु. प्रत्येक के तीन सांत्वना पुरस्कार भी हैं।

प्रविष्टियां प्राप्त करने की अंतिम तिथि 31 जनवरी 1985 है।

स० ब० वि० सेवा योजना के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने लिए

श्री के० एल० गुप्ता

अवर सचिव, समाज कल्याण मंत्रालय, शास्त्री भवन, नई दिल्ली (दूरभाष-382683) को लिखें। इसी पते पर प्रविष्टियां भी भेजें।

डीएवीपी 84/215

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं-नहीं, मैं झूठ क्यों बोलूंगी? देखो, अभी तक . . ."और लक्ष्मी ने अपनी अंगिया की बांह जरा ऊंची करके, कोहनी से जरा ऊपर चोट का निशान दिखाया, "देखो, यह निशान अब भी है."

"कुछ चिपक गया होगा, जख्म जैसा तो नहीं लगता." कुछ समझे बिना ही पूनमलाल ने कह दिया.

अंधेरा बढ़ता जा रहा था, लेकिन बातों में व्यस्त लक्ष्मी ने अभी तक दीया नहीं जलाया था. पूनमलाल दरवाजे के पास खड़ा था. वह उसके पास जाकर बोली,"देखो न, मैं झूठ क्यों बोलूंगी?" पूनमलाल ने उसकी तरफ बढ़ते हुए कहा, "क्या है? न घाव है, न कुछ." लक्ष्मी कोहनी के पीछे का हिस्सा दिखाने के लिए एक हाथ मोड़े हुए खड़ी थी, दूसरे से वह अंगिया को ऊपर उठाए हुए थी, और ऐसा लगता था जैसे शरीर से बाहर की किसी चीज को पकड़े खड़ी हो. लेकिन जख्म को सहलाने के लिए पूनमलाल ने प्रयत्नपूर्वक उंगलियां फिरायीं, तो कहा, "नहीं-नहीं, चोट तो लगी नहीं है." लक्ष्मी के संपूर्ण शरीर के अणु-अणु ने इन शब्दों को सुना.

बाहर गली में से गुजरती हुई बुढ़िया रामी ने अचानक आवाज दी, "लक्ष्मी!" और फिर जैसे बहुत जल्दी में यही हो, अंदर झांके बिना ही चली गयी. हाय!

बरसों तक लक्ष्मी अपने जीवन को चंपा से भरे रही थी. जीवन के अंतिम वर्ष उसने चंपा के वर से भर लिये. गौरी की बातों में उसने काफी समय गुजार दिया था, लेकिन अब उन बातों के सहारे अधिक समय नहीं कट सकता था. चंपा का सहारा सच्चा और मजबूत था. चंपा के नाम से, उसके खयाल से वह अपना जीवन भरा-भरा रखती थी. और अब वह अपने नाम से, अपने बारे में सोची हुई बातों से अपने जीवन को भरने लगी. उसने अपने मन को वैसा ही रहना सिखा दिया था जैसे समाज के प्रवाह में बहते रहना पड़ता है. कोई उद्देश्य नहीं, इधर-उधर जाने की इच्छा थी, या कहिये कि आदत थी कि लक्ष्मी को अपने आपको मिटाना पड़ा और छोटी-सी बच्ची को पालने-पोसने में लग जाना पड़ा. खैर, उसी समाज ने उसे चंपा का वर प्रदान किया है. ठीक है.

लक्ष्मी की पुतलियों में नयी चमक भर आयी और उससे पलकें जरा उठी-उठी रहने लगीं. होंठ किसी अदृश्य पवन लहरी से हिलते हुए पत्तों की तरह कांपने लगे जैसे भीतर-ही भीतर कोई तकरार हो रही हो. चेहरा छलकता हुआ नजर आने लगा, जैसे चेहरे की झुर्रियों की नदियों में पानी आ गया हो.

प्रसूती के लिए चंपा को अपने घर ले आने के लिए लक्ष्मी उसके घर गयी तो चंपा अपनी बुझी-बुझी आंखों से मां के दमकते चेहरे को ऐसा देखती रह गयी जैसे मां ने उसका रूप चुरा लिया हो.

तय हुआ कि चंपा आज नहीं, अगले सोमवार को पीहर जायेगी. लेकिन बीच में शनिवार को ही अचानक एक आदमी हांफता हुआ आया और उसने लक्ष्मी को सूचना दी कि पूनमलाल एकाएक बीमार पड़ गया है. लक्ष्मी एक क्षण भी नष्ट किये बिना बेटी के घर जा पहुंची और दामाद की सेवा-सुश्रुषा में लग गयी.

तीसरे दिन की रात में बीमारी जोर पकड़ गयी. पूनमलाल से बोला भी नहीं जा रहा था. चंपा खाट के एक किनारे बैठकर उसके पैर दबा रही थी.

"माकोर बाई, वैसे तो तुम इसकी सास नहीं हो. . लेकिन चंपा, बड़े-बूढ़ों के सामने थोड़ी लाज-मर्यादा रखनी चाहिए. खाट पर न बैठे तो क्या हो जाये? ला, बस रहने दे. पैर मैं दबाती हूं."

माकोर बाई अंगीठी के सामने बैठी नींद के झोंके खा रही थी. कि जाग उठीं और चिंतित होकर देखने लगीं कि बीमारी एकाएक बढ़ तो नहीं गयी. चंपा ने माकोर और लक्ष्मी को मन ही मन करोड़-करोड़ वर्षों तक नरक में रहने का शाप दिया और एक दीर्घ निश्वास छोड़ा.

लक्ष्मी रात-दिन एकाएक सिरहाने बैठी सेवा करती रहती. कभी-कभी पूनम लाल आंखें खोलता और अलग-अलग पलों में एक ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरे में लक्ष्मी और चंपा को देखकर उसके चेहरे पर प्रसन्नता छा जाती. कभी चंपा आकर पति का ध्यान आकृष्ट करने के लिए धीरे-धीरे पुकारती या कुछ और कहती तो लक्ष्मी अपने मरीज को संभालने का कर्त्तव्य बड़ी कुशलता से पूरा करती और "अभी तो आंख लगी है कि. . . "कहकर चंपा को डांट देती.

मां के इस असीम दुलार से चंपा अकुलाने लगी थी. पांचवीं रात भयंकर थी. बाहर के गहन अंधकार को जमाकर बनाया गया-सा एक यमदूत सबकी आंखों में तैर रहा था.

"चंपा, गंगाजल लाना जरा."

"जल्दी कर चंपा, वो सोने की किरच लाना."

"अरी निगोड़ी, तुलसी कहां रख दी?"

अब कोई खोजे या न खोजे, सब बेकार. लक्ष्मी की बहादुरी भी समाप्त हो गयी. वह इस तरह भारी होकर लुढ़क पड़ी जैसे उसके शरीर से भी प्राण निकल गये हों. उसके प्राणों को टिकने के लिए अब आधार भी क्या था?

एकत्र हुए लोगों ने शव को जमीन पर उतारा.

लक्ष्मी दूसरी बार विधवा हुई.

"तू मत रो चंपा. रोनेवाली मैं बैठी तो हूं."

"हां-हां, लक्ष्मी सच कहती है. जानेवाला तो चला गया, लेकिन अब तुझे यह घर खुला रखना है तो आनेवाले की चिंता कर." किसी दूसरी औरत ने कहा.

"हां, अगर लड़का हो जाये तो सब ठीक हो जायेगा. रो-रोकर उस आनेवाले जीव को मत मार." तीसरी ने हां-में-हां मिलायी.

और इस प्रकार रोज सब लोग चंपा को समझाते और रोने न देते. लक्ष्मी रोये तो रोये. समाज उसे रोने का अधिकार दे या न दे, लेकिन लक्ष्मी के नसीब में रोने के सिवा अब रह ही क्या गया था? और अब फिर से दुखी बेटी से अपने जीवन को भर लेने की बात सोचना तो उल्टे सिरे से जिंदगी शुरू करने जैसा होता. लक्ष्मी रोती रही. न खाया, न पीया, न आराम किया.

"बहन, अपने देश में ऐसी मां मिलना मुश्किल है."

"चंपा न होती तो वह तभी अपने पति के साथ मर गयी होती."

"और जिंदा भी रही तो मेरी जैसी ही."

"जिंदा रही बस अपनी बेटी की खातिर. नहीं तो क्या उसे जीना था."

"और चंपा की शादी के बाद तो बस. कितनी खुश रहती थी."

"रहना ही था. चंपा के लिए ही तो उसने उमर गंवायी थी."

"फिर क्या वह चंपा का दुख देखने के लिए रहती? अच्छा हुआ कि भगवान ने उसे मौके से मौत दे दी."

"लक्ष्मी चली गयी, लेकिन उस जैसी दूसरी होनी मुश्किल है."

कोई भी जीभ लक्ष्मी की प्रशंसा करते नहीं थकती थी. चंपा चुपचाप यह सब सुनती थी और अपने दुख से मन मसोसकर रह जाती थी. लक्ष्मी ने अपने आपको और अपनों को दुखी करके भी समाज को बिल्कुल दुख नहीं दिया था. चंपा यह देखती और अपनी मां की भोली चतुराई पर आश्चर्यचकित भी होती.

दो महीने बाद चंपा के लड़की हुई तो आसपास के लोगों को अच्छा नहीं लगा. लेकिन बाद में सबने मुंहदेखी बात की, "बेटी तो बेटी ही होती है बहना, बेटी से भी घर में उजाला होगा."

बेटी बड़ी होती गयी और अपनी छोटी-सी मां को प्रसन्नता के वातावरण में लाती गयी.

और चंपा, मानों अपनी मां से बदला लेने के लिए दूने स्नेह से बेटी को पालती-पोसती रही. □

संक्षिप्त रूपांतर : रमेश उपाध्याय

हीरोशीमा की भस्मीभूत, धरती पर एक गोरे अफसर को छाया चित्र के रूप में परमाणुबम गिरने से पूर्व के नगरजीवन के दृश्य—रास्ते का पुल, बैल लेकर जानेवाला किसान और स्कूल जानेवाली लड़की—दीख पड़े थे : अखबार की एक खबर

हीरोशीमा

हीरोशीमा . . . नागासाकी
कहो, है कुछ बाकी?
नागासाकी . . . हीरोशीमा . . .
अरे भाई, जरा धीमा!
इस गति से बढ़ोगे तो धरती की भस्म बनाकर,
सृष्टा के ललाट पर कालत्रिपुंड-सी धर दोगे.
गर्भवती धरित्री की कोख पर कर मुष्टि प्रहार
कपूत, घूमता है बन महाविजयी निर्भीक!
भय तो खिसककर बाहर सभी ओर से थोड़ा-थोड़ा
घुसा है तेरे भीतर,
हमेशा के लिए बस गया है वहां.

अंतररात्मा नहीं मात्र, केवल आंख
यह क्या देखती है?
प्रलयवह्नि की भी नहीं रही कुछ विसात?
सर्वस्व अग्नि में गल रसरूप बना तो भी
गलियों को जोड़नेवाला पुल, वह बच गया कैसे!
और वहां वह धीरे-धीरे जगत का पिता जाता है.
बैल को खींचता हुआ.
रस्सा हिलता है कैसे बैल का!

जब वह चलता है
किसान के फटे जूते से झांकती हैं उसकी उंगलियां.
और स्कूल का समय हुआ है
इसलिए वहां वह लड़की तेजी से चली जा रही है,
आगे की ओर झुकी हुई
हाथ में थामी हुई पाठ्यपुस्तकों के भार से!

कैसा पुल।
कैसा वह सुरभीपूत!
या कैसा अब किसान!
या कैसा कौमार-पुष्प!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तूने तो इस सबको मृत्युमुख में होम कर दिया शक्ति-मद में;
आज क्यों अब वह सब देखने की चाह करता है?
वे सभी तेरा गर्व तोड़ने को,
जिस विज्ञान की सहायता से किया उनका नाश
उसकी ही किसी गूढ़ प्रक्रिया से होते हैं प्रगट.
अथवा वह तेरी भीरु आंख तरसती है
खत्म हो गये लोगों के लिए?
तुझे भी तेरी अंतरात्मा कोसती है क्या?
तब तो भविष्य में तेरे लिए अब भी है कुछ आशा.

प्रणाश पार कर वे तो चिरंतन रूप लेकर
अमर लोक से तेरा पीछा करेंगे सदा के लिए.
कौन है ऐसा जो मिटा सके यहां इस पृथ्वी पट पर
अमूर्त इन मूर्तियों को? अनष्ट उन नश्वरों को?
तू शक्तिमत्त अग्न्यस्त्र की वर्षा भले ही करे!

चली जाती है वह कन्या असंशय पद से,
उसके दृढ़ बंद होंठ बोलते हैं नीरव
कि छोड़ेंगी नहीं वह महाकर्त्तव्य, जो स्वीकारा है:
खुद सीखकर सभी को सिखायेगी सहना,
ज्यों जन्म देकर बालक को
माताएं करती हैं सहन अनर्गल वेदना और यातनाएं,
हां, वैसी ही किसी न किसी बहाने
सिखायेगी, सहना सीखकर स्वयं
और छोड़ेगी क्या मनुष्यत्व की मां होने का अधिकार
प्रकृत्तिदत्त, सदा का जो उसे मिला?

और वह किसान और गूंगा बैल
वह भी श्रद्धा-शब्द भरता है सृष्टि के हृदय में :
जो कोई बसता है यहां—मनुष्य या साथी पशु
उन सभी के लिए भरपेट अन्न जुटायेंगे हम,
तुम बैठो शांत, रक्त से हो प्रसन्न.

और वह पुल कहता है कि सिर्फ दो गलियों को ही नहीं,
दीवारें जो देश-देश या जाति-जाति के बीच हैं—
उनको जोड़नेवाला सेतु बनकर रहूंगा मैं,
और आमने-सामने के हृदयों का करूंगा आलिंगन
भले ही अमानुषिता की मनुष्य ने दिखाई सीमा,
—नागासाकी . . .हीरोशीमा. . .
अंत में तो मनुष्य के आगे अमानुषिकता ही हारी.
हीरोशीमा. . नागासाकी. . .

उमाशंकर जोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन को देश और समाज से जोड़ो तो सारे बंद दरवाजे खुल जाते हैं !

▣ बिशन टंडन

भारत में ही नहीं, अन्यत्र भी ग्रामीण जीवन पर केंद्रित उपन्यास ही महाकाव्यात्मक ऊंचाई हासिल कर सके हैं और इसी कारण 'गोदान' (प्रेमचंद) इतना विख्यात है. यहां प्रस्तुत हैं भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता दो उपन्यासों—'गणदेवता' (ताराशंकर बंद्योपाध्याय) और 'माटी-मटाल' (गोपीनाथ महांति) की ग्रामीण पृष्ठभूमि का 'गोदान' के संदर्भ में एक तुलनात्मक विवेचन—

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित पहली दो औपन्यासिक कृतियां हैं तारा शंकर बंद्योपाध्याय का **'गणदेवता'** (**दूसरा पुरस्कार : बांग्ला : 1966**) व गोपीनाथ महांती का **'माटी मटाल'** (**नवम पुरस्कार: उड़िया : 1973**). दोनों ही ग्राम्य जीवन के गौरव ग्रंथ हैं ; दोनों को गद्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी गयी है. प्रेमचंद का **'गोदान'** भी इसी विषय पर एक महान कृति है, जो **'गणदेवता'** से लगभग छह वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी. उसके परिप्रेक्ष्य में बांग्ला और उड़िया की महान कृतियों का अध्ययन अनुपयुक्त नहीं होगा.

प्रेमचंद को लेकर समय-समय पर कई विवाद उठते रहे हैं और आज भी उठते हैं. यहां उनकी विवेचना करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता. लेकिन एक बात अवश्य स्पष्ट कर देनी चाहिए. महान साहित्य के संदर्भ में 'कला कला के लिए' या 'कला सामाजिक उद्देश्य के लिए' का विवाद सर्वथा निरर्थक है. मूल्य-मार्गी व कला-मार्गी, दोनों ही यह भूलते हैं कि महान साहित्य में मूल्य और शिल्प, दूसरे शब्दों में सामाजिकता और कलात्मकता का एक अनूठा समन्वय होता है. कोई महान कृति किसी एक महत्त्वपूर्ण समस्या, प्रश्न या चुनौती के प्रति बौद्धिक भावनात्मक प्रक्रिया के फलस्वरूप ही जन्मती है. ऐसी चुनौती की सर्वांगीण ग्राहकता की क्षमता से ही सत्साहित्य का उद्भव होता है और इस ग्राहकता की अभिव्यक्ति के लिए कलात्मक सृजन शक्ति ही यथेष्ट हो सकती है.

जार्ज लुकाच (**स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म**) ने इस अब धारणा की व्याख्या इस प्रकार की है :

'अगर साहित्य को राष्ट्रीय पुनर्जन्म का एक प्रभावशाली तत्त्व या उपादान बनना है तो उसे अपने शुद्ध साहित्यिक, रूप-परक और सौंदर्य-विषयक स्वरूप में ही उसी तरह पुनर्जीवित होना पड़ेगा जिस तरह अपनी विषय-वस्तु और जीवन-दर्शन संबंधी आभ्यंतर में. . . किसी लेखक के लिए सामाजिक और राजनीतिक मसलों पर ही नयी और स्पष्ट दृष्टि यथेष्ट नहीं है. साहित्य-शिल्प के मसलों पर भी नयी दृष्टि कम अनिवार्य हो, ऐसा नहीं.' प्रेमचंद को इस पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है. उनके संबंध में मुख्य बात यह है कि उन्होंने गांव और किसान को साहित्य में प्रतिष्ठित कर भारतीय साहित्य को एक नया मोड़ दिया. उनसे पहले किसी साहित्यकार ने गांव या किसान के अवसाद, उत्पीड़न या व्यथा को साहित्यक सृजन का आधार नहीं बनाया था. साहित्य को सामंती, महाजनी व मध्यवर्गीय आस्थाओं की सीमाओं से बाहर निकालकर उसे भारतीय जनजीवन से जोड़कर प्रेमचंद ने साहित्यिक सृजनात्मता के एक नये युग का सूत्रपात किया.

प्रेमचंद के ऊर्जा स्रोत

यह सच है कि स्वतंत्रता संग्राम का सीधा चित्रण प्रेमचंद में नहीं मिलता, लेकिन उन्होंने हमारी पराधीनता के विभिन्न पक्षों से अपने कथा संसार का निर्माण किया. किसान व लगानबंदी आंदोलन, अछूतों की सामाजिक समस्याएं, सांप्रदायिक सद्भावना, समाज में नारी की दयनीय स्थिति, स्वदेशी आंदोलन, नशाबंदी आदि केवल सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम न रहकर स्वतंत्रता संग्राम के अभिन्न अंग बन गये हैं! और इन सबका प्रेमचंद में काफी प्रखर चित्रण है. साथ ही साथ चल रहा था विदेशी शासन का कड़ा दमनचक्र; उसका प्रभावकारी चित्रण प्रेमचंद ने किया है. सरकारी संस्थाओं—पुलिस, अदालत, शिक्षण संस्थानों आदि—के कार्य-कलाप पर प्रेमचंद ने प्रचंड प्रहार किया. प्रेमचंद को पढ़कर किसी को भी इस बात पर संदेह नहीं रहेगा कि जिस समाज का चित्र उन्होंने खींचा है, वह अपनी स्वाधीनता के लिए भी भीषण संघर्ष में—राजनीतिक व सामाजिक दोनों स्तरों पर जुटा हुआ था.

प्रेमचंद के साहित्य की सृजनात्मकता का दूसरा ऊर्जा स्रोत है मध्यवर्गीय समाज. प्रेमचंद स्वयं इस समाज के सदस्य थे, उन्होंने इस वर्ग के विश्वास और परंपरागत वैदिक मान्यताओं को, रूढ़िवादी धारणाओं को, अंतर्विरोधों और असंगतियों को खूब अच्छी तरह देखा-परखा था और अपने कथा साहित्य में इस यथार्थ को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया. **'सेवासदन'**, **'निर्मला'**, **'गबन'** और **'कर्मभूमि'** इस संदर्भ में विशेष चर्चित हैं. इन उपन्यासों और अनेकों कहानियों में मध्यवर्गीय समाज के प्रामाणिक और सजीव चित्र भरे पड़े हैं. संक्षेप में, प्रेमचंद में तत्कालीन भारतीय जीवन का यथार्थ चित्रण अतुलनीय है. समकालीन यथार्थ को उन्होंने कलात्मक ढंग से जोड़ा है.

इस कलात्मकता का स्वरूप क्या है? इस संदर्भ में पहले ही स्वीकार कर लेना होगा कि उपन्यास शिल्प की दृष्टि से प्रेमचंद की कोई महत्वपूर्ण देन नहीं है. उन्होंने कथा-लेखन की बहुप्रचलित प्रविधि को ही अपनाया, जैसा रवींद्रनाथ ठाकुर, बंकिम और शरत भी पहले कर चुके थे. प्रेमचंद की विशेषता यह है कि ठोस यथार्थ के प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण और संवेदनपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए इस प्रविधि की विभिन्न संभावनाओं का उपयोग करके उसे एक बिल्कुल नये विषय वस्तु के अनुरूप बना लिया.

आज के जटिल जीवन में यथार्थ का चित्रण छायाचित्र (फोटो) के रूप में सफल नहीं माना जा सकता. लेखक क्या केवल छाया चित्रकार बनकर महान साहित्य का सृजन कर सकता है? तभी तो भिन्न-भिन्न लेखक यथार्थ को अपनी ही अंतर्दृष्टि के आधार पर चित्रित करते हैं. इसमें असंभव कुछ भी नहीं. मार्क ब्लाक ने (इतिहासकार का शिल्प) कहा है कि **'साहित्य उतने ही सहज ढंग से अपने समाज के प्रति रक्षात्मक प्रतिक्रिया भी व्यक्त कर सकता है, जितनी सहजता से उसकी स्वीकार करने की प्रवृत्ति.'** यह स्पष्ट है कि लेखक का अपने दृष्टिकोण व विचारधारा का बंदी बना हुआ यथार्थ उत्कृष्ट साहित्य का स्रोत नहीं हो सकता. लुकाच ने कहा है—**'एक महान यथार्थवादी लेखक की यह विशेषता है कि उसके द्वारा सर्जित परिस्थितियों और चरित्रों का स्वाभाविक कलात्मक विकास यदि उसके स्वयं अपने प्रिय पूर्वाग्रहों और विश्वासों से टकराता है तो लेखक अपने पूर्वाग्रहों व विश्वासों को त्यागने में एक क्षण भी नहीं हिचकता.'**

बालजाक व ताल्स्तोय इसके सुंदर उदाहरण हैं. बालजाक की संपूर्ण सहानुभूति फ्रांस के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिजात भूस्वामी वर्ग से थी. यह वर्ग नयी व्यावसायिक शक्तियों के प्रादुर्भाव से धीरे-धीरे त्रस्त हो रहा था. वालजाक चाहता था कि भूस्वामियों की सत्ता के पुनर्स्थापन के लिए उनके नेतृत्व में किसान इन शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करें. तालस्तोय भी भूस्वामी वर्ग में उत्पन्न हुए थे; भूसंपति के साथ मिली सामंती-युग की मान्यताएं उसकी स्वाभाविक विरासत थीं, पर यथार्थ के तीव्र और निर्मम रूप के सामने उनकी अपनी मान्यताएं ध्वस्त होती गयीं. बालजाक अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'दि पेजेन्ट्स' जिसमें वह भूस्वामी समाज की ट्रेजेडी दर्शाना चाहते थे, उस समाज के गहराते संकट के साथ-साथ पुराने सामंती समाज के विनाश की ऐतिहासिक आवश्यकता की पुष्टि करते हुए किसान वर्ग की छोटी जोत की समाप्ति से उत्पन्न व्यथा का चित्रण करने लगे. और तालस्तोय अपने वर्ग के विश्व दृष्टि के यर्थाथ को छोड़कर किसान-समाज के दुख-दारिद्र्य, उत्पीड़न और आक्रोश को मुखर करने लगे. दोनों की साहित्यिक महानता का स्रोत उनकी विचारधारा या समाज दर्शन नहीं है, यह है साहित्यिक सृजनात्मकता की प्रतिभा से देख गये सत्य के समक्ष अपने विचारजन्य दर्शन को ढह जाने देना.

पात्र लेखक के दास नहीं हो सकते. प्रेमचंद का साहित्य भी इसी प्रक्रिया का प्रतिफल है. वह भी अपने मध्यवर्गीय सैद्धांतिक मान्यताओं और वैचारिक पूर्वाग्रहों से निरंतर जूझते रहे. यही नहीं, प्रेमचंद स्वयं अपने समय के गांधीवादी दर्शन और मान्यताओं से बहु तप्रभावित थे, लेकिन उनके देखे और भोगे हुए यथार्थ के सम्मुख अपने पूर्वाग्रहों के त्यागने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ. कथाकार के रूप में उनकी महानता का यही आधार है. अमृतराय के शब्दों में :

'गांधीजी के लिए प्रेमचंद के मन में गहरी भक्ति है, अचल निष्ठा है कर्मपथ पर उनके नेतृत्व में इतनी कि मुंशीजी कभी-कभी संशय में पड़ जाते हैं– प्रमाण किसे मानें. जीवन के प्रति अपने अनुभव और ज्ञान को या गांधी को, जबर्दस्त रस्साकशी होती है. आखिकार समझौता हो जाता है. जीवन भी रहेगा, गांधी भी रहेंगे. कठोर वास्तविकता की नंगी खुरदरी जमीन भी रहेगी और उस पर गांधी दर्शन का चंदोवा भी तना रहेगा. जमीन के खुरदरेपन को ढकने के लिए कालीन की तरह उसका इस्तेमाल. नहीं, यह किसी तरह मुमकिन न होगा. किसी पाखंडी से यह समझौता नहीं करेगा, किसी अन्याय से वह आंख नहीं चुराएगा. जिंदगी की पूरी तस्वीर देगा, सच्ची तस्वीर देगा. वह उसकी प्रतिश्रुति है अपने प्रति तत्काल कर्म की एक रूपरेखा गांधी के यहां मिलती है. अच्छी है, मन को भाती है. और यहां तक अपने स्वप्न से उसका मेल खाता है, गांधी के साथ या उसके पीछे चलने में कोई बुराई नहीं है. भरोसे का आदमी है. शेष के लिए मैं स्वतंत्र हूं. मैं अपनी राह जाऊंगा, वह अपनी राह जायेंगी.'

प्रेमचंद की कहानियों को आदमी परिवार और समाज के रिश्तों के गड़बड़ा जाने या टूटने और इनको रोकने के लिए आदर्शवाद व सुधारवाद का आश्रय लेने तक ही सीमित समझ लेना, समकालीन समाज और वातावरण की पृष्ठभूमि में प्रेमचंद की संवेदना प्रेरित सृजानात्मकता के प्रति, अपने पूर्वाग्रहों के आधार पर अन्याय करना ही लगेगा.

परंपरागत समाज की कथा

कथा संसार की चरम परिणति गोदान जैसी कृति में ही हो सकती थी. गोदान में प्रेमचंद के विषय-वस्तु और शिल्प-प्रविधि में एक अनूठा सामंजस्य स्थापित हुआ है. यह उपन्यास ग्राम्य जीवन और संस्कृति को उसकी संपूर्णता और समग्रता में प्रस्तुत करता है, एक किसान

धनियां यंत्र की भांति उठी. आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली, 'महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा. यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है."

होरी की जीवन गाथा के माध्यम से. होरी जन्म से नियति का निर्धन था '. . .पांच साल हुए, **यह मिर्जई बनवायी थी. धनिया ने एक प्रकार से. . . जबरदस्ती बनवा दी थी और कंबल तो उसके जन्म से भी पहले का है. . .'** और निर्धनतर होता गया, **'इस फसल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज थे, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे. लगान के भी अभी पच्चीस रुपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन सगुन के रुपयों का भी प्रबंध करना था.'** उसके जीवन की केवल एक ही महत्त्वाकांक्षा है—एक गाय लेने की. इसकी पूर्ति के लिए वह एक किसान से मजदूर बन गया है. यह उसके अंतर की बहुत बड़ी हौंस है? **'. . . जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा भी नहीं जाता. . . फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है. खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है.'** और अंत में यह इच्छा मन ही मन लिये वह इस संसार से विदा ले लेता है. उसकी चिकित्सा के लिए कुछ नहीं हो पाता, पर असली विडंबना है कि मृत्युपरांत गोदान का प्रश्न उठता है. गाय तो वह जीते जी नहीं पा सका तो मरने के बाद मिलने का प्रश्न ही कहां था. पर रीति तो यही है, उसकी पूर्ति कैसे हो. क्या हुआ :

'धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—'महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा. यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है.'

यह केवल 'अभाव के राजे बेटे' होरी की कहानी नहीं है, उसके गांव बेलारी के दैन्य और विपन्नता की कहानी है. सच तो यह है कि वह भारतीय किसान की कहानी है. ग्रामीण जीवन की विवशता और विपन्नता का सूक्ष्म दृष्टि और सहानुभूति से किया गया इतना यथार्थ और मार्मिक चित्रण भारतीय साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता. **'गोदान'** तक पहुंचते हुए प्रेमचंद का समाज दर्शन भी एक लंबी यात्रा तय कर चुका था. आरंभ में प्रेमचंद ने वर्ग-हित समन्वय के स्वप्न देखे थे. **'प्रेमाश्रम'** के अंत में भूस्वामी के हृदय परिवर्तन में राम राज्य की स्थापना का रूप देना था, लेकिन अपनी संवेदनशील अंतर्दृष्टि से जिस यथार्थ की निर्ममता को उन्होंने होरी की असहाय तथा निर्धनता में देखा, उसके बाद उनके पुराने स्वप्नों का विनष्ट होने के अतिरिक्त कोई भविष्य नहीं था. (**गोदान** के रचनाकाल, 1934-36, को स्वयं पंडित नेहरू ने एक अन्य प्रसंग में उदास और कुंठाग्रस्त कहा था.) इसीलिए **गोदान** का अंत होरी की पराजय से होता है. वह गोबर को **खेती में जोतना चाहता,** इस एक छोटे से कथन में प्रेमचंद के कथा संसार के यथार्थ का चरमोत्कर्ष है. इस अर्थ में होरी की पराजय एक व्यक्ति की नहीं, परंतु परंपरागत समाज के व्यथा की प्रतीक है. साथ ही होरी का चरित्र-निर्माण भी प्रेमचंद की यथार्थवादी शिल्प के विकास का चरमोत्कर्ष है.

प्रेमचंद की सृजन-यात्रा और उससे उठे कुछ प्रश्नों की रूपरेखा जानबूझकर आवश्यकता से अधिक विस्तार में इस प्रयोजन से दी गयी है कि **'गणदेवता'** और **'माटी-मटाल'** के वस्तु विषय व शिल्प को समझने में सहायता मिले. गोदान के अंत में होरी गोबर के लिए जिस भविष्य की बात सोचता है, वहीं से **गणदेवता** का वैचारिक धरातल आरंभ होता है.

चौथे दशक के आरंभ में तारा बाबू का पहला उपन्यास **'चैताली घूर्णि'** प्रकाशित हुआ. अगले वर्ष उनकी चार वर्षीय पुत्री की मृत्यु के उत्ताप से उनके अंतस से एक मर्मस्पर्शी कहानी **'श्मशान घाट'** फूटी जो बहुत दिनों तक साहित्यिक क्षेत्रों में चर्चा का विषय बनी रही. यहीं से तारा बाबू की साहित्य साधना का प्रभावी अध्याय आरंभ होता है. 1939 से 1944 तक के छह वर्षों में एक के बाद एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताराशंकर बंद्योपाध्याय की पांच औपन्यासिक कृतियां प्रकाशित हुईं. 'कालिंदी', 'गणदेवता', 'पंचग्राम', 'मन्वंतर' और 'कवि'. अपने लंबे साहित्यिक जीवन में तारा बाबू ने उपन्यास, कहानी, नाटक भ्रमणकृति, आत्मचरित आदि सब मिलाकर 108 ग्रंथों की रचना की है, जिसमें 50 उपन्यास व 41 कथा संग्रह हैं. 'गणदेवता' तथा इसका उत्तरार्द्ध 'पंचग्राम', दोनों मिलकर एक कथा श्रृंखला को पूरा करते हैं. स्वयं तारा बाबू के शब्दों में :

"गणदेवता बंगाल के ग्राम्य जीवन पर आधारित एक ग्रामभित्तिक उपन्यास है. कृषि पर निर्भरशील ग्राम्यजीवन की शताब्दियों की सामाजिक परंपरा किस प्रकार पाश्चात्य औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यंत्र-सभ्यता के संघात में धीरे-धीरे अस्त-व्यस्त होने लगी थी, यही इस उपन्यास में दिखाया गया है. कृषि निर्भर ग्राम्यजीवन जिन सामाजिक परंपराओं पर टिका हुआ था, उनका रूप संभवतया संसार के कृषि-निर्भर, यंत्र-सभ्यता से अछूते ग्राम्यजीवन में सर्वत्र एक ही है.

"इस विशाल देश भारत की सामाजिक परंपरा के साथ एक और तत्त्व भी गुंफित था जिसे अनुशासन कहा जा सकता है. यह अनुशासन नीति का अनुसरण करता है और न्याय तथा अन्याय के बोध को लेकर सदा स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से जीवन में सब कहीं, सब क्षेत्रों में, किसी न किसी प्रकार अपने को प्रयुक्त करना चाहता है. संपूर्ण सामाजिक परंपरा की आधारभूमि यह बोध ही था. इस बोध के परिणामस्वरूप प्राकृतिक विभिन्नता के रहते भी आभ्यंतरिक तथा बाह्य जीवन में सारे भारत के ग्राम्यजीवन को एक आश्चर्यमयी एकता की वाणी प्राप्त होती है." वास्तव में 'गणदेवता' ग्राम्य जीवन के अस्तव्यस्त होने की ही नहीं, इस 'बोध' के टूटने की कहानी भी है.

यह उपन्यास किसी एक नायक पर आधारित न होकर समूचे गांव की सामूहिक गाथा कहता है. कथा का केंद्र-बिंदु शिवकालीपुर गांव है और इसके प्रमुख व्यक्ति गांव में रहनेवाली विभिन्न जातियों और पेशों से संबंधित हैं. पहला खंड शिवकालीपुर के पुरातन समाज में नयी धार्मिक और सामाजिक हलचल के साथ आरंभ होता है. यंत्र सभ्यता सबसे पहले पेशेवर श्रमिक वर्ग पर आक्रमण करती है. उद्योगों की सस्ती वस्तुओं के कारण लुहार, बढ़ई, नाई आदि सदियों पुराने सामाजिक संरक्षण से वंचित होते जाते हैं. विवशता में गांव के अनिरुद्ध लुहार और गिरीश बढ़ई ने कुछ दूर कस्बों में अपनी दूकानें खोल ली हैं. गांव में रहनेवाले किसानों को इससे परेशानी होना स्वाभाविक है. चंडीमंडप में पंचायत होती है. पड़ोस के गांव के एक वृद्धजन—द्वारका चौधरी पंच बनाये जाते हैं. उनकी मान्यता तो यही रही है कि लुहार और बढ़ई के पूर्वजों को इस गांव में इसीलिए बसाया गया था कि गांववालों को कष्ट न हो; इसके अनुरूप ही उनका निर्णय होता है कि कस्बे में रहकर भी वह दोनों गांव की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दें, लेकिन अनिरुद्ध और गिरीश यही कहते हैं कि गांव में उनका गुजारा नहीं होता और अपने श्रम का अनाज भी उन्हें समय पर नहीं मिलता. कुछ समय बाद तारा नाई और पातु चमार भी अपना पैतृक काम छोड़कर कोई दूकान या धंधा कर लेते हैं. ग्राम्य व्यवस्था का विघटन का आरंभ नीचे से सर्वहारा वर्ग द्वारा शुरू होता है.

सर्वहारा वर्ग विघटन तो आरंभ कर देता है, पर अपना शोषण नहीं रोक पाता. गांव वाले पंचायत तो करते हैं, लेकिन इन पेशेवर श्रमिकों के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं लेते. ऊपर से उन पर सामाजिक अनुशासन बनाये रखते हैं और श्रमिक उस अनुशासन से अपने को मुक्त करते हैं तो उन्हें अनुचित रूप से दंडित किया जाता है. अनिरुद्ध लुहार ने जब पंचायत में छिरुपाल का उधार चुकता करके अपना हैंडनोट लेकर गांव का काम करने से इंकार कर दिया, तब छिरुपाल ने उसके खेत का धान कटवा लिया. पुलिस में रिपोर्ट हुई, पर तलाशी छिरुपाल के घर की न होकर किसी और के घर की हुई. पेशेवर श्रमिकों का जीवन यापन सदियों से ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एक अनलिखे, पर सर्वमान्य दुतरफे समझौते पर आधारित रहा है. यह समझौता तभी तक प्रभावित रह सकता है, जबकि सभी पक्ष अपना उत्तरदायित्व व कर्त्तव्य दोनों पूरी तरह निभायें. जब इसको नकारा जाने लगा तो ग्राम्य समाज की न्याय करने की नैतिक शक्ति का ह्रास होना स्वाभाविक था और जिस 'बोध' की बात स्वयं तारा बाबू ने की है वह लुप्त होने लगा. परिणामस्वरूप परंपरागत मूल्यों का चिरंतन सामाजिक ढांचे से संबंध-विच्छेद होता है. पहला खंड अनिश्चयता के स्वर पर समाप्त होता है. भविष्य के स्पष्ट संकेत कुछ नहीं हैं. कहा नहीं जा सकता कि शिकायतों के हल के लिए यह आंदोलन क्या रूप लेगा. हां, यह असहमत वर्ग पुरानी व्यवस्था से बंधा जरूर रहता है और नारकीय तांडव को उसका आशीर्वाद प्राप्त नहीं होता. इसी कारण तारा बाबू ने इसे जनता में प्रतिबिंबित ईश्वरेच्छा 'गणदेवता' नाम दिया.

दूसरा खंड 'पंचग्राम' पुरातन के साथ असहमतिपूर्ण विलगाव का अधिक गहरा और तीखा चित्र प्रस्तुत करता है. पहले खंड के असंतोष का छिटपुट स्वर अब एक नियोजित जन-असंतोष का रूप धारण कर लेता है, लेकिन संघर्ष अधिक निर्मम हो जाने पर भी यह क्रांति के स्तर तक नहीं पहुंचता. विकास का पहला चिह्न किसानों के संघर्ष से मिलता है, जो प्रस्तावित लगान-वृद्धि के विरुद्ध है. तनाव को अधिक पैना बनाने में कई अन्य तत्त्व भी सक्रिय हो जाते हैं. विचारों और सिद्धांतों पर बनी पक्षधरता नयी शक्तियों के सामने दुर्बल पड़ जाती है और जनता की एकता खंडित हो जाती है. इससे जन-विरोध पूर्णतया विफल हो जाता है, पर पुनर्जागरण का विश्वास बना रहता है.

ग्राम्य जीवन की इस झांकी के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए. उपन्यास में सांस्कृतिक तत्त्वों का समावेश बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है. इसी से इसकी आंचलिकता में निखार आया है. हर फसल पर कोई उत्सव, हर माह कोई तीज-त्योहार, कथा-कीर्तन. असंतोष और बाद में संघर्ष के समय भी स्त्रियों का यही संसार गांव के घरेलू वातावरण को एकसूत्र में बांधे हुए उसके व्यक्तित्त्व को वाणी देता है. द्वारका चौधरी महामहोपाध्याय की कहानियां इसको विशेष रोचकता प्रदान करती हैं. राजनीतिक व सामाजिक चेतना के साथ लोक संस्कृति का ऐसा समन्वय इससे पहले कथा साहित्य में नहीं मिलता. इस दृष्टि से यह कथा-कृति अनूठी है.

जैसा पहले कहा गया है कि यह उपन्यास पूरे ग्राम्य-समाज की गाथा है, किसी एक की नहीं. इसीलिए पूरा गांव बोलता है. गांव और वहां रहनेवालों का चित्रण, खेत-खलिहानों का वर्णन, पारस्परिक संबंधों के तनाव, शोषण और उत्पीड़न के हथकंडे सभी कुछ पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं. कथाकार कहीं अनुचित हस्तक्षेप नहीं करता. इस परिप्रेक्ष्य में मयूराक्षी की बाढ़ का संकट गांववालों में पहले से ही व्याप्त व्यग्रता की पृष्ठभूमि में अपनी सारी गंभीरता तथा नैतिक परिणतियों के साथ विशुद्ध रूप से चित्रित हुआ है. यह भले ही ठीक हो कि शरत् की मनोविज्ञान की समस्याओं और गुत्थियों को खोलती हुई मार्मिक तीव्रता और सूक्ष्म कलात्मकता यहां नहीं दिखाई पड़ती, किंतु "ग्रामीण जीवन के दैनंदिन व्यापार के सामान्य स्वरों के आकलनकर्त्ता के रूप में, संपूर्ण पार्श्वभूमि के परिप्रेक्ष्य में किसी एक चरित्र पर सर्वाधिक बल न देते हुए, ताराशंकर अपने सत्य तथा ईमानदारी में अद्वितीय हैं."

इस शिल्प में जो कमी खलती है, वह है चरित्र-चित्रण की. यह तो ठीक है कि यथार्थवादी चित्रण के लिए प्रातिनिधिक चरित्रों का अधिक प्रयोग किया जाता है, लेकिन अनिरुद्ध लुहार को छोड़कर बाकी सब चरित्र मुख्यतः प्रतीकात्मक होकर रह गये हैं. देबू घोष, गांव का स्कूल शिक्षक, एक अत्यंत आदर्शवादी व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत हुआ है. ग्रामोद्धार के लिए वह एक नैतिक उत्साह और न्याय भाव फूंकना चाहता है, लेकिन एक दुर्लभ संपूर्णता का स्वप्न संजोये होने के कारण वह गांव के जीवन से ताल-मेल नहीं कर पाता. यहां तक कि जन-संघर्ष के सामान्य उद्देश्य से सहानुभूति रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए भी वह बिल्कुल अलग-थलग-सा ही लगता है. इसी प्रकार मुखोपाध्याय भी उस आध्यात्मिक नेतृत्व के प्रतीक बनकर रह गये हैं, जो नयी शक्तियों से बिल्कुल नहीं जुड़ पाते; वह केवल विगत महानता के करुण अवशेष लगते हैं. श्रीहरि या छिरुपाल यकायक धनवान हो जानेवाला एक ऐसा किसान है, जिसमें नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों के प्रति आस्था कम है. केवल अनिरुद्ध लुहार ही व्यक्तित्व-धनी चरित्र है. वह अन्याय को न केवल सहन करने में असमर्थ है, वरन् अन्याय बोध से अंदर ही अंदर सुलगकर संघर्ष की ओर पूरी निष्ठा के साथ अग्रसर हो जाता है और बाद में यही भावना उसे विध्वंसक बना देती है, जिससे विनाश में उसे एक क्रूर सुख का अनुभव होता है. दूसरे खंड में इन प्रतीकात्मक व अमूर्त चरित्रों को थोड़ा व्यक्तित्व अवश्य मिल जाता है.

इस कमजोरी का कारण ताराशंकर की वैचारिक मनोस्थिति और शिल्प दोनों में ही ढूंढ़ा जा सकता है. जहां तक शिल्प का प्रश्न है एक आलोचक का निष्कर्ष है :

"उनकी कथाधारा स्पष्टतया निर्बाध बहती है और कभी भी व्यक्तिगत चरित्र-चित्रण के लिए नहीं थमती. सारे चरित्र ज्वार के साथ-साथ बहते हैं और उसका जो भी व्यक्तित्व हो, वह इस धारा के साथ बहाव के दरमियान ही प्रदर्शित किया जाता है. ग्राम जीवन के पेचीदा चरित्रों के लिए विशेष अवकाश नहीं होता और ताराशंकर गांव की पोखर में किसी दुर्लभ मछली की खोज नहीं किया चाहते." लेकिन संभवतः दूसरा पक्ष और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है. गोपाल हलधर के शब्दों में—**"ताराशंकर पतनोन्मुख जमींदारी प्रथा की महिमा जितनी स्वीय अभिज्ञता से उपलब्ध कराने में समर्थ हैं, उतना नवजात यंत्रयुग के उद्यमी मानव को अंतर की आस्था से स्वीकार करने में नहीं. पुरातन के प्रति मोह उनके अंतर का सत्य है और नूतन में विश्वास उनकी बुद्धि का साक्ष्यमात्र."** इससे स्पष्ट है कि गांव के विघटन के यथार्थ के प्रवाह में भी ताराशंकर अपने पूर्वग्रह, अत्यंत प्रिय विश्वास और संस्कारों का मोह त्यागने में पूरी तरह सफल नहीं हुए. साथ ही ताराशंकर की व्यक्तिगत सोच और चेतना के प्रमुख तथ्य मानवी प्रेम और मानवी सद्भावना रहे हैं. इसको सदियों से व्यवस्थित समाज का विघटन भी हिला नहीं पाता. तभी तो उपन्यास के अंत में देबू पुनरुद्धार की स्वप्निल कल्पना मात्र करता है:

"उन्हीं का नहीं केवल, पंचग्राम का प्रत्येक घर न्याय का होगा; सुख-स्वच्छंदता से भरा, अभाव नहीं, अभियोग नहीं—अन्न-वस्त्र, औषधि-पथ्य, स्वास्थ्य-शक्ति, साहस-अभय से उज्ज्वल, भरा-पूरा. आनंद से मुखर, शांति से स्निग्ध. देश में भूखा कोई नहीं रहेगा—भोजन और औषधि से पंचग्राम शक्तिशाली और नीरोग होगा. मनुष्य स्वस्थ-सबल होगा. ऐसी चौड़ी होगी छाती, अदम्य साहस से निर्भय चला-फिरा करेगा. नये सिरे से घर बनायेगा. राहघाट बनायेगा. झकमकाते घर मुक्त प्रकाश से उज्ज्वल होंगे, मुक्त हवा से निर्मल और स्निग्ध होंगे."

यही कारण है कि ताराशंकर के ग्राम्य जीवन का चित्रण यथार्थता की कसौटी पर खरा तो उतरता है लेकिन उसमें न तो गोदान की-सी संवेदना-चेतना ही प्रखर हो पाती है, न प्रेमशंकर, सूरदास और होरी का-सा कोई चरित्र व्यक्तित्व पाता है.

आदिवासियों के सानिध्य में

गोपीनाथ महांति का कथा संसार उनके व्यक्तित्व और ठोस अनुभव की उपज है. 1938 में उनका उड़ीसा एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में चयन हुआ और कोरापुट जिले में नियुक्ति हुई. उस समय कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि यह नियुक्ति उड़िया और भारतीय साहित्य के लिए वरदान सिद्ध होगी.

ताराशंकर पतनोन्मुख जमींदारी प्रथा की महिमा जितनी स्वीय अभिज्ञता से उपलब्ध कराने में समर्थ हैं, उतना नवजात यंत्र युग के उद्यमी मानव को अंतर की आस्था से स्वीकार करने में नहीं. पुरातन के प्रति मोह उनके अंतर का सत्य है और नूतन में विश्वास उनकी बुद्धि का साक्ष्य मात्र.

लिखना गोपीनाथ ने 1936 से ही आरंभ कर दिया था. अपना पहला उपन्यास **'मन गहिरर चाष'** पूरा करने में उन्हें दो वर्ष लगे. उसके बाद वह निरंतर लिखते रहे. उन्होंने कई विधाओं में लिखा है, पर कथा साहित्य उनका विशेष क्षेत्र रहा है. उनके 19 उपन्यास व 8 कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं. उनके कथा साहित्य को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—आदिवासियों से संबंधित रचनाएं, नगर-वासी, जन-समाज से संबंधित कथा-कहानियां और माटी-मटाल. इनमें से तीन रचनाओं पर गोपी बाबू ने अत्यधिक ख्याति अर्जित की है: **'परजा'**, **'अमृतर संतान'** और **'माटी-मटाल'**. विषय-वस्तु के स्तर पर उन्होंने निर्धन-शोषितों, पददलित असहायों और निरीह आदिवासियों के पक्ष का सदा समर्थन किया है. उनके लिए यह साहित्यिक चमत्कारिता या फैशन की बात नहीं है, इसका संबंध उनकी बड़ी गहरी आस्था से है. शोषण, चाहे किसी भी रूप में हो (**'परजा'** में आदिवासियों का, **'हरिजन'** में श्रमिक का और **'दानापानी'** में नगर के एक छोटे से क्लर्क का) वह सहन नहीं कर सकते, लेकिन उनके अंतर का साहित्यकार उनकी अंतर्दृष्टि यह भी खोजती है कि मनुष्य शोषण की विषम परिस्थितियों से कैसे तालमेल बैठाता है और उससे उबरने के लिए क्या-क्या करता है.

कोरापुट में गोपी बाबू को आदिवासियों के सान्निध्य में—उनके साथ उठने-बैठने, हंसने-रोने, खाने-पीने और नाचने-गाने में, उनको और उनके समाज को समझने का पूरा अवसर मिला. वैसे तो अपने सेवाकाल में गोपी बाबू उड़ीसा के विभिन्न भागों में रहे, पर कोरापुट और आदिवासियों से उनका जन्म-जन्मांतर का नाता हो गया. आज जब वह सेवा से अवकाश ग्रहण कर भुवनेश्वर में रह रहे हैं, मन से अब भी अपने को वहीं का निवासी मानते हैं. **'परजा'** और **'अमृतर संतान'** इन संबंधों की देन है. ये दो उपन्यास क्रमशः कोरापुट जिले की दो आदिम-जातियों—परजा व कौंढ की गाथाएं हैं. एक स्तर पर ये उपन्यास इन आदिवासियों के जीवन संबंधी समाजशास्त्रीय अभिलेख हैं, लेकिन गोपी बाबू की कल्पनाशील सृजनात्मकता ने इनको कला के उत्कृष्ट ग्रंथों में परिवर्तित कर दिया है. इन्हीं उपन्यासों के कारण अब तक के त्यक्त और तिरस्कृत परजा और कौंढ आधुनिक उड़िया बोध के अभिन्न अंग बन गये हैं.

'परजा' पहाड़ों और जंगलों के बीच बसे एक गांव के एक परजा परिवार की पीड़ा और व्यथा की कहानी है. वास्तव में इस एक परिवार के माध्यम से आदिमजाति परजा की जीवन-झांकी प्रस्तुत की गयी है. परिवार का पूरा संघर्ष इस बात के लिए है कि उनके जीवन में भी कोई सूर्य किरण आ जाये, लेकिन विषम परिस्थितियां उनका साथ नहीं छोड़तीं और उनके सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं. अंत में पिता और पुत्र धैर्य की अंतिम सीमा पार करके क्रोध के वशीभूत उस साहूकार की हत्या कर देते हैं, जिसने उनकी जमीन हड़प [illegible] थी, उनको दास बना रखा था और बहन के साथ व्यभिचार किया था. हत्या करते समय वह कहते हैं, **"हां, तुमने अन्यायपूर्वक हमारी जमीन ले ली है, लेकिन तुम उसका उपयोग नहीं कर पाओगे; कभी नहीं, कभी नहीं..."** मूलरूप से कहानी सरलता और दुष्टता के संघर्ष की है, जिसमें दुष्टता की विजय होती है.

'परजा' की संरचना नाटकीय है, लेकिन **'अमृतर संतान'** चिंतन प्रधान है. संभवतः इसलिए कि कौंढ अधिक पुरातन आदिमजाति है, जिसको अपने अतीत का बोध है. यह भी, यद्यपि एक विभिन्न स्तर पर एक ग्रामीण परिवार की कहानी है, जिसका केंद्र बिंदु है पति-पत्नी के पारस्परिक संबंध. गांव का मुखिया दियुदू एक अन्य लड़की पियूतू जो कि कुछ समय आदिमजाति क्षेत्र से बाहर भी रही है, के साथ रहने लगता है और अपनी पत्नी पियू का परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग कर देता है. निरीह पियू अपने पुत्र को लेकर पति का घर छोड़ देती है, लेकिन अपनी जाति की परंपरागत आस्था से बल पाती है. थरथराते होंठों और आंसू भरे चेहरे से वह सूर्योदय को देखते हुए अपने से कहती है **"जीवन ने केवल मधुरता दी है; न दुख, न मृत्यु."** कौंढ लोगों की यह आस्था और विश्वास अजेय मानव चेतना का प्रतीक है. दियूदू एक जटिल चरित्र है. दुष्ट पक्ष यहां भी है पर उतने ही बल के साथ सद्गुण पक्ष भी अंत तक सक्रिय बना रहता है. तभी कहानी के अंत में पियू की गोद में उसके पुत्र हकीना को 'मैडोना की गोद में जीसस' की उपमा दी गयी है.

परिवर्तन की कलात्मक अभिव्यक्ति

इन दोनों उपन्यासों के विपरीत **'माटी-मटाल'** की पार्श्वभूमि आदिमजाति क्षेत्र न होकर उड़ीसा का गांव है. बी. ए. पास करने के बाद रवि अपने गांव के लिए कुछ करना चाहता है और इसीलिए गांव आता है. लेकिन अपने पिता के आग्रह के कारण उसे नौकरी ढूंढने शहर जाना पड़ता है. यहीं से उपन्यास शुरू होता है, परंतु रवि शहर में नौकरी नहीं करता और गांव वापस लौट आता है. पिता का समर्थन न मिलने पर भी रवि अपने निश्चय पर अटल रहता है और गांव को एक पारिवारिक सूत्र में बांधने का निरंतर प्रयत्न करता रहता है. यह प्रयोग कुछ अंश तक सफल भी होता है. उसके आदर्श का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है और जन-मानस में उसका एक विशेष स्थान बन जाता है. यही है इस उपन्यास की कथा. इस कथा की पृष्ठभूमि में उपन्यासकार रवि और छवि के मधुर संबंधों को भी निर्मित करता है. रवि की छवि से पहली बार भेंट हुई थी, जब वह शहर से गांव लौट रहा था. पूरे उपन्यास में दोनों केवल दो तीन बार मिलते हैं और आपस में बहुत कम बात करते हैं. फिर भी दोनों को सदा यह आभास रहता है कि उनके बीच कोई बहुत ही गहरा संबंध है और यही गहरा संबंध उपन्यास को पूरी तरह प्रभावित किये रहता है.

'माटी-मटाल' का कलेवर अपने कथानक से भी कहीं बड़ा है **'माटी-मटाल'** के पात्र प्रातिनिधिक नहीं हैं. अपने अंतर की ऊर्जा से ही वह अपने मंतव्य की ओर प्रेरित होकर आत्मतुष्टि प्राप्त करते हैं. इस संबंध में लुकाच का जो कथन पहले दिया गया है, वह इन पात्रों को पूरी तरह चरितार्थ होता है. यह उपन्यास उड़िया ग्राम्य जीवन का संपूर्ण रूप उजागर होकर सामने आता है. लेकिन इससे भी अधिक एक अन्य महत्व पूर्णस्तर पर उपन्यास काल के संदर्भ को और अधिक व्यापक बना देता है, यह उन मानवीय स्थितियों का भी मनोवैज्ञानिक और सौष्ठवपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है, जो कि कभी कालबद्ध नहीं होती.

कलात्मक स्तर पर भी **'माटी-मटाल'** का शिल्प अत्यधिक सुंदर है. उपन्यास का आरंभ एक पराजित मनोदशा से आरंभ होता है :

"आज वह चला जा रहा है, नौकरी करने. वह, रवि . . . जिसके अपने जीवन के प्रति कुछ स्वतंत्र विचार थे. उस देवदारु तले खड़े-खड़े मझले शहर की बत्तियों की ओर देखता हुआ उसके भीतर का अव्यक्त व्यक्तित्व भी मानो अनजाने सामने आकर खड़ा हो गया है और कहने लगा : मुझे यों न सस्ते में बेच फेंको, मैं जीवित रहना चाहता हूं, फूल की तरह खिलना चाहता हूं."

धीरे-धीरे वातावरण में परिवर्तन होता है और उपन्यास के अंत में गहरे उल्लास और कुतूहल की भावना का उदय होता है : **"छवि ने सतेज होकर मन में चंचलता का अनुभव किया और उसे अनुभव हुआ अपने भीतर से निकल रही मादक महक का, खयाल में मन का एक खेल रच लिया कि वह आदमी नहीं, कोई फूल है, झरने या न झरने की उसके मन में कोई चिंता नहीं. वह है. बस इतना ही यथेष्ट है."**

इस परिवर्तन की कलात्मक अभिव्यक्ति दो सूर्यास्तों के विवरण में भी मिलती है, जो उपन्यास के आरंभ और अंत में दिये गये हैं. उपन्यास के प्रारंभ का सूर्यास्त काफी विस्तृत वर्णन है. रवि की मनोदशा को चित्रित करता है. इसमें दुख और मनुष्य की अनिश्चितता और निरीहता का मिश्रण है, ऐसा लगता है कि कहीं कोई स्थायित्व ही नहीं है और सब कुछ अंधकार के विनाश की ओर बढ़ रहा है, लेकिन उपन्यास के अंत का सूर्यास्त आत्मविश्वास और स्थायित्व का बोध कराता है. **"पौष का यह अस्तगामी सूर्य आत्मस्थ हो चुका है. महाशून्य में अलग होने की तरह उसकी गोलाई की लकीर का स्पष्ट पता चल जाता है. सचमुच जैसे कितनी ही अपार काल की अनंत दूरी की ओट से भी वह अपनी माया-ममता, प्रकट और प्रकाश का ज्योतिपुंज खींचकर स्वयं में यह रस संवरण कर अनासक्त होकर हंस देता है, उस हास्य में उद्दीपना नहीं पिघलती, अंधेरी चेतना में विचार की दीपशिखा भी देता है-- इस पल तुम गति रोको, स्थिर होओ, मेघ खोल डालो, अनुभव करो, सोचो! -- सुदूर देहात के पाटेली गांव में उस समय छवि के लिए मानो इतना ही उसका संदेश है.**

सूर्य अस्त हो रहा है, शरशय्या पर हैं भीष्म, क्रियाशील, गति और शक्ति के आधार, वे आत्मस्थ होकर स्थिर हो गये हैं. दृष्टि की सीमा से चले जा रहे हैं दिव्य दृष्टि की सीमा में."

मानव की अजेय चेतना

कलात्मक दृष्टि से रवि और छवि के विवाह के प्रसंग को भी बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है. एक ओर छवि के पिता सिधु चौधरी रवि और छवि के संबंधों को सामान्य प्रेम-प्रक्रिया की परिणति न मानकर उसको बहुत सुंदर वस्तुपरक विश्लेषण करते हैं :

"देखो, जन्म दिया है, पाला-पोसा है, चाहती हो. तनिक उदार बनो, निधड़क होओ. जाल डालना या बहेलिये की तरह फंदा डालना, षड्यंत्र करना, ये सब अपने काम नहीं हैं. वे एक दूसरे को पहचानते हैं. दोनों को एक ही काम में झोंक है. एक ने घर छोड़कर जगत को घर बना लिया है और एक घर पर रहकर भी मानो अघोरी है. मुझे तो लगता है, अगर इनका कभी विवाह होगा भी तो वह भी होगा एक योगसाधना की परिणति, दो विशाल हृदय त्याग, तपस्या, स्नेह, उदारता में बिछड़कर पड़ते-पड़ते जाने कब अचानक एक हो जायेंगे. वे अब कोई गुड्डे गुड़िया नहीं, आदमी हैं."

दूसरी ओर जब विवाह के प्रश्न पर रवि अपने पिता के सामने आता है वहां एक टक्कर दिखाई गयी है. दो पीढ़ियों की, दो मूल्य वर्गों की :

". . . ऊपर-ऊपर पिता अडिग हुए रहते हैं पर भीतर से सारा बल टूट चलता है और फिर तो सामने यही रहता है कि जो पेड़ पुराना हो उसका क्षय हुआ करे और नये पौधे फूटते-बढ़ते जायें."

गोपी बाबू के कथा संसार का प्रेरणास्रोत यथार्थ है, यह निर्विवाद है. चाहे आदिवासियों के, चाहे दलितवर्ग के और चाहे सुविधाभोगियों के संदर्भ में हो--उनके कथानकों में जीवन और कर्मठता की एक विशेष प्रकार की सहज अभिव्यक्ति है. विभिन्न प्रकार के विषयों और मनोभावों के अंबार में और अत्यधिक भिन्न-भिन्न सामाजिक परिवेश में जी रहे पात्रों के चरित्रचित्रण में गोपी बाबू परिस्थिति-जन्य संकीर्णता और दैनंदिन जीवन के सुपरिचित स्वार्थों की निर्लिप्तता से ऊपर उठकर मानव की अजेय चेतना की कीर्ति फैलाने में अत्यंत सफल हुए हैं. शोषण के विभिन्न रूपों को दिखाते हुए उनकी कथाएं शोषक और शोषित के संबंधों को इतनी निर्ममता और सचाई से चित्रित करती हैं कि पाठक को इससे किसी वर्ग के प्रति रोष और दूसरे वर्ग के लिए सहानुभूति उपजने से अधिक जटिल मानवीय स्थिति का बोध होता है. यह सब गोपी बाबू के कलात्मक दृष्टिकोण के कारण ही संभव हुआ है. और यही है उनके शिल्प की विशिष्टता. इसके माध्यम से वह एक सामाजिक स्थिति को आध्यात्मिक स्तर पर ला उठाते हैं, शोषितवर्ग का विद्रोह केवल किसी अन्य वर्ग से सामाजिक न्याय पाने की प्रक्रिया मात्र न रहकर **मनुष्य का नियति की क्रूरता से अपनी रक्षा करने का सार्वभौमिक प्रयास बन जाता है.** ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने को कहाँ नकारना है. नये को कहाँ स्वीकारना है...

'क्या ज़रूरत है माँ इस दिखावे की? आखिर यह हमारा घरेलू मामला है.'

माँ मेरी बात से आहत हुई थी.

'घरेलू मामला? तो क्या जो आ रहे हैं वो अपने नहीं हैं? उन्हें खुशी नहीं तेरे आने की? कब से तेरी बाट जोह रहे थे सब लोग...अजी सुनते हो! ऊं...हूँ...तुम्हें तो अपने धरमयुग से फ़ुर्सत मिले तब न...!'

'भई...बिल्कुल यही तो पढ़ रहा हूँ.'

'क्या?'

'यही कि जो नौजवान पीढ़ी बाहर की दुनिया देखकर आती है, उसे समय देना चाहिए अपने माहौल से तालमेल बैठाने के लिए-उसपर अपनी मर्ज़ी थोपना गलत है.'

मैं माँ की बात मान तो गया था पर बुझे दिल से – मानो उनपर कोई बड़ा एहसान कर रहा हूँ...

अमेरिका से लौटने के बाद जब पहली बार घर आया था मैं, तो घर में घुसते हुए एक अजीब-सी झिझक ने घेर लिया था...लगा था जैसे घर का रूप, रहन सहन बहुत पुराना हो... जिसे फ़ौरन बदल देना चाहिएः बार बार विदेशी प्रगति की मिसाल देकर घर पर, घरवालों पर टीका टिप्पणी भी कर डाली थी मैंने. यह सच है कि इसके मूल में भावना सब कुछ सुधारने निखारने की ही थी शायद – पर आज एक बात से इन्कार नहीं कर सकता कि अपने उस सीधे सादे घर को, जिसमें जन्म हुआ – पल-पढ़कर बड़ा हुआ, उसकी दीवार पर पिताजी की धोती-काठी के साथ अपना कोट और टाई टाँगते हुए कतराया था. मुझे याद है पिताजी मुस्कुरा भर दिए थे.

माँ हुलस कर आई थी बताने कि आज उसने पिताजी के सभी मित्रों और रिश्तेदारों को दावत पर बुलाया है मेरे घर आने की खुशी में.

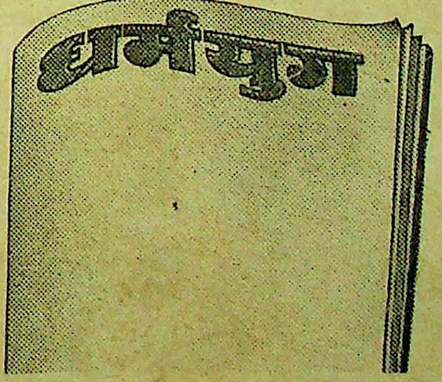

समय बीता... दिन... महीने... साल... दृष्टि बदली... दृष्टिकोण बदला और इस बदलते दृष्टिकोण को गढ़ने में अगर कहूँ कि धर्मयुग हर कदम मेरे साथ था तो अतिशयोक्ति नहीं होगी. मैंने नये और पुराने में समन्वय के सूत्र को पा लिया जैसे – पुराने को कहाँ नकारना है, नये को कहाँ स्वीकारना है, जान लिया.

भारतीयता में आस्था, स्वाभिमान जो बाहर जाकर डगमगा सा गया था, आधार पा गया – मैं हमेशा के लिए धर्मयुग का पाठक बन गया.

नव सामाजिक चिंतन का अग्रदूत

ARMS-BC-DH-141-B

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना इतना है कि अपने शुल्क का राशि हम बैंक ड्राफ्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.

मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

फिल्मों में कौन बड़ा
हीरो-हीरोइन या कहानी और कथानक

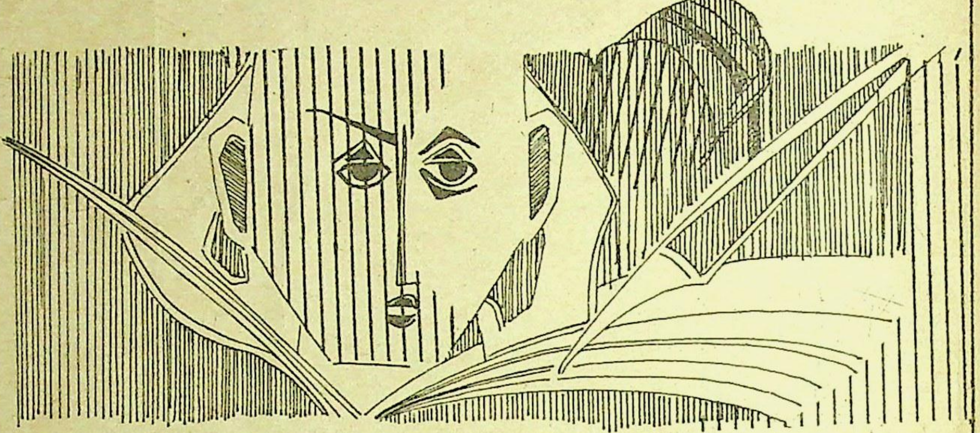

आह और वाह के आवेग से अलग सिनेमा जगत में खासकर साहित्य और फिल्मांकन तथा दर्शकों की भूमिका को रेखांकित करता रजत जयंती वर्ष का आयोजन कि वही फिल्में जो बहुत कम देखी जाती हैं, वही बहुत ज्यादा पसंद क्यों की जाती है? . . . पढ़िए—

फिल्म साहित्य कथा अंक

—प्रेमचंद, मोहन राकेश, विभूति भूषण बंद्योपाध्याय, लियो तालस्तोय, अरुण साधू, मन्नू भंडारी, तकषि शिवशंकर पिल्लइ, यू. आर. अनंतमूर्ति, मार्शल प्रूस्त आदि कहानीकारों की कहानियां, जो फिल्म के लिए नहीं लिखी गयीं मगर इन पर विश्वविख्यात फिल्में बनीं.

▣ **कला फिल्मों के प्रख्यात निर्देशकों, अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों से सिनेमा संबंधी अंतरंग बातचीत**

साथ ही—

☐ विश्व की दस कालजयी फिल्में

☐ भारतीय सिनेमा और उसका दर्शक

☐ साहित्यक कृतियों को फिल्माने के खतरे

▣ **दसवां अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह**

—हाल ही में नयी दिल्ली में संपन्न हुए इस समारोह में दिखायी गयी फिल्मों पर कुंवरनारायण का समीक्षात्मक आलेख.

1–15 फरवरी, 1985

सारिका

पढ़ने का मतलब है हर पखवारे जिंदगी से एक जरूरी मुलाकात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar